गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

Impact Factor :
7.834

ISSN : 2321-8037
May-June 2026
Volume 14, Issue 5-6

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni
Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 14 अंक : 5–6, भाग–3 मई–जून : 2026 आईएसएसएन : 2321–8037

सम्पादक :

डॉ. रेखा सोनी
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर, राज.

प्रधन सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक मण्डल :

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

शिओंग छन श्यू, चीन।

डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे
साहित्यकार, शिक्षाविद, नीदरलैंड।

डॉ. सुनीता शर्मा
हिन्दी साहित्यकार, कवयित्री, संपादक एवं शिक्षाविद् मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया

डॉ. अनुरुद्ध बायन
मध्य कामरूप कॉलेज, सुभा
जिला बारपेटा, असम।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :

डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार, अनुवादक, यूक्रेन।

डॉ. हेमराज न्यौपाने
काठमाण्डु, नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

डॉ. मधुबाला
राजकीय महाविद्यालय, लाखनमाजरा।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
शिक्षा संकाय, टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, लखनऊ।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh
SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक/ शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान/ अभियांत्रिकी/ कृषि/चिकित्सा/ पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा/ मानविकी/कला/ सामाजिक विज्ञान/ पुस्तकालय/शिक्षा/ शारीरिक शिक्षा/ वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या/ पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या/ पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–07
2.	'तीर्थभारतम्' में तीर्थाटन की सांस्कृतिक दृष्टि और भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब	राजू मौर्या, प्रो. (डॉ.) वन्दना द्विवेदी	08–13
3.	ओम नागर के साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य	कुलदीप प्रजापति, डॉ. यशोदा मेहरा	14–20
4.	जनपद फिरोजाबाद में कृषि विकास की आधुनिक प्रौद्योगिकिया : एक भौगोलिक अध्ययन	डॉ. जुगेंद्र सिंह	21–26
5.	आदिवासियों के प्रति क्रूरताओं के खिलाफ आवाज : जसिन्ता केरकेट्टा की कविता संकलन 'प्रेम में पेड़ होना'	श्वेता टी. पी.	27–31
6.	नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में नारी का भावनात्मक पक्ष	**Sathyanarayanappa**	**32-34**
7.	**Exploring the Contested Legacies : Article 370 from Foundational Debates to its Abrogation**	**Padma Angmo**	**35-49**
8.	जातकों के आधार पर बौद्ध धर्म के विकास में वैश्य वर्ग का योगदान	डॉ. अनीता रानी	50–55
9.	वंदना यादव के कहानी संग्रह 'जिंदगी और मौत के बीच में' सैनिक जीवन के विविध आयाम	सीमा शर्मा	56–62
10.	**THEMATICALLY STUDY BETWEEN NOVELS OF R.K NARAYAN'S NOVEL 'THE GUIDE' AND 'THE MALGUDI DAYS'**	**Hemant Kamra, Dr Sheeshpal Singh**	**63-67**
11.	वैश्वीकरण का साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (भारत के सन्दर्भ में)	डॉ० जय शंकर पाण्डेय	68–75
12.	मल्हारराव होलकर और राजपूतों के मध्य संबंध : एक ऐतिहासिक अध्ययन	महेंद्र	76–81
13.	**Literary Style of Mulk Raj Anand specifically on Coolie…**	**Harinder Pal Singh, Dr Sheeshpal Singh**	**82-87**
14.	भारतीय संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री की संस्थागत भूमिका : अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व का विश्लेषण	डॉ. विरमा राम देवासी, कांता भाटी	88–90
15.	**The Political Economy of Slow Reform : Democracy, Legitimacy, and Market Liberalization in India**	**Kuldeep Singh**	**91-97**
16.	**The Role of Jainism in Environmental Sustainability : A Philosophical and Practical Framework for Ecological Conservation**	**DIVYA KOTHARI**	**98-104**

17.	एकात्म मानवदर्शन में चतुर्विध योग (कर्म, ज्ञान, भक्ति और राजयोग) की प्रासंगिकता का विवेचन : अंत्योदय के विशेष संदर्भ में	डॉ संदीप ठाकरे, डॉ. भारत भूषण सिंह	105–111
18.	संत कबीर की साधना-पद्धति का त्रिआयामी स्वरूप : कर्म, ज्ञान और भक्ति के विशेष संदर्भ में	प्रीति रानी	112–118
19.	ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित राष्ट्रीय कवि दिनकर : एक अध्ययन	डॉ. अमलपुरे सूर्यकांत विश्वनाथ	119–123
20.	तमिल संगम : एक सांस्कृतिक अध्ययन	सृष्टि झा	124–129
21.	दलित विमर्श और समकालीन हिंदी गजल	राजश्री सिंह, डॉ. राजश्री शुक्ला	130–136
22.	पर्यावरण चेतना एवं विनोद कुमार शुक्ल का कथा साहित्य	नीरज कुमार चौधरी, डॉ. राजश्री शुक्ला	137–142
23.	**Artificial Intelligence & ITS Applications**	**Dr. Ankit Godara**	**143-147**
24.	सिन्धु घाटी सभ्यता एक परिचय	भूमिका पारीक	148–152
25.	सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी 'बंद होठों का चीत्कार' में स्त्री जीवन	बी. श्रीहरि, डॉ. बी. संतोषी कुमारी	153–158
26.	श्रीगंगानगर जिले में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन	सरोज मोदी, डॉ. अनुराग मिश्रा	159–170
27.	**COMPARATIVE ANALYSIS OF PHYSICAL CHARACTERISTICS AMONG BATSMEN, PACERS AND SPINNERS IN COMPETITIVE CRICKET**	**Ekta Pramod Singh, Dr. Arun Mathur**	**171-176**
28.	**The Impact of Mental Health Awareness and Digital Interventions on Psychological Well-being in the Modern Era : An Indian Perspective**	**Dr. Vaseem Khan**	**177-182**
29.	कैलाश बनवासी की कहानियों में स्त्री-जीवन का संघर्ष	सत्येन्द्र कुमार शेन्डे	183–188
30.	**Mathematical Approaches for Optimizing Transportation Systems : An Analysis of Challenges and Operational Phenomena**	**Rinkle Middha, Dr. Hemlata**	**189-193**
31.	ग्रामीण क्षेत्रों में PHCs की कार्यप्रणाली और वहां उपलब्ध सुविधाओं का विश्लेषण	विभा कुशवाहा	194–199
32.	भारत की अखंडता के महान निर्माता : सरदार पटेल	नाजिया कौसर	200–208

सम्पादक की कलम से......

ज्ञान, शोध और समाज के मध्य सेतु निर्माण की दिशा में

प्रिय पाठकों, शोधकर्ताओं, शिक्षकों एवं विद्वान साथियों,

गीना शोध संगम के मई–जून 2026 अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है। ज्ञान–विज्ञान के निरंतर विस्तार और बदलते वैश्विक परिदृश्य में शोध की भूमिका पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। आज का युग सूचना, नवाचार और अंतर्विषयी अध्ययन का युग है, जहाँ केवल जानकारी पर्याप्त नहीं है, बल्कि तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण, तर्कपूर्ण व्याख्या और समाजोपयोगी निष्कर्षों की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य को केंद्र में रखते हुए गीना शोध संगम निरंतर शोध एवं अकादमिक विमर्श को प्रोत्साहित करने का कार्य कर रहा है।

भारत की नई शिक्षा नीति 2020 ने भी बहुविषयक शिक्षा और अनुसंधान को विशेष महत्व दिया है। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और शोध संस्थानों में अनुसंधान गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। हाल के वर्षों में भारतीय शोध प्रकाशन जगत ने तीव्र विकास किया है तथा शोधार्थियों की संख्या और शोध प्रकाशनों में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है। गीना शोध संगम का मूल उद्देश्य केवल शोध पत्रों का प्रकाशन नहीं, बल्कि गुणवत्तापूर्ण शोध संस्कृति का विकास करना है। पत्रिका बहुविषयक शोध को प्रोत्साहित करती है और साहित्य, शिक्षा, समाज विज्ञान, इतिहास, राजनीति विज्ञान, संस्कृति, पुस्तकालय विज्ञान, प्रबंधन, विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोधार्थियों को एक साझा मंच प्रदान करती है। पत्रिका की समीक्षा प्रक्रिया शोध की गुणवत्ता, मौलिकता और अकादमिक विश्वसनीयता को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है। डबल ब्लाइंड समीक्षा प्रणाली जैसे मानकों का अनुसरण शोध प्रकाशन की निष्पक्षता और गुणवत्ता को सुदृढ़ बनाता है।

आज शोध के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती केवल सामग्री का सृजन नहीं, बल्कि उसकी विश्वसनीयता और सामाजिक प्रासंगिकता है। इंटरनेट और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में जानकारी का विस्फोट हुआ है, परंतु सत्य, प्रमाणिकता और नैतिकता की कसौटी पर खरा उतरने वाला शोध ही समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए शोधकर्ताओं का दायित्व है कि वे अपने अनुसंधान में नैतिक मानकों, संदर्भों की शुद्धता और मौलिक चिंतन को सर्वोच्च प्राथमिकता दें। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेख विभिन्न विषयों और दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें साहित्यिक समीक्षा, सामाजिक विश्लेषण, सांस्कृतिक अध्ययन, शैक्षिक विमर्श, पर्यावरणीय चिंतन तथा समसामयिक विषयों पर आधारित शोध शामिल हैं। हमें विश्वास है कि ये शोध पत्र पाठकों को नवीन दृष्टि प्रदान करेंगे तथा आगे के अनुसंधान के लिए प्रेरित करेंगे।

हम सभी शोधार्थियों और विद्वानों से आग्रह करते हैं कि वे शोध को केवल पदोन्नति या डिग्री प्राप्ति का माध्यम न मानें, बल्कि समाज, राष्ट्र और मानवता के कल्याण का साधन समझें। शोध की वास्तविक सफलता तभी है जब उसके निष्कर्ष समाज के जीवन को बेहतर बनाने में सहायक हों। ज्ञान का मूल्य तभी है जब वह मानव कल्याण से जुड़ सके।

अंत में, मैं पत्रिका के सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय मंडल के सदस्यों तथा पाठकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो सका है। आशा है कि गीना शोध संगम का यह अंक शोध और ज्ञान की नई संभावनाओं को उद्घाटित करेगा तथा अकादमिक जगत में सार्थक संवाद को आगे बढ़ाएगा।

–संपादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 08–13

'तीर्थभारतम्' में तीर्थाटन की सांस्कृतिक दृष्टि और भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब

राजू मौर्या, शोधार्थी,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।
प्रो. (डॉ.) वन्दना द्विवेदी, शोध निर्देशिका
नवयुग कन्या महाविद्यालय, राजेंद्र नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

सारांश :–

प्रोफेसर रहसबिहारी द्विवेदी कृत 'तीर्थभारतम्' आधुनिक संस्कृत काव्य की ऐसी महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें भारतीय तीर्थाटन को केवल धार्मिक यात्रा या पुण्य–संचय का साधन नहीं माना गया, बल्कि उसे भारतीय समाज, संस्कृति, लोक–आस्था, राष्ट्रीय एकात्मता और मानवीय संस्कारों के व्यापक संदर्भ में देखा गया है। भारतीय परम्परा में तीर्थाटन व्यक्ति को अपने सीमित पारिवारिक, स्थानीय और क्षेत्रीय जीवन से ऊपर उठाकर एक विस्तृत सांस्कृतिक संसार से जोड़ता है। इस यात्रा में यात्री केवल देवदर्शन नहीं करता, बल्कि वह समाज के विविध रूपों, भाषाओं, जातीय समूहों, लोकाचारों, परम्पराओं, अनुष्ठानों, पर्वों और मानवीय संबंधों से भी परिचित होता है। 'तीर्थभारतम्' में तीर्थ भारत की सांस्कृतिक स्मृति के केन्द्र हैं और तीर्थाटन भारतीय समाज की गतिशीलता का जीवंत माध्यम है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य 'तीर्थभारतम्' में निहित तीर्थाटन की सांस्कृतिक दृष्टि और भारतीय समाज के प्रतिबिम्ब का विवेचन करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस कृति में तीर्थाटन भारतीय समाज को जोड़ने, लोकविश्वासों को संरक्षित करने, सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाए रखने और व्यक्ति में व्यापक भारतीयता का भाव जगाने वाला साधन बनकर सामने आता है।

मुख्य शब्द –

तीर्थभारतम्, तीर्थाटन, रहसबिहारी द्विवेदी, भारतीय समाज, सांस्कृतिक दृष्टि, लोक–आस्था, संस्कृत काव्य।

प्रस्तावना –

भारतीय संस्कृति में यात्रा का अर्थ केवल एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचना नहीं है। यहाँ यात्रा आत्मानुभूति, लोकानुभूति और सांस्कृतिक अनुभूति का माध्यम रही है। तीर्थाटन तो इस यात्रा–परम्परा का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप है। भारतीय समाज में तीर्थयात्रा ने सदियों तक मनुष्य को अपने घर, गाँव, नगर, जाति और प्रान्त की सीमाओं से बाहर निकालकर एक व्यापक भारतीय संसार से परिचित कराया। जब कोई व्यक्ति काशी, प्रयाग, गया, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, पुरी, द्वारका, बदरीनाथ, केदारनाथ, रामेश्वरम् या कांची जैसे तीर्थों की यात्रा करता

है, तब वह केवल किसी पवित्र स्थल पर नहीं पहुँचता, वह भारतीय संस्कृति की जीवित परम्परा के भीतर प्रवेश करता है।

प्रोफेसर रहसबिहारी द्विवेदी की कृति 'तीर्थभारतम्' इसी व्यापक तीर्थ–संस्कृति का काव्यात्मक रूप है। यह कृति भारतीय तीर्थों को केवल स्थल–माहात्म्य की दृष्टि से नहीं देखती, बल्कि उनके माध्यम से भारतीय समाज के सांस्कृतिक रूप, धार्मिक आस्थाएँ, लोक–संपर्क, सामाजिक गतिशीलता और राष्ट्रीय एकात्मता को प्रकट करती है। इस कृति का महत्त्व इस बात में है कि यह आधुनिक संस्कृत साहित्य में तीर्थाटन को सांस्कृतिक अध्ययन का विषय बनाती है। यहाँ तीर्थाटन किसी एक सम्प्रदाय, क्षेत्र या वर्ग की गतिविधि नहीं रह जाता, बल्कि वह भारतीय समाज की समेकित चेतना का प्रतीक बनता है।

भारतीय संस्कृति के अध्येताओं ने यह स्वीकार किया है कि भारत की सांस्कृतिक एकता का निर्माण केवल राजनीतिक कारणों से नहीं हुआ, बल्कि धार्मिक यात्राओं, तीर्थों, पुराण–कथाओं, पर्वों और लोक–परम्पराओं ने भी इस एकता को मजबूत किया। राधाकुमुद मुखर्जी ने भारत की मौलिक एकता को भारतीय सभ्यता की भीतरी शक्ति माना है। उनके अनुसार भारत की एकता बाहरी सत्ता से आरोपित नहीं, बल्कि सांस्कृतिक जीवन की दीर्घ परम्परा से विकसित हुई है।[1] 'तीर्थभारतम्' में यही भाव तीर्थाटन की दृष्टि से प्रकट होता है।

'तीर्थभारतम्' और तीर्थाटन की सांस्कृतिक संकल्पना :

'तीर्थभारतम्' शीर्षक में ही कृति का सांस्कृतिक संकेत निहित है। 'तीर्थ' और 'भारत' का सम्बन्ध भारतीय परम्परा में अत्यन्त गहरा है। तीर्थ का अर्थ केवल देवालय, नदी–तट या पवित्र नगर नहीं है। तीर्थ वह स्थल है जहाँ मनुष्य लौकिक जीवन की सामान्य अवस्था से ऊपर उठकर आत्मिक शुद्धि, नैतिक अनुशासन और सांस्कृतिक स्मृति का अनुभव करता है। धर्मशास्त्रीय परम्परा में तीर्थ को स्नान, दान, व्रत, जप, तप, श्राद्ध, प्रायश्चित्त और आत्मसंयम से जोड़ा गया है। पांडुरंग वामन काणे ने धर्मशास्त्र के इतिहास में तीर्थ, व्रत और धार्मिक आचरणों को भारतीय सामाजिक–धार्मिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में विवेचित किया है।[2]

तीर्थाटन में 'स्थान' और 'संस्कार' दोनों जुड़ते हैं। कोई व्यक्ति तीर्थ पर जाकर केवल भौगोलिक स्थल नहीं देखता, बल्कि वह उस स्थल से जुड़ी कथा, स्मृति, देवता, नदी, पर्व, अनुष्ठान और लोकविश्वास से भी जुड़ता है। यही कारण है कि तीर्थ भारतीय समाज में सांस्कृतिक शिक्षा का भी माध्यम रहे हैं। पुराने समय में जब आधुनिक संचार–साधन नहीं थे, तब तीर्थयात्राएँ लोगों को भारत के अन्य भागों से परिचित कराती थीं। तीर्थों पर कथाएँ सुनाई जाती थीं, पुराणों का पाठ होता था, संतों और विद्वानों से संवाद होता था, स्थानीय जीवन से परिचय होता था। इस तरह तीर्थाटन भारतीय समाज में ज्ञान, आस्था और लोकानुभव का सेतु था।

प्रो. रहसबिहारी द्विवेदी संस्कृत साहित्य के ऐसे विद्वान हैं जिनकी काव्य–दृष्टि परम्परा और आधुनिकता के संयोजन पर आधारित है। उनकी कृति साहित्यविमर्शः से स्पष्ट होता है कि वे साहित्य को केवल काव्य–सौन्दर्य का क्षेत्र नहीं मानते, बल्कि उसे सांस्कृतिक चिन्तन और मूल्यबोध का माध्यम भी मानते हैं।[3] 'तीर्थभारतम्' में इसी दृष्टि का विस्तार मिलता है। काव्य में तीर्थों की प्रस्तुति केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक व्याख्यात्मक है।

तीर्थाटन और भारतीय समाज की गतिशीलता :

भारतीय समाज को समझने के लिए तीर्थाटन को सामाजिक गतिशीलता के रूप में देखना आवश्यक है।

तीर्थयात्रा व्यक्ति को स्थिर सामाजिक स्थिति से चलायमान बनाती है। वह अपने स्थान से निकलकर दूसरे प्रदेशों में जाता है, भिन्न समुदायों से मिलता है, अलग–अलग भाषाएँ सुनता है और विविध परम्पराओं से परिचित होता है। इस प्रकार तीर्थाटन भारतीय समाज में सम्पर्क और संवाद की प्रक्रिया को सक्रिय करता है।

श्यामाचरण दुबे ने भारतीय समाज को बहुल परम्पराओं और विविध सामाजिक संरचनाओं वाला समाज माना है। उनके अनुसार भारतीय समाज में क्षेत्र, जाति, धर्म, लोकाचार और जीवन–पद्धतियों की विविधता के बावजूद सांस्कृतिक संवाद की धारा निरन्तर चलती रही है।[4] तीर्थाटन इसी संवाद की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। तीर्थस्थलों पर उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से आए हुए लोग एक साथ उपस्थित होते हैं। उनके वस्त्र, भाषा, भोजन और व्यवहार भिन्न होते हैं, फिर भी उनकी आस्था और सांस्कृतिक भावभूमि उन्हें एक दूसरे के निकट लाती है।

'तीर्थभारतम्' में भारतीय समाज का यही गतिशील रूप दिखाई देता है। तीर्थ केवल शास्त्रीय स्मृति के स्थल नहीं हैं, वे लोकजीवन के भी केन्द्र हैं। वहाँ पुरोहित हैं, यात्री हैं, साधु हैं, गृहस्थ हैं, व्यापारी हैं, सेवक हैं, कथावाचक हैं, भजन–गायक हैं, फूल–माला बेचने वाले हैं, नाविक हैं, धर्मशालाएँ हैं, अन्नक्षेत्र हैं, घाट हैं, मेले हैं और उत्सव हैं। इस प्रकार तीर्थ भारतीय समाज की अनेक परतों को एक साथ उपस्थित करता है। कवि की दृष्टि में तीर्थाटन भारतीय समाज का जीवंत चित्र बन जाता है।

लोक–आस्था और तीर्थाटन –

भारतीय तीर्थ–संस्कृति की सबसे बड़ी शक्ति लोक–आस्था है। शास्त्र तीर्थ की महिमा बताते हैं, परन्तु लोक उसे जीवित रखता है। यदि लोकजीवन की श्रद्धा, स्मृति और सहभागिता न हो तो तीर्थ केवल प्राचीन स्थल बनकर रह जाएँ। भारतीय समाज में तीर्थों की निरन्तरता लोक की सहभागिता से बनी रही है। किसी तीर्थ का महत्त्व केवल इसलिए नहीं है कि वह पुराणों में वर्णित है, उसका महत्त्व इसलिए भी है कि पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोग वहाँ जाते रहे, कथाएँ सुनते रहे, पर्व मनाते रहे और अपने जीवन–संस्कारों को वहाँ से जोड़ते रहे।

राजबली पाण्डेय ने हिन्दू संस्कारों के विवेचन में यह स्पष्ट किया है कि भारतीय जीवन में जन्म से मृत्यु तक संस्कार, व्रत, पर्व, दान और तीर्थ सामाजिक जीवन की संरचना से जुड़े रहे हैं।[5] तीर्थाटन इसलिए व्यक्तिगत धार्मिक क्रिया होते हुए भी सामाजिक कर्म बन जाता है। परिवार के लोग साथ यात्रा करते हैं, व्रत रखते हैं, स्नान करते हैं, दान करते हैं, पितरों का स्मरण करते हैं और देवताओं के दर्शन करते हैं। इस प्रक्रिया में धार्मिक भावना के साथ–साथ पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्ध भी मजबूत होते हैं।

'तीर्थभारतम्' में लोक–आस्था की यह भूमिका अप्रत्यक्ष रूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कृति के तीर्थ भारत के जीवित तीर्थ हैं। वे केवल ऐतिहासिक अवशेष नहीं, बल्कि आज भी चलती हुई आस्था के केन्द्र हैं। काशी में आरती, प्रयाग में संगम–स्नान, गया में पिण्डदान, पुरी में रथयात्रा, हरिद्वार में गंगा–स्नान, रामेश्वरम् में जलाभिषेक और बदरीनाथ–केदारनाथ की यात्रा – ये सभी उदाहरण बताते हैं कि तीर्थ भारतीय समाज में आज भी लोकजीवन से गहरे जुड़े हैं।

तीर्थाटन और सांस्कृतिक एकात्मता :

तीर्थाटन भारतीय सांस्कृतिक एकात्मता का अत्यन्त प्रभावी माध्यम है। भारत जैसे विशाल और विविध देश में एकता का निर्माण केवल एक भाषा, एक वेश या एक रीति से नहीं हो सकता। यहाँ एकता विविधता को

स्वीकार करते हुए बनती है। तीर्थाटन इस प्रक्रिया को सहज बनाता है। जब अलग–अलग क्षेत्रों के लोग एक ही तीर्थ पर एकत्र होते हैं, तब उनके बीच एक सांस्कृतिक निकटता पैदा होती है।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारतीय कला और संस्कृति के अध्ययन में भारतीय प्रतीकों, पुराण–कथाओं और सांस्कृतिक रूपों की एकात्मकारी शक्ति को रेखांकित किया है।[6] तीर्थ इसी प्रतीकात्मक शक्ति का विस्तार हैं। वे स्थानीय होकर भी राष्ट्रीय हैं। काशी उत्तर भारत में है, पर वह पूरे भारत की है। रामेश्वरम् दक्षिण भारत में है, पर वह सम्पूर्ण भारत के रामकथा–विश्वास से जुड़ा है। पुरी उड़ीसा में है, पर जगन्नाथ की लोकभक्ति पूरे भारत को आकर्षित करती है। द्वारका पश्चिम में है, पर कृष्ण–स्मृति के कारण वह भारतीय जनमानस में सर्वव्यापक है। इसी प्रकार प्रयाग का संगम केवल इलाहाबाद/प्रयागराज का स्थानीय स्थल नहीं, बल्कि भारतीय समन्वय–बोध का प्रतीक है।

'तीर्थभारतम्' में तीर्थों की यह एकात्मकारी भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। कृति यह संकेत करती है कि भारत की सांस्कृतिक एकता न तो कृत्रिम है और न ही केवल आधुनिक राजनीतिक कल्पना है। यह एकता उन यात्राओं में बनी है जिनमें लोग पीढ़ियों से एक–दूसरे से मिलते रहे। तीर्थों ने भारत को चलती हुई संस्कृति बनाया। यात्रियों ने भारत को पढ़ा नहीं, देखाय सुना नहीं, जिया। यही 'तीर्थभारतम्' की सांस्कृतिक दृष्टि है।

तीर्थाटन में धर्म, समाज और अर्थ का संबंध :

तीर्थाटन केवल धर्म से जुड़ी क्रिया नहीं है, वह समाज और अर्थव्यवस्था से भी जुड़ा है। जहाँ तीर्थ है, वहाँ यात्रियों की व्यवस्था है। वहाँ धर्मशालाएँ, अन्नक्षेत्र, बाजार, पूजन–सामग्री, परिवहन, स्थानीय हस्तशिल्प, लोक–व्यापार और सेवा–व्यवस्था विकसित होती है। भारतीय समाज में अनेक तीर्थ–नगरों का विकास इसी कारण हुआ। काशी, प्रयाग, गया, पुरी, हरिद्वार, नासिक, उज्जैन, मथुरा और रामेश्वरम् जैसे नगर धार्मिक होने के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक केन्द्र भी रहे हैं।

रामशरण शर्मा ने प्राचीन भारतीय समाज और भौतिक संस्कृति के अध्ययन में यह संकेत किया है कि धार्मिक संस्थाएँ, नगर, व्यापार और सामाजिक संरचनाएँ परस्पर सम्बन्धित रही हैं।[7] तीर्थ–नगरों के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। तीर्थों ने स्थानीय समाज को आजीविका, सेवा और सांस्कृतिक आदान–प्रदान के अवसर दिए। यात्रियों की उपस्थिति से स्थानीय अर्थव्यवस्था चलती रही और साथ ही सांस्कृतिक जीवन भी सक्रिय रहा।

'तीर्थभारतम्' में यद्यपि प्रत्यक्ष आर्थिक विश्लेषण नहीं है, परन्तु तीर्थों का काव्यात्मक वर्णन भारतीय समाज की इस बहुस्तरीयता को समझने का अवसर देता है। तीर्थ केवल देवालय नहीं, वे समाज की जीवित संस्थाएँ हैं। वहाँ धर्म, लोक, सेवा, अर्थ, कला और संस्कृति साथ–साथ चलते हैं।

तीर्थाटन और भारतीय नैतिक मूल्य :

तीर्थाटन भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का भी वाहक रहा है। तीर्थयात्रा में संयम, धैर्य, सेवा, दान, सहिष्णुता, सहयात्रा, श्रम और विनम्रता जैसे मूल्य विकसित होते हैं। यात्रा कठिन होती है, मार्ग में असुविधाएँ होती हैं, अपरिचित लोगों से संपर्क होता है, सामूहिक जीवन का अनुभव होता है। इन सबके कारण व्यक्ति के भीतर सामाजिकता और विनम्रता आती है।

महाभारत के वनपर्व में तीर्थयात्रा का वर्णन केवल स्नान और दर्शन तक सीमित नहीं है। वहाँ तीर्थयात्रा

को धर्म, तप, संयम और पुण्य से जोड़ा गया है।[8] इसका अर्थ यह है कि तीर्थाटन बाहरी यात्रा के साथ–साथ आन्तरिक अनुशासन भी है। 'तीर्थभारतम्' में तीर्थों की सांस्कृतिक दृष्टि इसी नैतिक धरातल पर भी स्थित है। कवि के लिए तीर्थ भारतीय समाज को केवल जोड़ते नहीं, बल्कि उसे संस्कारित भी करते हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति की व्याख्या करते हुए बार–बार इस बात पर बल दिया है कि भारतीयता का मूल स्वर समन्वय, करुणा और जीवन की व्यापकता में है।[9] तीर्थाटन इस व्यापकता को व्यवहार में उतारता है। जो व्यक्ति यात्रा करता है, वह भिन्नता को देखता है और उसे स्वीकार करना सीखता है। इस तरह तीर्थाटन सांस्कृतिक सहिष्णुता का भी अभ्यास है।

'तीर्थभारतम्' में भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब :

'तीर्थभारतम्' में भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब अनेक रूपों में दिखाई देता है। पहला प्रतिबिम्ब आस्था का है। भारतीय समाज में आज भी तीर्थों के प्रति गहरी श्रद्धा है। लोग कठिन यात्राएँ करते हैं, व्रत रखते हैं, दान देते हैं, स्नान करते हैं और देवदर्शन के माध्यम से आत्मिक संतोष प्राप्त करते हैं। दूसरा प्रतिबिम्ब पारिवारिकता का है। तीर्थयात्रा प्रायः अकेले व्यक्ति की यात्रा नहीं होतीय वह परिवार और समुदाय की यात्रा भी होती है। तीसरा प्रतिबिम्ब लोक–संस्कृति का है। तीर्थों के साथ मेले, लोकगीत, कथा, उत्सव, प्रसाद, वेशभूषा और स्थानीय कलाएँ जुड़ी रहती हैं। चौथा प्रतिबिम्ब सामाजिक समागम का है। तीर्थस्थल विविध वर्गों और समुदायों को एक स्थान पर लाते हैं।

गोविन्दचन्द्र पाण्डेय ने भारतीय संस्कृति को दीर्घकालीन सांस्कृतिक संवाद और आध्यात्मिक अनुभव की परिणति माना है।[10] 'तीर्थभारतम्' में भारतीय समाज इसी संवादशील संस्कृति के रूप में सामने आता है। यहाँ समाज स्थिर और बंद नहीं है, वह यात्रा करता है, मिलता है, सीखता है, बदलता है और फिर भी अपनी मूल सांस्कृतिक स्मृति को बनाए रखता है।

कृति में भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब केवल आदर्श रूप में नहीं, बल्कि जीवित परम्परा के रूप में है। तीर्थों के माध्यम से समाज अपने अतीत से जुड़ता है, वर्तमान में सामूहिकता का अनुभव करता है और भविष्य के लिए सांस्कृतिक निरन्तरता प्राप्त करता है। यही कारण है कि 'तीर्थभारतम्' का अध्ययन भारतीय समाजशास्त्र, संस्कृति–अध्ययन और आधुनिक संस्कृत साहित्य– तीनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

आधुनिक संदर्भ में तीर्थाटन की प्रासंगिकता :

आज के समय में तीर्थाटन का स्वरूप बदल रहा है। परिवहन, संचार, पर्यटन–उद्योग, होटल–व्यवस्था और डिजिटल प्रचार ने तीर्थयात्रा को सरल बनाया है। परन्तु इसके साथ एक चुनौती भी है कि तीर्थाटन कई बार केवल पर्यटन बनकर रह जाता है। जब तीर्थ का सांस्कृतिक अर्थ पीछे छूट जाता है और केवल दृश्य–दर्शन बचता है, तब तीर्थ की आत्मा कमजोर होती है।

'तीर्थभारतम्' जैसी कृति इस संकट का सांस्कृतिक उत्तर देती है। यह कृति पाठक को स्मरण कराती है कि तीर्थ का अर्थ केवल स्थल–दर्शन नहीं, बल्कि स्मृति, श्रद्धा, संयम, लोक–संपर्क और आत्म–परिवर्तन है। तीर्थ पर जाना तभी सार्थक है जब व्यक्ति उस स्थल की कथा, परम्परा, समाज और सांस्कृतिक अर्थ को समझे। आधुनिक भारत में तीर्थाटन का एक और महत्त्व विरासत–संरक्षण से जुड़ा है। तीर्थ केवल धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर हैं। वहाँ प्राचीन स्थापत्य, मूर्तिकला, लोककला, पाण्डुलिपियाँ, कथाएँ, अनुष्ठान और

सामाजिक संस्थाएँ सुरक्षित हैं। यदि तीर्थों को केवल भीड़–प्रबंधन या पर्यटन की दृष्टि से देखा जाएगा तो उनका सांस्कृतिक अर्थ खो जाएगा। 'तीर्थभारतम्' तीर्थों को उनकी सांस्कृतिक गरिमा में देखने की प्रेरणा देता है।

निष्कर्ष :

प्रोफेसर रहसबिहारी द्विवेदी कृत 'तीर्थभारतम्' में तीर्थाटन भारतीय संस्कृति और समाज को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बनकर सामने आता है। इस कृति में तीर्थ केवल धार्मिक स्थल नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय समाज की स्मृति, आस्था, गतिशीलता और एकात्मता के केन्द्र हैं। तीर्थाटन व्यक्ति को अपने सीमित जीवन से बाहर निकालकर व्यापक भारतीय समाज से जोड़ता है। वह भिन्नताओं के बीच एकता का अनुभव कराता है और लोकजीवन को शास्त्रीय परम्परा से जोड़ता है।

'तीर्थभारतम्' की सांस्कृतिक दृष्टि यह बताती है कि भारतीय समाज को समझने के लिए उसके तीर्थों, यात्राओं, पर्वों और लोक–आस्थाओं को समझना आवश्यक है। तीर्थाटन में धर्म है, पर वह केवल धर्म नहीं है, उसमें समाज है, अर्थ है, लोक है, परिवार है, नैतिकता है और राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकात्मता है। यही कारण है कि 'तीर्थभारतम्' आधुनिक संस्कृत साहित्य में भारतीय समाज के सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब की महत्त्वपूर्ण कृति कही जा सकती है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'तीर्थभारतम्' तीर्थाटन को भारतीय समाज के जीवित सांस्कृतिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करता है। यह कृति पाठक को भारत की यात्रा केवल भूगोल में नहीं, बल्कि संस्कृति, स्मृति और आत्मीयता में कराती है। भारतीय समाज का जो बहुरंगी, आस्थामय और समन्वयी स्वरूप इस कृति में प्रकट होता है, वही इसकी स्थायी साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्ता है।

संदर्भ :

1. मुखर्जी, राधाकुमुद. (2004). द फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया। हैदराबाद : ओरिएंट लॉन्गमैन/ओरिएंट ब्लैकस्वान।
2. काणे, पांडुरंग वामन. (1968–1977). धर्मशास्त्र का इतिहास, खण्ड 1–5। पुणे : भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट।
3. द्विवेदी, रहसबिहारी. (2002). साहित्यविमर्शः। वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।
4. दुबे, श्यामाचरण. (1990). भारतीय समाज। नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट।
5. पाण्डेय, राजबली. (2006). हिन्दू संस्कार। वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन।
6. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (2009). भारतीय कला और संस्कृति। वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन।
7. शर्मा, रामशरण. (2003). प्राचीन भारत में भौतिक संस्कृति और सामाजिक संरचनाएँ। नई दिल्ली : मैकमिलन इंडिया।
8. व्यास. (2017). महाभारत : वनपर्व। गोरखपुर : गीता प्रेस।
9. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2008). भारतीय संस्कृति की रूपरेखा। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
10. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र. (1994). भारतीय संस्कृति। इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
11. उपाध्याय, बलदेव. (2005). संस्कृत साहित्य का इतिहास। वाराणसी : शारदा निकेतन।
12. त्रिपाठी, राधावल्लभ. (2011). षष्ट्यब्दसंस्कृतम् : सिक्सटी ईयर्स ऑफ संस्कृत स्टडीज, 1950–2010। नई दिल्ली : राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 14–20
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

ओम नागर के साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य

कुलदीप प्रजापति, PhD
डॉ. यशोदा मेहरा, सह आचार्य,
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा।

सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्य :

साहित्य को समाज के प्रतिबिंब के रूप में परिलक्षित किया जाता है। साहित्यकार जिस रूप में समाज को देखता है, उससे प्रभावित होकर ही वह साहित्य की रचना करता है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब मात्र न होकर, उसके मार्गदर्शक के रूप में भी कार्य करता है। विभिन्न सामाजिक कुरीतियों पर साहित्यकार अपनी कलम के माध्यम से उनकी विद्रूपताओं को समाज के सामने प्रकट करने का कार्य करता है। कवि एवं साहित्यकार द्वारा रचित साहित्य समाज को एक नई दिशा देने का कार्य करता है, साथ ही सत्ता या व्यवस्था को आईना भी दिखाता है।

राजनीतिक स्तर पर भी साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय संदर्भ में राजनीति के विभिन्न स्तरों पर साहित्यकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के कार्यकाल में रामधारी सिंह दिनकर सहित अनेक कवियों ने शासन को उसकी जिम्मेदारियों से अवगत ही नहीं कराया, अपितु उसे दिशा–निर्देशित भी किया। साहित्यकार सदैव राजनीतिक चेतना जागृत करने में अग्रणी रहे हैं। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी स्वयं एक ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने समाज को एक राजनेता के रूप में भी देखा और एक साहित्यकार के रूप में भी।

भारतीय साहित्य में सामाजिक मूल्य :

साहित्यकार समाज को सदैव समान दृष्टि से देखने का पक्षधर रहा है। वह करुणा और स्त्री–विमर्श जैसे अनेक सामाजिक मूल्यों की स्थापना करता है। समाज में एकरूपता एवं सामूहिकता लाना ही साहित्यकार का लक्ष्य होता है।

मध्यकालीन साहित्य में कबीर ने समाज की इन्हीं विसंगतियों को अपने साहित्य का अंग बनाया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, छुआछूत और भेदभावपूर्ण रवैये को अपने साहित्य के माध्यम से उजागर ही नहीं किया, अपितु उनका घोर विरोध भी किया।

कबीर ने लिखा है कि –

'जाति पाति पूछे नहीं कोई हरि को भजे सो हरि को हुई।'(1)

कबीर मानते हैं कि ईश्वर के यहाँ व्यक्ति के कर्म देखे जाते हैं, न कि उसकी जाति। मनुष्य के कर्म यदि उत्तम हैं, तो जाति अथवा कुल का कोई महत्व शेष नहीं बचता।

कबीर ने कहा कि–

'कबीर कुआं एक है, पानी भरे अनेक।
भांडे ही में भेद है, पानी सब में एक।'(2)

मानवतावादी दृष्टिकोण को छायावाद के आधार–स्तंभ एवं प्रणेता सुमित्रानंदन पंत और महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविताओं में देखा जा सकता है। शोषितों और दमितों के प्रति उनकी कविताएँ नए प्रतिमान स्थापित करती हैं। उनकी कविताओं में शोषित वर्ग के प्रति करुणा का सामाजिक मूल्य दिखाई पड़ता है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की 'वह तोड़ती पत्थर' एवं 'भिक्षुक' जैसी कविताएँ इसी प्रकार की कविताओं के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

राजेंद्र बाला घोष, जिन्हें हिंदी साहित्य में 'बंग महिला' के नाम से जाना जाता है, ने वर्ष 1907 में अपनी प्रसिद्ध कहानी 'दुलाईवाली' (या 'चंद्रदेव से मेरी बातें') में सर्वप्रथम स्त्री की स्थिति के बारे में लिखने का प्रयास किया। आधुनिक कालखंड में महादेवी वर्मा का नाम स्त्री–विमर्श के आरंभकर्ताओं में सर्वोपरि माना जाता है। उन्होंने वर्ष 1942 में प्रकाशित अपने निबंध–संग्रह 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के माध्यम से स्त्री जाति की पराधीनता एवं सामाजिक स्थिति पर एक तार्किक विमर्श प्रस्तुत किया। समकालीन स्त्री–विमर्श के आलोचकों एवं विचारकों द्वारा इस पुस्तक को हिंदी स्त्री–विमर्श का 'प्रस्थान बिंदु' और 'मैग्नाकार्टा' भी कहा जाता है।

भारतीय साहित्य में राजनीतिक मूल्य :

संपूर्ण भारतीय साहित्य ने देश के विभिन्न हिस्सों में राजनीतिक चेतना जागृत करने का कार्य किया है। मुगल काल से लेकर ब्रिटिश काल तक भारतीय स्वतंत्रता के लिए साहित्यकारों ने स्वतंत्रता की अलख जगाने का कार्य किया। स्वतंत्रता के पश्चात लोकतंत्र में नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हेतु सदैव आवाज बुलंद करते हुए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर वर्तमान तक अनेक साहित्यकारों ने औपनिवेशिक शासन से लेकर वर्तमान शासन तक को सदैव चुनौती दी है और उनके जनतंत्र–विरोधी निर्णयों पर मुखरता से जवाब दिया है। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर आदि ने राजनीतिक चेतना एवं स्वतंत्रता के मूल्यों को जागृत करने का कार्य सदैव अपनी कलम के माध्यम से किया है। राष्ट्रवादी चेतना के प्रमुख एवं प्रखर पक्षधर इन समस्त कवियों ने हिंदी साहित्य में समाज को ऊर्जस्वित करने का कार्य किया।

मैथिलीशरण गुप्त अपनी प्रसिद्ध कृति भारत भारती में लिखते हैं कि –

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, पशु निरा है और मृतक समान है।'(3) **(पृ. 45)**

साहित्यकार लोकतंत्र एवं जनतंत्र की बात सदैव मुखरता के साथ रखता है। हिंदी साहित्य का प्रगतिवाद दमित एवं शोषित वर्ग का मुख्य पक्षधर रहा है। वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन', केदारनाथ अग्रवाल और गजानन माधव 'मुक्तिबोध' जैसे कवियों ने राजनीतिक व्यवस्था को सदैव चुनौती देते हुए उसकी कमियों पर सवाल उठाए।

नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' तथा मुक्तिबोध की 'कदाचार' (या 'अंधेरे में') जैसी कविताएँ देश की राजनीतिक विद्रूपताओं को प्रस्तुत करती हैं।

सत्ता को उसके कर्तव्यों से अवगत कराने के लिए रामधारी सिंह 'दिनकर' ने बिना किसी भय के 'कुरुक्षेत्र' एवं 'रश्मिरथी' जैसी रचनाओं के माध्यम से राजनीतिक मूल्यों को स्पष्ट करने का कार्य किया। रामधारी सिंह 'दिनकर' की पंक्तियाँ एक जन–आंदोलन की पंक्तियाँ बनीं –

'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।' (पृ. 88)

भारतीय कथा–साहित्य में भी सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। हिंदी के 'कथा–सम्राट' प्रेमचंद अपने साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना को अत्यंत समन्वित रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इसका कालजयी उदाहरण उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' है, जिसके मुख्य पात्र होरी के माध्यम से ग्रामीण समाज की विसंगतियों 'जैसे ऋणग्रस्तता और जातिगत दबाव' को चित्रित किया गया है, वहीं दूसरी ओर, राय साहब एवं मिल मालिकों के चरित्र द्वारा तत्कालीन राजनीतिक व आर्थिक शोषण को मुखरता से उजागर किया गया है।

इस प्रकार, भारतीय साहित्य में विभिन्न स्तरों पर सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से एक अत्यंत समृद्ध परंपरा के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत हुए हैं।

ओम नागर के साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना :

ओम नागर के साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना का बिम्ब परिलक्षित होता है। हिंदी की साहित्यिक परंपरा से जुड़ते हुए ओम नागर ने मानवीय मूल्यों का भी प्रखरता से उल्लेख किया है। मानवीय संवेदना एवं दूसरों के प्रति उत्तरदायित्वों की समझ उनके संपूर्ण साहित्य में दिखाई देती है। अपने प्रसिद्ध कविता–संग्रह 'देखना, एक दिन' में वे लिखते हैं–

'तुम तो जानते हो
हथियारों की अंधी
होड़ से अधिक जरूरी है
पेट मे दानें और
एक गिलास स्वच्छ जल।'

('देखना, एक दिन', पृष्ठ. 27)

समाज की बुनियादी आवश्यकताओं को भूलते जा रहे मनुष्य और आधुनिकता की होड़ में सब कुछ दाँव पर लगा देने की इस अंधी दौड़ के विपरीत, ओम नागर अपने साहित्य में मानवीय मूल्यों को उजागर करने का कार्य करते हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों के इर्द–गिर्द ओम नागर की दृष्टि अत्यंत व्यापक रही है। उनके 'देखना, एक दिन' कविता–संग्रह में संकलित कविता 'तेरे शहर में' सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से मानवीय संवेदनाओं को झकझोर देने वाली एक बेहद संवेदनशील रचना है।

इसमें सामाजिक सौहार्द को बिगाड़ने वाले एवं अलगाववादी विचार रखने वाले तत्वों द्वारा समाज में

फैलाई जाने वाली नफरत और हिंसा की आग का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। यह हमारे समय और समाज की एक कड़वी सच्चाई है। समाज में व्याप्त भाईचारे का असामाजिक तत्वों द्वारा सरेआम कत्ल कर दिया जाता है। राजनीति द्वारा अपने निहित स्वार्थों के लिए सांप्रदायिकता का जहर घोलने एवं विभाजनकारी नीतियों के कारण समाज में उत्पन्न विखंडन की स्थिति को यहाँ प्रखरता से उजागर किया गया है।

'मगर! आज यह जहर किसने घोला....' (पृ. 36)

ओम नागर की मानवीय संवेदनाओं को इस कविता के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, जिसमें वे किसी भी विभीषिका के पश्चात आम व्यक्ति की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब भी राजनीतिक एवं सामाजिक परिदृश्य से मानवीय मूल्यों का लोप होता है, तो केवल विनाश ही शेष रहता है।

'डरी, सहमी-सी
होगी तेरी रूह
दोष भी क्या है, तुम्हें
तुमने देखी कहां है
आज तलक
मानवता की ऐसी दुर्दशा।'(37)

ओम नागर की एक अन्य कविता 'सड़क के दोनों ओर' हमारे सामाजिक ताने–बाने में व्याप्त विद्रूपताओं को प्रकट करती है एवं नैतिक मूल्यों के क्षरण पर प्रहार करती है। हमारा सामाजिक परिवेश आर्थिक रूप से अत्यधिक विषमता लिए हुए है, जहाँ 'अमीर अत्यधिक अमीर और गरीब अत्यधिक गरीब' वाली स्थिति बनी हुई है। मध्यम वर्ग के भीतर भी निम्न और उच्च वर्ग जैसे विभाजन होने के कारण समाज का दृष्टिकोण बदल गया है, जिससे समाज की न्यायिक परंपरा का ढांचा बिगड़ता जा रहा है। कविता में एक ओर झोपड़पट्टियाँ हैं तो दूसरी ओर बहुमंजिला इमारतें, यह दृश्य हमारे समाज में गहरी होती आर्थिक असमानता को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है।

धनवान व्यक्ति संवेदनहीन होता जा रहा है, साथ ही वह निम्न वर्ग के लोगों के प्रति उदासीनता प्रकट करता है। कविता में इस सामाजिक यथार्थ और वर्ग–भेद को अत्यंत प्रखरता के साथ रेखांकित किया गया है, जहाँ –

'लॉन में बहकाती है अमीरी, नशे में धुत्त
तेज संगीत के साथ।'

(101/देखना एक दिन)

अमीर वर्ग की संवेदनहीनता को प्रकट करती है।

'फिर भी ढाढस बंधाया है, हर रोती हुई रात को, उगते हुई सुबह ने'

(101/ देखना एक दिन)

इन पंक्तियों के माध्यम से वे निराशा के क्षणों में भी आशा एवं जिजीविषा (जीने की इच्छा) का संचार करते हैं।

ओम नागर ने राजनीति में व्याप्त अवसरवादिता पर मुखरता से कटाक्ष किया है। वर्तमान समय में मनुष्य के राजनीतिक मूल्य पूरी तरह बदल चुके हैं और पूंजीवादी सोच हावी हो चुकी है। भ्रष्टाचार ने अपनी जड़ें गहरी जमा ली हैं तथा आए दिन लोक–कल्याणकारी योजनाओं का दुरुपयोग किया जा रहा है। छल–कपट वर्तमान राजनीति का अभिन्न अंग बन गया है, जिससे राजनीतिक व्यक्तियों की कथनी और करनी में अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा है। इस प्रकार, ओम नागर के दृष्टिकोण में समकालीन राजनीतिक स्थितियां निरंतर नैतिक पतन की ओर बढ़ती जा रही हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता श्चलो गाँव चलेंश इन्हीं तमाम बिंदुओं और यथार्थ पर आधारित है।

राजनीति में व्याप्त अवसरवादिता और नेताओं के बदले हुए चरित्र पर कटाक्ष करती हुई ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

'लौटना चाहते हैं गाँव
चुनाव से कुछ महीने पहले
सरपंचई के लिए'।

(93, विज्ञप्ति भर बारिश)

भ्रष्टाचार एवं सरकारी योजनाओं में होने वाले दुरुपयोग, विसंगतियों तथा उनके नकारात्मक प्रभावों का विवेचन करते हुए कवि ओम नागर तत्कालीन व्यवस्था की पोल खोलते हैं। वे दिखाते हैं कि किस प्रकार लोक–कल्याण के लिए बनाई गई योजनाएं आम आदमी तक पहुँचने से पहले ही भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाती हैं, जिससे संपूर्ण प्रशासनिक और सामाजिक ढांचा खोखला हो रहा है।

'महानरेगा में आकंठ डूब जाने के लिए
या चुल्लू में पी लेने को
महानरेगा का खारा समंदर'।

(93, विज्ञप्ति पर बारिश)

ओम नागर ने समाज के अंतिम छोर पर खड़े हाशिए के वर्ग को लेकर अपनी चिताओं को मुखर किया है। सरकारों द्वारा जो नीतियां एवं नियम बनाए जाते हैं, उन्हें धरातल पर उतरने में गहरा अंतर्विरोध नजर आता है। ओम नागर अपने साहित्य में इन्हीं अंतर्विरोधों को उजागर करने का कार्य करते हैं। उनके 'विज्ञप्ति भर बारिश' कविता–संग्रह में संकलित कविता 'जिनकी छीन गई जमीन', वास्तव में इन्हीं सामाजिक और राजनीतिक अंतर्विरोधों की जमीन पर लिखी गई एक सशक्त रचना है।

प्रशासन जिस प्रकार से संवेदनहीन होकर सहज और सरल विषयों को भी एक अबूझ पहेली बना देता है, उससे उसकी घोर उदासीनता और तंत्र की विफलता प्रकट होती है। कवि ओम नागर प्रशासनिक व्यवस्था के इसी जन–विरोधी चरित्र को अपनी कविताओं में बेनकाब करते हैं, जहाँ–

'इधर आज भी
किसी न किसी गाँव में जुटे होंगे सरकारी अफसर
मौत को हत्या-आत्महत्या के बीच की
अबूझ पहेली बनाने में'।

(104, विज्ञप्ति पर बारिश)

हाशिए पर खड़े लोगों का जीवन कितना कष्टमय होता है, इसे शब्दों में बयां करना एक दुष्कर कार्य है। लोकतंत्र की सबसे बड़ी विडंबना यही रही है कि इस व्यवस्था में भी हाशिए पर खड़ा अंतिम व्यक्ति सदैव कुचले जाने और उपेक्षा का दंश झेलने को मजबूर है। कवि ओम नागर अपनी कविताओं के माध्यम से इसी शोषित वर्ग की मूक आवाज बनते हैं, जहाँ —

'और सरकार ने जारी कर दिया फरमान
कि हत्या पर उतारू तमाम अधनंगे-भिखमंगे लोग
बनते जा रहे लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा।'

(103, विज्ञप्ति पर बारिश)

निष्कर्ष :

ओम नागर के साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट होता है कि साहित्य समाज का मूकदर्शक न होकर उसे चेतनात्मक दृष्टि से नई दिशा दिखाने वाला एक जीवंत माध्यम है। मध्यकालीन साहित्य में जो स्वस्थ परंपरा कबीर से प्रारंभ होती है, वह छायावाद के सुमित्रानंदन पंत और निराला से होती हुई तथा यथार्थवाद का रूप लेती हुई प्रेमचंद तक जाती है। मध्यकाल से लेकर समकालीन कविता तक साहित्य के अनेक रचनाकारों ने समाज एवं राजनीति को उनके नैतिक कर्तव्यों से अवगत करवाया है। साहित्य ने सदैव सीमांत (हाशिए पर खड़े) लोगों की पीड़ाओं को मुखरता के साथ रेखांकित किया है।

आधुनिक कालखंड में इस गौरवशाली परंपरा को ओम नागर ने आगे बढ़ाते हुए नया विस्तार दिया है। उन्होंने अपने साहित्य में युगीन संदर्भों के अनुकूल कई नई स्थापनाएँ की हैं।

1. **मूलभूत आवश्यकताएँ बनाम हथियारों की होड़ :** ओम नागर मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं को लेकर अत्यधिक चिंतित हैं, जबकि आधुनिक समाज हथियारों की अंधी होड़ में लगा हुआ है। उन्होंने अपने काव्य में मानवीय संवेदनाओं को अत्यंत मुखर और स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है।
2. **विभाजनकारी राजनीति का विरोध और सामाजिक एकता :** ओम नागर ने अपने साहित्य में विभाजनकारी नीतियों का कड़ा विरोध किया है और वे सदैव समाज में एकता के पक्षधर रहे हैं। अपनी प्रसिद्ध कविता 'तेरे शहर में' के माध्यम से उन्होंने निजी स्वार्थ के लिए सांप्रदायिक दुर्भावना फैलाकर समाज को बांटने वाले राजनीतिक तत्वों पर तीखा प्रहार किया है।
3. **आर्थिक विसंगतियाँ और वर्ग-भेद :** उन्होंने आर्थिक रूप से समाज में व्याप्त विसंगतियों को संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। अमीर और गरीब के बीच की निरंतर बढ़ती खाई को पाटने के पक्षधर ओम नागर आर्थिक असमानता से उपजे वैमनस्य को समाज के लिए एक गंभीर चुनौती मानते हैं। इन तमाम यथार्थवादी और संवेदनशील पक्षों को उन्होंने अपने साहित्य का मुख्य आधार बनाया है।
4. **नैतिक एवं राजनीतिक पतन पर कटाक्ष :** आधुनिक दौर में सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों ही रूपों में मनुष्य के भीतर नैतिक मूल्यों के पतन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वे इस नैतिक अवमूल्यन को समाज के लिए एक बड़ी समस्या मानते हुए एक स्वस्थ सामाजिक परिवेश की अपेक्षा रखते हैं। इसके साथ ही, राजनीति में बढ़ती अवसरवादिता एवं जनकल्याणकारी योजनाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार को राजनीतिक पतन के रूप में प्रस्तुत

कर उन्होंने व्यवस्था पर तीखा कटाक्ष किया है।

इस प्रकार, ओम नागर का संपूर्ण साहित्य केवल कलात्मक सौंदर्यशास्त्र का साहित्य न होकर, समाज की विसंगतियों का जीवंत प्रतिबिंब है। वे समाज को जिस रूप में देखते हैं, उसे अपने साहित्य के माध्यम से उसी यथार्थ रूप में दिखाते भी हैं। उनका मौलिक चिंतन और उनकी सामाजिक चिंताएँ उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। एक स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण में साहित्यकार का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है और ओम नागर जी इसमें अपनी महती भूमिका निभा रहे हैं। उनका यह समग्र साहित्य इस स्थापना को और अधिक मजबूती प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

1. कबीरदास. कबीर ग्रंथावली. संपादित श्यामसुंदर दास, नागरीप्रचारिणी सभा, 1928.
2. गुप्त, मैथिलीशरण. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली (खंड –1). वाणी प्रकाशन, 2020, P. 45.
3. दिनकर, रामधारी सिंह. समीक्षा और संकलन. लोकभारती प्रकाशन, 2014, P. 88.
4. नागर, ओम. देखना, एक दिन (कविता संग्रह). विकास प्रकाशन, 2008.
5. नागर, ओम. विज्ञप्ति भर बारिश (कविता–संग्रह). बोधि प्रकाशन, 2015.
6. प्रेमचंद. साहित्य का उद्देश्य (भाषण और निबंध). हंस प्रकाशन, 1936.
7. शर्मा, रामविलास, संपादक. राग–विराग (सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविताओं का संकलन). राजकमल प्रकाशन, 2007, PP. 142–145. (मूल कार्य 1930–1940 के दशक में प्रकाशित).
8. सिंह, नामवर. कविता के नये प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन, 1982.

ईमेल : kphindi14@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 21–26

जनपद फिरोजाबाद में कृषि विकास की आधुनिक प्रौद्योगिकिया : एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. जुगेंद्र सिंह
प्रोफेसर, जे० एस० विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद।

सारांश –

जनपद फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश में कृषि का प्रमुख स्थान है और यहां के किसान मुख्य रूप से गन्ना चावल, गेहूं, ज्वार, बाजरा और दलहन जैसी फसलें करते हैं। यद्यपि यहां कृषि में पारंपरिक प्रौद्योगिकियां प्रचलित हैं परन्तु आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों के प्रयोग से उत्पादन में सुधार की संभावना है। इस शोध का उद्देश्य फिरोजाबाद जनपद में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों के प्रभाव का विश्लेषण है। आधुनिक प्रौद्योगिकी में परिशुद्ध कृषि, उन्नत सिंचाई पद्धति, शंकर एवं उन्नतशील बीजों का प्रयोग, जैविक कृषि, कृषि यंत्र और कीट नियंत्रण प्रौद्योगिकियां शामिल हैं। इन प्रौद्योगिकियों से न केवल उत्पादन में वृद्धि हो रही है अपितु किसानों को जल, ऊर्जा और समय की भी बचत हो रही है। लेकिन इन प्रौद्योगिकियों का उपयोग सीमित है और किसानों को समय अनुसार प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कृषि क्षेत्र में इन प्रौद्योगिकियों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए सरकार, कृषि संस्थाओं और किसानों के बीच आपसी समन्वय की आवश्यकता है।

प्रस्तावना –

फिरोजाबाद जनपद, उत्तर प्रदेश में कृषि अर्थव्यवस्था के रूप में प्रमुख स्थान रखता है। यहां मुख्य रूप से कंदवर्गी फसलें, खाद्यान्न, दलहन और तिलहन की कृषि की जाती है। यद्यपि पारंपरिक कृषि प्रणाली के कारण उत्पादन में स्थिरता एवं गुणवत्ता में जटिलता उत्पन्न हो रही है। ऐसे में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों की आवश्यकता बढ़ जाती है। वर्तमान समय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी उन्नति ने कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव किए हैं। मृदा स्वास्थ्य, जल प्रबंधन, फसल संरक्षण और उत्पादन में वृद्धि के लिए नूतन प्रौद्योगिकियों का उपयोग करना वर्तमान समय की आवश्यकता बन गई है। इस अध्ययन में कैसे नई प्रौद्योगिकियों को स्थानीय किसानों द्वारा अपनाया गया है एवं उनके लिए यह प्रौद्योगिकियां कितनी लाभदायक हो रही हैं साथ ही कृषि क्षेत्र में आने वाली चुनौतियों और इन प्रौद्योगिकियों के प्रसारण में आ रही समस्याओं का भी मूल्यांकन किया जाएगा।

क्षेत्र परिचय –

फिरोजाबाद जनपद गंगा एवं यमुना नदियों द्वारा निर्मित दोआब का उपजाऊ और समतल मैदानी भाग है, जो इसके मध्य एवं पश्चिमी भाग का प्रतिनिधित्व करता है। जिसका दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र यमुना नदी द्वारा निर्मित

नवीन जलोढ मैदान एवं असम बीहड़ी क्षेत्र है। यद्यपि इस जनपद को उत्तरी पश्चिमी एवं मध्य भाग पुरातन जलोढ निक्षेप द्वारा निर्मित बांगर क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। फिरोजाबाद जनपद भारत के उत्तरी क्षेत्र में स्थित उत्तर प्रदेश के उत्तरी पश्चिमी भाग में 26° 54′ 03′ उत्तरी अक्षांश से लेकर 27° 30′ 17′। उत्तरी अक्षांश तक तथा 70° 12′ 6′ पूर्वी देशांतर से 78° 50′ 11′ पूर्वी देशांतर तक 2366.84 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। जनपद में 9 विकासखंड– नारखी, टूण्डला, फिरोजाबाद, शिकोहाबाद, मदनपुर, अरांव, हाथवंत तथा जसराना है जिन्हें वर्तमान शोध में आधारभूत इकाई के रूप में ग्रहण किया गया है।

शोध विधि –

1. **प्राथमिक आंकड़े –** प्राथमिक आंकड़ों का संकलन कृषकों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति के आधार पर किया गया है।
2. **द्वितीयक आंकड़े –** द्वितीयक आंकड़े सार्वजनिक एवं असार्वजनिक, प्रकाशित एवं प्रकाशित रिपोर्ट, पत्र पत्रिकाओं से संकलित किए गए हैं।

फिरोजाबाद जनपद में कृषि की पारंपरिक प्रौद्योगिकियां –

फिरोजाबाद जनपद में अधिकांशतः किसान पारंपरिक कृषि प्रौद्योगिकयों का प्रयोग कर रहे हैं जिनमें पुराने उपकरणों का प्रयोग और उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग शामिल है। कृषि कार्यों में पारंपरिक प्रकार के हल, बैल और हाथ से कीटनाशक छिड़काव किया जाता है। इस तरह की प्रौद्योगिकियां महंगी और श्रमिक प्रधान होती हैं, जिसमें उत्पादन लागत अधिक होती है और उत्पादन दर कम होती है।

आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों का महत्व –

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र में आधुनिक प्रौद्योगिकियों के उपयोग ने कृषि उत्पादन और कृषि कार्य कुशलता में सुधार किया है। परिशुद्ध कृषि, बौछार एवं बूद सिंचाई, संकर एवं उन्नतशील बीजों का उपयोग और उन्नत कृषि यंत्रों का प्रयोग जैसी आधुनिक उपायों ने कृषि क्षेत्र में नया मुकाम हासिल किया है। फिरोजाबाद जनपद में इन प्रौद्योगिकियों को अपनाने के प्रयास हो रहे हैं लेकिन अभी भी इनका उपयोग सीमित है।

- **परिशुद्ध कृषि –**

परिशुद्ध कृषि का उद्देश्य कृषि में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके कृषि उत्पादकता में सुधार करना है। इसमें जीपीएस, ड्रोन और सेंसर जैसे यंत्रों का उपयोग किया जाता है जो किसानों को भूमि की स्थिति, मौसम, मृदा की नमी और कीटों की जानकारी प्रदान करते हैं। फिरोजाबाद जनपद में कुछ किसान परिशुद्ध कृषि को अपनाकर अपनी फसलों की निगरानी कर रहे हैं, उदाहरण के लिए ड्रोन के माध्यम से फसल की स्थिति की रिपोर्ट और कीटों की पहचान की जा रही है जिससे किसानों को त्वरित निर्णय लेने में सहजता होती है।

प्रभाव :– परिशुद्ध कृषि से किसानों को अधिकतम उत्पादन की सटीक जानकारी मिलती है। यथा समय रहते फसल में उर्वरकों का सही उपयोग करके उत्पादकता और गुणवत्ता में वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

2. **सिंचाई आधुनिकीकरण –**

फिरोजाबाद जनपद में जल की कमी होना एक मुख्य समस्या है। जलवायु परिवर्तन और बढ़ती जलवायु असमानताओं के कारण पारंपरिक सिंचाई विधियां जैसे नेहरों द्वारा सिंचाई, कुओं द्वारा सिंचाई, तालाबों द्वारा

सिंचाई अब प्रभावपूर्ण नहीं है इसके समाधान के लिए बूंद सिंचाई और बौछार सिंचाई तंत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है। बूंद सिंचाई प्रणाली में जल सीधा फसलों की जड़ों में पहुंचता है जिससे पानी की अधिकतम बचत होती है और फसल को आवष्यकता अनुसार पानी की आपूर्ति होती रहती है

प्रभाव :– इन सिंचाई पद्धतियों से जल की बचत होती है और किसानों के धन, समय तथा प्रयास की बचत होती है जिससे किसानों की आर्थिक दशा में सुधार हो सकता है।

3. संकर तथा उन्नतशील बीजों का उपयोग –

फिरोजाबाद जनपद में किसानों द्वारा पारंपरिक देशी बीजों का प्रयोग किया जाता था। जिसमें उत्पादन और रोग प्रतिरोधी क्षमता कम होती थी। लेकिन कालांतर में संकर तथा उन्नतशील बीजों का उपयोग किया जाने लगा जिसमें उत्पादन और रोग प्रतिरोधी क्षमता देशी बीजों की अपेक्षा अधिक होती है और फैसलें शीघ्रता से तैयार होती हैं तथा गुणवत्ता भी उत्तम होती है। उदाहरण के लिए गन्ना, गेहूं, चना, चावल, और बाजार की संकर एवं उन्नतशील प्रजातियां उगाई जा रही हैं।

प्रभाव :– संकर और उन्नतशील बीजों के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि होती है और रोगों एवं कीटों का प्रकोप कम होता है जिसके फलस्वरुप किसानों को कम समय में अधिक लाभ प्राप्त होता है।

4. जैविक कृषि – वर्तमान समय में पर्यावरण समस्याओं और स्वास्थ्य की दृष्टिकोण से जैविक कृषि का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। जैविक कृषि में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के स्थान पर प्राकृतिक संसाधनों द्वारा निर्मित किए गए उर्वरक आदि का उपयोग किया जाता है। फिरोजाबाद जनपद में किसानों द्वारा जैविक कृषि की जाने लगी है जिसमें वर्मीकंपोस्ट की खाद और जैविक कीटनाशकों का उपयोग होने लगा है। यह न केवल मिट्टी की उर्वरता, मिट्टी में लचीलापन आदि बनाए रखता है बल्कि पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ता है।

प्रभाव :– जैविक कृषि उत्पादन की गुणवत्ता शुद्ध, स्वास्थ्यपरक, पर्यावरण अनुकूल होती हैं जिससे किसानों को अपने उत्पाद का अच्छा मूल्य मिलता है और आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

5. कृषि यंत्रों का उपयोग – फिरोजाबाद जनपद में कृषि में कृषि यंत्रों का उपयोग बढ़ रहा है। जिससे कृषि कार्यों में सुधार हुआ है। ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, रोटावेटर, सुपर सीडर जैसे यंत्रों का उपयोग अब सामान्य हो रहा है इन यंत्रों के उपयोग से समय की बचत होती है और गुणवत्ता अच्छी होती है तथा कृषि में श्रमिक आदि की आवश्यकता कम हो जाती है जिसके फलस्वरुप कृषि लागत घट जाती है।

प्रभाव :– कृषि यंत्रों के उपयोग से किसानों को समय की बचत होती है। श्रम लागत कम होती है। जिस कारण कुल लागत में कमी आती है जिससे किसानों को कृषि से अधिक लाभ होता है।

6. कीट एवं रोग नियंत्रण प्रौद्योगिकी – जनपद फिरोजाबाद में कृषि में कीटों और रोगों का गंभीर प्रकोप है जिसके फलस्वरुप फसलों की उपज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस समस्या को रोकने के लिए जैविक और रासायनिक कीटनाशक का उपयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ किसान कीटों और रोगों की पहचान के लिए प्रौद्योगिकीय यंत्रों का भी उपयोग कर रहे हैं। जिससे त्वरित उपचार संभव हो जाता है।

प्रभाव :– कीट और रोग नियंत्रण प्रौद्योगिकियों के उपयोग से फसलों को सुरक्षित रखा जा सकता है। जिससे उत्पादन वृद्धि होती है फलस्वरुप किसानों की आय में वृद्धि होती है।

7. सरकारी योजनाएं और वित्तीय सहायता – फिरोजाबाद जनपद में कृषि क्षेत्र में सुधार लाने हेतु राज्य सरकार और केंद्र सरकार ने किसानों के लिए कई प्रकार की योजनाएं बनाई हैं। जिसमें प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, किसान क्रेडिट कार्ड, और किसानों को अनुदान आदि। इन योजनाओं से किसान लाभान्वित हो रहे हैं और नई प्रौद्योगिकियों का प्रयोग कर रहे हैं।

प्रभाव :– सरकारी योजनाओं के कारण किसान नई–नई प्रौद्योगिकियों का उपयोग कर रहे हैं। जिससे कृषि लागत घट रही है। और किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है।

यह तालिका फिरोजाबाद जनपद के विभिन्न विकास खंडों में कृषि विकास हेतु अपनाई गई आधुनिक प्रौद्योगिकियों का प्रतिशत वितरण दर्शाती है।

तालिका

क्रम संख्या	विकास खंड (%)	कृषि यंत्रीकरण(%)	उन्नत बीज (%)	मृदा परीक्षण (%)	सूक्ष्म सिंचाई (%)	स्तर (%)
1.	फिरोजाबाद	85	80	75	66	75
2.	शिकोहाबाद	82	78	75	58	73
3.	टूण्डला	78	72	68	55	68
4.	नारखी	70	65	68	50	63
5.	जसराना	68	65	60	45	60
6.	एका	65	62	58	42	57
7.	मदनपुर	63	60	55	40	55
8.	अरांव	60	58	52	38	52
9.	हाथवंत	66	64	59	44	62

स्रोत– उत्तर प्रदेश कृषि विभाग, जनपद गजेटियर फिरोजाबाद, जिला सांख्यिकी पत्रिका फिरोजाबाद, कृषि विभाग के विकासखंड स्तरीय कार्यालयों की वार्षिक रिपोर्ट।

- फिरोजाबाद विकास खंड में आधुनिक तकनीकों का उपयोग सबसे अधिक (स्तर 75%) है।
- अरांव में इन प्रवृत्तियों का स्तर सबसे कम (52%) दर्ज किया गया है।
- सभी क्षेत्रों में सूक्ष्म सिंचाई का प्रतिषत अन्य श्रेणियों की तुलना में काफी कम है, जो इस क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता को दर्शाता है।

सुझाव – फिरोजाबाद जनपद में आधुनिक प्रौद्योगिकियों को प्रभावी रूप से अपनाने के लिए कई सुझाव दिए गए हैं। ताकि किसानों को बेहतर उत्पादन, लागत में कमी और उच्च गुणवत्ता वाली फसलों का लाभ मिल सके। यहां कुछ प्रमुख सुझाव दिए गए हैं। जो फिरोजाबाद जनपद में कृषि क्षेत्र के विकास और किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सहायक हो सकते हैं।

1. कृषि प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन – फिरोजाबाद जनपद में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कदम, किसानों को इन प्रौद्योगिकियों के लिए प्रेरित करना, शिक्षित करना तथा उन्हें प्रशिक्षित करना है। इसके लिए सरकारी विभागों, कृषि संस्थानों आदि को मिलकर नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए। इन कार्यक्रमों में किसानों को परिशुद्ध कृषि, सिंचाई

प्रौद्योगिकी, संकर और उन्नतशील बीजों का प्रयोग, जैविक कृषि और आधुनिक कृषि यंत्रों के उपयोग के बारे में जानकारी दी जा सकती है।

2. **सिंचाई प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार में वृद्धि –** फिरोजाबाद जनपद में जल संकट को देखते हुए जलवायु आधारित सिंचाई प्रौद्योगिकी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, और फुब्बारा सिंचाई जैसे जल बचाने वाले उपायों को अधिक से अधिक किसान अपनाएंगे, तो जल कम बर्बाद होगा और उत्पादन में वृद्धि होगी। किसानों को इन प्रणालियों के उपयोग के लाभों के बारे में समझाना और वित्तीय सहायता प्रदान करना आवश्यक है। सरकार और कृषि विभाग को इन प्रौद्योगिकियों को कम दरों पर उपलब्ध कराना चाहिए ताकि लघु और सीमांत किसान भी इनका लाभ ले सकें।

3. **संकर तथा उन्नतशील बीजों की उपलब्धता और वितरण –** जनपद फिरोजाबाद के किसान इन बीजों का अधिकतम में प्रयोग करें, इसके लिए सरकारी संस्थाओं को इस बात पर जोर देना चाहिए कि संकर और उन्नतशील बीज फसलों के उत्पादन वृद्धि और रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार लाते हैं। सरकारी, गैर सरकारी संस्थाएं समय पर इन बीजों की आपूर्ति और गुणवत्ता की निरंतरता सुनिश्चित करनी होगी।

4. **जैविक कृषि का प्रचार प्रसार –** फिरोजाबाद जनपद में जैविक कृषि का महत्व अधिक महसूस किया जा रहा है। क्योंकि यह न केवल पर्यावरण की अनुकूल है बल्कि उत्पादों की गुणवत्ता भी बेहतर होती है। इस जनपद में जैविक कृषि के प्रचार प्रचार के लिए किसानों को प्राकृतिक उर्वरकों जैसे वर्मी कंपोस्ट, हरी खाद, और जैविक कीटनाशकों का उपयोग के बारे में व्यापक रूप से जागरूक किया जाए, इसके लिए किसानों को वित्तीय अनुदान और सब्सिडी प्रदान की जाए जिससे वे जैविक उत्पादों का उत्पादन शुरू कर सके।

5. **कृषि यंत्रों की पहुंच और वित्तीय सहायता –** वर्तमान समय में कृषि में आधुनिक यंत्रों का उपयोग उत्पादन को तेज तथा प्रभावी बना सकता है। फिरोजाबाद जनपद के किसान सीमित संसाधनों के कारण ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, रोटावेटर जैसे आधुनिक यंत्रों को उपयोग में नहीं ला पाते हैं। इसके लिए सरकार को कृषि यंत्रों पर छूट देने और के फायदे दरों में किराए पर उपलब्ध कराने की योजना बनानी चाहिए। इससे किसानों को कृषि कार्यों में समय की बचत होगी और कृषि लागत में कमी आएगी।

6. **कृषि विपणन और मूल्य श्रृंखला में सुधार –** फिरोजाबाद जनपद में उत्पादों का विपणन एक बड़ी समस्या है। किसान को अपनी उपज उचित मूल्य पर बेचने के लिए विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इन समस्याओं के समाधान के लिए सही विपणन संस्थानों से जोड़ने के लिए एक प्रभावी प्रणाली विकसित करनी चाहिए। इसके तहत कृषि उत्पादन के विपणन के लिए ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और किसान उत्पादन कंपनियों की स्थापना होनी चाहिए इससे किसानों को अपने उत्पाद सीधे उपभोक्ता तक पहुंचाने का अवसर मिलेगा तथा उपयुक्त मूल्य मिलेगा।

7. **कृषि से संबंधित डेटा और अनुसंधान का उपयोग –** कृषि क्षेत्र में अनुसंधान और विकास पर ध्यान केंद्रित करना बहुत महत्वपूर्ण है। फिरोजाबाद जनपद में फसल उत्पादन और भूमि की स्थिति से संबंधित डाटा संग्रहित करना चाहिए ताकि फसलों के लिए सर्वोत्तम कृषि प्रौद्योगिकियों का चयन किया जा सके। कृषि विश्वविद्यालय और अनुसंधान संस्थानों को किसानों के लिए उपयुक्त बीज, उर्वरक और कृषि पद्धतियां विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

8. **जलवायु परिवर्तन के प्रति जागरूकता और अनुकूलन** – जलवायु परिवर्तन कृषि पर गहरा प्रभाव डालता है। फिरोजाबाद जनपद के किसानों को इसके प्रति जागरूक करना और उन्हें जलवायु अनुकूल कृषि प्रौद्योगिकियों के बारे में बताना आवश्यक है। इसके तहत फसल चक्र में विविधता, पानी बचाने वाली प्रौद्योगिकयों, और नवीनतम मौसम विज्ञान जानकारी प्रदान की जा सकती है। जिससे किसान अपनी कृषि को जलवायु के अनुसार अनुकूलित कर सकें।

निष्कर्ष –

फिरोजाबाद जनपद, जो पारंपरिक रूप से कृषि पर आधारित है, में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों के समावेश से न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है बल्कि किसानों की आय और जीवन स्तर में भी सुधार आया है। इस अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि फिरोजाबाद जनपद में कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का उपयोग बढ़ रहा है जो कृषि उत्पादन और संसाधन प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। बूंद सिंचाई और सटीक जल प्रबंधन प्रणाली जैसी जल बचत प्रौद्योगिकियों का उपयोग किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी साबित हुआ है, इससे जल की बर्बादी कम हुई है और सिंचाई की लागत में कमी आई है, साथ ही संकर और उन्नतशील बीजों का उपयोग जैविक कृषि और उन्नत फसल संरक्षण प्रौद्योगिकियों ने उत्पादकता में वृद्धि की है। किसानों ने उन्नत किस्म और उच्च गुणवत्ता वाली फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए इन प्रौद्योगिकियों को अपनाया है, जिससे फसल की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार हुआ है।

संदर्भ –

1. भारत सरकार, कृषि मंत्रालय (2020). कृषि और किसान कल्याण विभाग की रिपोर्ट. भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. उत्तर प्रदेष कृषि विभाग, (2021). फिरोजाबाद कृषि क्षेत्र– एक आकलन, उत्तर प्रदेश राज्य कृषि विभाग, लखनऊ.
3. कृषि विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (2022). स्मार्ट एग्रीकल्चर– एक नया दृष्टिकोण, कृषि विज्ञान पत्रिका, इलाहाबाद विश्वविद्यालय।
4. कृषि अनुसंधान परिषद (2021). हाइब्रिड बीजों और उन्नत कृषि तकनीक का प्रभाव, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।
5. विश्व बैंक (2019). कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव और अनुकूलन, विश्व बैंक वॉशिंगटन,डी.सी.
6. भारतीय कृषि शोध परिषद (2020) कृषि में जैविक तकनीक का विकास और प्रोत्साहन, भारतीय कृषि षोध परिषद, नई दिल्ली।
7. राज्य सरकार की कृषि नीति (2021). कृषि नीतियों में सुधार और प्रौद्योगिकी का समावेश, उत्तर प्रदेश राज्य कृषि नीति, लखनऊ।
8. कृषि विज्ञान केंद्र फिरोजाबाद (2022). फिरोजाबाद जनपद में आधुनिक कृषि तकनीकियों का अनुप्रयोग, कृषि विज्ञान पत्र केन्द्र, फिरोजाबाद।

Mail ID : drjugendra.yadav79@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 27–31

आदिवासियों के प्रति क्रूरताओं के खिलाफ आवाज : जसिन्ता केरकेट्टा की कविता संकलन 'प्रेम में पेड़ होना'

श्वेता टी. पी.
शोधार्थी, हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय, केरल।

आदिवासी जीवन दर्शन आदिम युगीन जीवनशैली एवं संस्कृति से जुड़ा हुआ है। आदिवासी जीवन जंगलों में प्रकृति से जुड़कर रहता है। प्रकृति और आदिवासियों का जो सम्बन्ध है, वह तथाकथित 'सभ्य' मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध से बिलकुल भिन्न है। यह सहज बात है कि मनुष्य आजीविका के लिए प्रकृति के संसाधनों का उपयोग करता है। लेकिन जब मानव आवश्यकता के बदले स्वार्थता के लिए संसाधनों का उपयोग करता है, तो वह प्रकृति का दोहन बन जाता है। आदिवासियों ने अपनी जीवन शैली का ऐसा प्रबंध किया है कि प्रकृति को कम हानि पहुँचे। उनके लिए प्रकृति केवल संसाधनों का स्रोत नहीं है। प्रकृति उनका अस्तित्व है। वे प्रकृति और उसके संसाधनों पर केवल मनुष्य का नहीं बल्कि सभी जीव जंतुओं का अधिकार स्वीकार करते हैं। इसलिए आदिवासी लोग अपने पूर्वजों के कच्चे जीवन के अनुभवों से अर्जित ज्ञान–विज्ञान तथा मानवीयता को साथ लेकर चलते हैं। यही नहीं प्रकृति के प्रति प्रेम और आदर की भावना को भी वे आत्मसात करते हैं। निस्वार्थ प्रेम और दान का पाठ वे प्रकृति से ही सीखते हैं। तथाकथिक 'आधुनिक मानव समाज' को इनसे ये पाठ सीखना जरूरी है। क्यूंकि भूमंडलीकरण के इस युग में आधुनिक मानव, प्रकृति और प्रेम दोनों से दूर होता जा रहा है। प्रेम से बिछड़कर वह हिंसा की राह पकड़ रहा है। विकास के नाम पर मानवीय मूल्य और संस्कृति का विनाश की ओर बढ़ रहे इस अंधे युग में आदिवासी साहित्य और कविता हमें प्रकृति प्रेम और मानवीयता की ओर लौटने की प्रेरणा देती है। जसिंता केरकेट्टा के शब्दों में,

"आदिवासी जीवन दर्शन में प्रेम में होने और जीने का एक सहज रास्ता मिल सकता है, जो इनसान को इनसान के साथ सब जीवन के प्रेम में होते हुए पूरी प्रकृति से प्रेम करना सिखा सकता है"।[1]

तथाकथित सभ्य मनुष्य आदिवासियों को 'आदिम', 'असभ्य' आदि कहकर संबोधित करता है। वे आदिम जरूर हैं। मानव राशि के आदिम संस्कृति का अंश जो उनमें शेष है वही उनकी आदिमता का कारण है। इसी संस्कृति के जड़ों से आधुनिक सभ्यताएँ विक्सित हुए हैं। समकालीन कवि जसिंता केरकेट्टा जी ने अपनी कविताओं में आदिवासी जीवन दर्शन की सुंदर भूमिका दिखाई है। जिसमें हम अपने आप में प्रकृति को ढूंढने को मजबूर हो जाते हैं। आदिवासी का अस्तित्व किस प्रकार प्रकृति से अभिन्न है, इस बात का भी स्पष्टीकरण

जसिंता जी की कविताओं में मिलती है। 'जब पेड़ उखड़ता है' कविता में वे लिखती हैं,

'जंगल से गुजरते हुए उसने
ओक की पत्तियों को चूमा
जैसे अपनी माँ की हथेलियों को चूमा
कहा– यह पेड़
मेरी माँ का हाथ पकड़कर बड़ा हुआ है
इसके पास आज भी उसका स्पर्श है
जंगल का हाथ पकड़कर
मेरे पुरखे भी बड़े हुए
वे नहीं है पर यह आज भी वहीं खड़ा है
इसने मेरी पुरखों की स्मृतियों को
और स्पर्शों को बचाकर रखा है।'[2]

जंगल और उसके संसाधन आदिवासियों के लिए अपने अस्तित्व के समान है। जब स्वार्थी मानव उसे हानि पहुँचाता है, तब उनका अस्तित्व भी धीरे–धीरे नष्ट हो जाता है। लेकिन उनके इस अतित्व को यह 'सभ्य' लोग नहीं पहचानते हैं। आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के चक्कर में पड़े लोग आदिवासियों को पिछड़े और विकास से दूर मानते हैं। उन पर अपने विकास की नीतियों को थोपकर उन्हें उनकी संस्कृति से दूर करना चाहते हैं। गौर देने की बात यह है कि आदिवासियों का भूमंडलीकरण की नीतियों पर पलना संभव नहीं है। भूमंडलीकरण की नीतियाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में है। वस्तुओं के व्यावसायिक लाभ और वैश्विक उपलब्धता को केंद्र में रखकर बने इन नीतियों में प्रकृति की सुरक्षा का अपेक्षाकृत कम महत्त्व है। आदिवासी, जिनका अस्तित्व ही प्रकृति से जुड़ा है उनका भूमंडलीकरण से कोई लाभ नहीं है। इसलिए प्रकृति का शोषण करके विकास की रस्सी पकड़ने वाले आधुनिक विकास परंपरा उन्हें स्वीकार्य नहीं है। जिसके विरुद्ध वे आज अपना प्रतिरोध भी स्पष्ट कर रहे हैं। हरि राम मीणा ने अपने लेखन में एक जगह कहा है–

'आदिम' से आदिवासी होने का अर्थ समाजशास्त्रीय है जिसकी अपनी सीमाएँ हैं। इस शब्द की व्यापक व्याख्या आदिम दर्शन है जो एक ओर संसार की समस्त मानवता के आदि–पुरखों के प्रकृति–प्रेम की महत्ता स्थापित करता है। दूसरी ओर यह दर्शन आधुनिक अति–भौतिकतावादी सभ्यता व सोच से उत्पन्न बहुआयामी संकटों का समाधान का संकेत देता है' ।[3]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार आदिवासी जीवन दर्शन आधुनिक मानव के लिए अनिवार्य पाठ है। इसे समझने से आदिवासी विमर्श को भी हम गहराई से समझ सकते हैं। समकालीन साहित्य में आदिवासियों का जो प्रतिरोधी स्वर है, वह केवल आधुनिक समाज के प्रति विद्रोह नहीं है। बल्कि वह तथाकथित विकसित समाज का आदिवासियों पर किए जाने वाले अत्याचार के प्रति आक्रोश है। उन्हें मनुष्य के साथ–साथ प्रकृति, संसाधन, सभी का समग्र एवं सतत विकास चाहिए जो उनके जीवन मूल्यों को आत्मसात करने से संभव हो सकता है। जसिंता जी की शब्दों में,

'आदिवासी जीवन दर्शन और दुनिया हमें ऐसी दुनिया से जोड़े रख सकती है जहां बेशर्त प्रेम संभव है। जहाँ सम्मान, परवाह, आजादी स्वीकार्य हो। जहाँ हम बढ़ सकते हैं, अकेले-अकेले पर साथ-साथ भी'।[4]

आदिवासी समाज के इन जीवन मूल्यों को समझने और अपनाने के लिए उनके अस्तित्व को बचाए रखना अनिवार्य है। आज के समाज में यह कार्य कठिन प्रतीत होता है। क्यूंकि आज के समाज में एक हिस्सा वह है, जो अपने वर्चस्ववाद से सब कुछ कब्जा करने में लगा हुआ है। और दूसरा हिस्सा वह है जो वर्चस्ववादियों के घुसपैठ से बचकर अपना अस्तित्व बनाए रखने का जंग अपने हिसाब से लड़ रहा है। अस्तित्व के संघर्ष ने समाज को ठुकरा दिया है। समकालीन साहित्य यही ठुकरे समाज में 'अस्तित्व की पहचान' के लिए नारा लगाता है। समकालीन साहित्यिक विमर्श समाज के सभी पहलुओं से अपने अस्तित्व के लिए जंग लड़ने वालों को आवाज देता है। लेकिन समाज विरोधी शक्तियाँ लोगों की इस बेचैनी का फायदा उठाते हैं। जिस तरह अंग्रेजों ने हमें 'डिवाइड एंड रूल' का शिकार बनाया था, वैसे ही स्वार्थ राजनेता देश के विकास के नाम देकर अथवा एकता या समान अधिकार का झूठा दावा देकर लोगों को अपने हिसाब से बाँटे रखते हैं। इस राजनैतिक ढोंग का कवि ने कुछ ऐसा जिक्र किया है,

'इधर देश के प्रेम में कुछ लोग
सबको 'एक' कर देना चाहते है,
जो 'एक' न हो पाए वे मारे जाते हैं,
प्रेम के नाम पर
सबको एक करने की चाहत में
वे मनुष्य भी नहीं रह पाते हैं।'[5]

लोगों को एकता में बाँधने के बजाय स्वार्थी राजनेता लोगों को जाति, धर्म जैसे दरारों से बाँटे रखते हैं। जब तक समाज में यह दरार है, तब तक प्रेम और उदारता का भाव नहीं पनपेगा। आदिवासी समाज में यह दरार नहीं हैं, वे प्रकृति के सामने खुद को एक मानते हैं। क्योंकि वे सब कुछ प्रकृति से सीखते हैं। प्रेम का पावन रूप सिर्फ प्रकृति में देखने को मिलती है। जिस तरह प्रकृति हमें प्रेम करना सिखाती है, वैसे और कोई नहीं सिखा सकता। कवि ने भी अपनी जीवनानुभवों से यह प्रेम को आत्मसात किया है। उन्होंने प्रकृति से ही प्रेम में पेड़ हो जाना सीखा है। वे कहती है,

'आसान नहीं होता प्रेम करना
धरती उनके ही प्रेम से बची हुई है
बहुत देर उसे देखती हूँ
सोचती हूँ
आदिवासी दुनिया में कैसे
प्रेम भी पेड़ हो जाता है'।[6]

लेकिन दुनिया को प्रकृति प्रेम सिखाने वाले इन आदिवासियों के साथ कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा है। समाज अपनी सुख सुविधा के लिए तथा विकास के लिए जंगलों को काटकर उनके संसाधनों को लूटकर

आदिवासियों का अस्तित्व ही मिटा रहे हैं। टूरिज्म और रिसोर्ट्स के लिए जब पेड़ों को उखाड़ दिया जाता है, तब आदिवासियों का इतिहास तथा उनकी स्मृतियों को भी उखाड़ दिया जा रहा है। जसिन्ता जी की शब्दों में कहे तो,

'एक पेड़ के उखाड़ने से
पेड़ एक बार ही उखड़ता है
पर उससे जुदा आदमी
दो बार उखड़ता है
एक बार अपनी जमीन से
और दूसरी बार
अपनों की स्मृतियों की स्पर्श से' ।[7]

अपने पूरे जीवन काल में प्रकृति और प्रेम के उत्तम उदाहरण बनकर जीवन व्यतीत करने वाले आदिवासियों को आधुनिक समाज के रीतियों को अपनाने में मजबूर किया जा रहा है। उनके अनपढ़ होने का फायदा उठाकर उन्हें जंगलों से विस्थापित कर शहरीकरण के भागी बनाते हैं। अगर कोई एक उसमें होशियार निकले तो उसे समाजविरोधी कहकर नमो निशान मिटा दिया जाएगा। लेकिन इस कर्म को सिर्फ जनहित का ही थप्पा लगेगा। सदियों की इस भयानक घटनाक्रम की ओर इशारा करते हुए कवि अपनी 'यह किसका नाम' में लिखती है,

'मैं उनके इतिहास के भीतर
अपना इतिहास ढूँढ रहा हूँ
देख रहा हूँ, पूछ रहा हूँ
दुनिया के हर कोने में हर जगह,
क्यों मेरे ही हत्या आम है?
क्यों हर कोई हत्या का कोई न कोई सुन्दर नाम है?'[8]

आदिवासी लोग सिर्फ अपने सभ्यता को बनाये रखने के लिए प्रतिरोध करते हैं। उन्हें बस प्रकृति को बचाना है, अपने अस्तित्व बचाना है। प्रकृति और उसके संसाधन बाजारवादी सभ्यता में सिर्फ उपभोग की वस्तुएँ हैं। उनका केवल उपभोग होता है संरक्षण नहीं। जिन जन समाज का प्रकृति ही अस्तित्व हो उनके प्रति यह क्रूरता है।

इस तरह यह संकलन की कविताएँ सिर्फ आदिवासियों का विद्रोह नहीं है। इन कविताओं में प्रेम है, करुणा है, सभी जीवों के प्रति सहानुभूति है भविष्य के प्रति व्याकुलता है। कवि ने अति भौतिकतावादी सभ्यता से उत्पन्न संकटों का समाधान ढूँढने की आवश्यकता पर इशारा करते हैं। प्रगति के पथ पर अग्रसर होते हुए प्रकृति के साथ रिश्ता न छूटे इस दिशा पर विचार करने की प्रेरणा भी कवि अपनी कविताओं द्वारा देते हैं। कवि ने आदिवासी जीवन की पीड़ाओं को बड़ी सहजता से अपनी कविताओं में व्यक्त की है। तथाकथित 'सभ्य' समाज द्वारा आदिवासियों के प्रति हो रही क्रूरता का दर्जन भी इन कविताओं में हुआ है। प्रकृति और प्रेम का गहन पाठ पढ़ाते हुए उन्होंने अपनी संग्रह द्वारा व्यक्ति से लेकर प्रकृति के विराट तक को एक सूत्र में बांधा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Pg-14, भूमिका, प्रेम में पेड़ होना, जसिन्ता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाशन।
2. Pg-37, जब पेड़ उखड़ता है– प्रेम में पेड़ होना, जसिन्ता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाशन।
3. 'आदिवासी दर्शन', हरि राम मीणा, https://hi.everybodywiki.com/आदिवासी/दर्शन।
4. Pg-13, भूमिका, प्रेम में पेड़ होना, जसिन्ता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाश।
5. Pg-17, प्रेम में पेड़ होना, जसिन्ता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाश।
6. Pg-20, 'प्रेम जब पेड़ हो जाता है', प्रेम में पेड़ होना, जसिन्ता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाश।
7. Pg-38, जब पेड़ उखड़ता है– प्रेम में पेड़ होना, जसिन्ता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाशन।
8. Pg-54, यह किसका नाम है– प्रेम में पेड़ होना, जसिन्ता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाशन।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE Vol. 14, Issue 5-6
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL पृष्ठ : 32–34

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में नारी का भावनात्मक पक्ष

Sathyanarayanappa
Assistant Professor, Department of Hindi
Nagarjuna College of Management Studies, Chikkamarali Village, Nandi Hobli, Chikkaballapura.

शोध सारांश :–

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी कथाकारों में नासिरा शर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने देश–विदेश में भ्रमण करते हुए नारी जीवन से जुड़ी ज्वलंत समस्याओं को गहरे में रेखांकित किया है। आज हम पारिवारिक जन, मित्र–बन्धु भावना की डोर में बंधकर सुन्दरतम तरीके से रिश्तों को जी रहे हैं इसका पूरा श्रेय नारी को ही जाता है। भावना प्रवण नारी सास, बहू, माँ–बेटी और बहन के रूप में सम्बन्धों को संजोए बनाए रखती है। नासिरा शर्मा की नारी चेतना उस नारी का विश्लेषण करती है जो मानसिक दृष्टि से सबल होते हुए भी अपने भावनात्मक संसार में सम्बन्धों का निर्वाह खूबसूरती से करते हुए गौरवपूर्ण भूमिका निभाती है। लेखिका ने अपने कथा–साहित्य में सरस और मार्मिक चित्रणों द्वारा पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारों की ऐसी सरल और रसपूर्ण व्याख्या की है कि वे कोरे सिद्धान्त न रहकर भारतीय पारिवारिक जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं। नासिरा शर्मा ने अपने कथा–साहित्य में इस बात पर बल देते हुए कहा है कि नारी की संवेदनशीलता, रागात्मकता और उसकी भावात्मक समृद्धि उसे उच्च धरातल पर सम्मानजनक स्थान दिलाती है।

विषय प्रवेश :–

आज के आपाधापी के भौतिकपूर्ण युग में केवल भौतिक साधनों के बल पर जिन्दगी को सुख–सुविधा युक्त कर तथा मानवीय, भावनात्मक, आत्मिक सम्बन्धों को नकार कर मानव का जीवन दूभर हो जाता है। लेखिका की नारी–चेतना में भी भावात्मक सम्बन्ध अहमियत रखते हैं, भले ही कहीं–कहीं पर रूप बदला हुआ दिखाई देता है।

लेखिका के कथा–साहित्य में तय्यबा दर्द में डूबी अपनी भावनाओं में खोई– 'इस हाथ में सिर्फ बहिश्त–ए–जहरा की तस्वीर है। हमारा ईरान, पहाड़ कब्रों में ढल गया। इन घरों के बीच हमारा एक घर था, वह भी कब्र में परिवर्तित हो गया।'[1]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में महरुख की माँ बेटी के सुखद भविष्य के लिए दामाद की खुशी को अपनी खुशी मानती है– 'हमें तो अपनी बेटी की भलाई देखनी है कि होने वाला दामाद क्या चाहता है, उसकी खुशी हमारी खुशी होनी चाहिए। लकीर के फकीर बनने की मुझे तो कोई तुक समझ में आती नहीं है। आप एक बार इस मसले पर अम्मी जान से भी राय ले लें। लेकिन मैं एक बात आपके कान में... अच्छे लड़के के लिए लड़कियों का अकाल है।'[2]

लेखिका की नारी चेतना में सास का मधुर रूप है। वह बहू के प्रति आत्मीयता दिखाती है, वह अपने कानों से बहू के प्रति कुछ भी गलत सुनना पसन्द नहीं करती– 'न बाबू जी, यह तो न होगा बहू को जी भरकर देखने का बहाना देखो इस बूढ़े खूसट का! अरे जाओ अपनी माँ–बहन को सजा–धजा सुपर्णनखा बना लो मैं क्या रोकूँगी।' माँ ने बेटी के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है और अपने आंसुओं को पीकर जैसे अपने–आपसे कहा– 'अरे, मैं तो जिस दिन से अस्पताल में भर्ती हुई, तब से कह रही हूँ, शालू को फोन कर दो, पर हर बार यही उत्तर देकर मुझे चुप करा देते हैं कि शालू पर क्या अधिकार?'[3] लेखिका के कथा–साहित्य में माँ सदैव बच्चों के प्रति एक ममतामयी माँ बनकर आई है– 'आपकी कसम ! बच्चों का ख्याल नहीं होता तो कब का जहर खा लेती।'

नासिरा शर्मा के कथा–साहित्य में नारी अपने चाहने वाले प्रेमी को अपना पति बनाना चाहती है और वह उसकी यादों में खोए रहना चाहती है। अपनी भावनाओं को उसके प्रति व्यक्त करती है। यही उसकी चेतना का सत्य है– 'मैं तुम्हारे लिए खामोशी से आँसू बहाते बहाते किसी शमा की तरह पिघल रही हूँ। मेरा रंग–रूप सब कुछ ढल रहा है, या खुदा! न आंखों में रोशनी, न गालों पर जिन्दगी की दमक, जुलेखा की तरह खुशकिस्मत कहां कि मुझे गई जवानी खुदा दोबारा बख्श देगा। मैं तो बस उस लुटी हुई जुलेखा की तरह रहूँगी, जो महलों से उत्तरकर झोपड़े में आकर सिर्फ रात–दिन यूसूफ की सवारी के गुजरने की राह ताकती थी और बस यही उसकी आस।'[4]

लेखिका ने अपने कथा–साहित्य में सास और बहू के प्रति मधुर रूप के साथ–साथ व्यंग्यात्मक कटु शब्दों को भी भावनाओं में दिखाई दिया है– 'क्यों बैठा है, मुंह छिपा के, जा देख कहाँ गई है कुलच्छनी पूरे डेढ़ किलों की करधनी थी। पांच–छः तोला सोना... सब ले गई नासपीटी... सारी उम्र की कमाई पर झाडू फेर गई।'[5] राबिया की माँ ने कोठी में अपनापन जताते हुए अपनी भावनाएँ व्यक्त की– 'कोठी के कायदे–कानून हमें न सिखाओ। तुम यहां पर तीन साल से हो मगर हमारा बेगम साहब से नाता बरसों पुराना है। जब कमाल मियाँ कुल पांच–छः साल के थे।'[6] नासिरा शर्मा नारी के भावनात्मक पक्ष का इस तरीके से विश्लेषण करती हैं, वह माँ–बेटी, भाभी इत्यादि के रूप में अति आत्मीय बनकर आई हैं– 'अरे बेटी! मैंने इसलिए फोन नहीं किया था कि तुम मुझे लेने आओ। फिर तुम्हारे साथ जाना ठीक नहीं है।'[7]

पति–पत्नी के भावात्मक जगत् की टूटन लेखिका के कथा–साहित्य में देखी जा सकती है– 'गुजरे कल की वह औरतें क्या थीं? बलिदान की मूर्तियाँ या फिर बलि की बेदी पर चढ़ाई गई बकरियां घूँट–घूँट इस दर्द के समुद्र को पीना है ऊंचा खानपान, मान–मर्यादा का कब्रिस्तान होता है, जहाँ पर रोज एक नई कब्र खुदती है।'[8] शाल्मली नरेश के साथ दो स्तरों पर जी रही थी। एक नरेश को अपने मन के धरातल पर आंकने का और दूसरा उसके साथ सम्बन्ध के धरातल पर सहज बने रहने का। ऐसा अनुभव उसे किसी अन्य रिश्ते में क्यों नहीं हुआ? क्या यह रिश्ता अन्य मानवीय सम्बन्धों से भिन्न होता है?

हाजरा बौखलाई सी नई स्थिति को समझ पाती, इससे पहले उसके अंदर से एक तूफान उसके सारे वजूद को झंझोड़ता बाहर निकला– 'वह मुझे तलाक देगा, मैं खुद उसे छोड़कर जा रही हूं। मैं खुद उसे तीन बार नही छः बार तलाक देती हूँ–तलाक, तलाक, तलाक, तलाक, तलाक, तलाक।'[9] हाजरा दिन भर मशीन चलाती हुई सोचती रहती 'नहीं, नहीं! मेरी गैरत कभी वहां मुझे नहीं रहने देती। यह कमजोरी भरी सोच शायद

मेरे अकेलेपन की देन है। मैं भला कैसे उस आदमी के साथ रह सकती हूँ, जिसने शीशे की तरह... खींच हलकी सी ठेस से उसे तोड़ दिया।'

पति सब प्रकार के शोषण करने के बाद भी मर्यादा का उल्लंघन करता है, लेकिन पत्नी उच्च पद पर आसीन रहते हुए भी सब सहती है। कहीं–कहीं उसकी अस्मिता सिर उठाती है, लेकिन वह पति–सान्निध्य की कामना फिर भी करती रही है– 'आरोप कहां, बहू री! यह तो सच्चाई है। मैंने तो मर्द–औरत का मिलाजुला संसार देखा नही, जो देखा है वह औरतों का देखा है। उन्हें मर्दों के आतंक से...। यह भी देखा बहू री! कि औरत में ईर्ष्या नहीं होती, उसमें मर्द का हाथ है।' शाल्मली नौकरी से छुट्टी न करने की बात को पति के समक्ष बडी सहिष्णुता से कहती है– 'सभी औरतें यदि इस प्रकार की अर्जी देने लगें, तो हो चुका काम। यह पति की नहीं, सरकार की नौकरी है, उसके प्रति कर्तव्य की अवहेलना।'[10]

फिर भी कभी–कभी शाल्मली को ऐसा लगता है जैसे नरेश उसके संयम की परीक्षा ले रहा हो। वह एक चंचल बच्चे की तरह वह सारी हरकतें करता है, जिससे शाल्मली उसकी ओर आकर्षित हो– 'गृहस्थी की गरिमा और घर की मर्यादा का महत्व हम दोनों के लिए एक समान होना चाहिए', 'प्लीज, नरेश, इस समस्या को मैं और तुम में मत बांटो। यह समस्या हमारी है।'[11] नरेश यदि उसे छोड़ गया, तो क्या वह इस घर में जी पाएगी? उसके पास रहने का घर है फिर वह किस लिए नरेश को याद करेगी? हां इन साधनों के रहने पर भी उसे नरेश चाहिए था. क्योंकि उससे भावनात्मक लगाव था। वह उससे प्रेम करती है।

उपसंहार :–

नासिरा शर्मा अपने कथा साहित्य में उस नारी का विश्लेषण करती है, जो मानसिक दृष्टि से सबल होते हुए भी अपने भावात्मक संसार में सम्बन्धों का निर्वाह खूबसूरती से करती है। वह माँ, बेटी, भाभी इत्यादि के रूप में अति आत्मीया बनकर आई है। जहां तक पति–पत्नी सम्बन्धों का सवाल है, पत्नी अपनी तरफ से मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती, जो उसके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता है। नारी की संवदेनशीलता, उसकी रागात्मकता, उसकी भावात्मक समृद्धि उसे उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित कर देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. नासिरा शर्मा–सात नदियाँ एक समन्दर, पृ०–314
2. नासिरा शर्मा–ठीकरे की मंगनी, पृ०–22
3. नासिरा शर्मा–ततइया, सबीना के चालीस चोर, पृ०–60
4. नासिरा शर्मा–बचाव (कथादेश फरवरी. 1998), पृ०–21
5. नासिरा शर्मा–सात नदियाँ एक समन्दर, पृ०–69
6. नासिरा शर्मा–शाल्मली, पृ०–44
7. नासिरा शर्मा–ततइया, सबीना के चालीस चोर, पृ०–62
8. नासिरा शर्मा–ततइया, सबीना के चालीस चोर, पृ०–197
9. नासिरा शर्मा–कुइयाँजान, पृ०–235
10. नासिरा शर्मा–बन्द दरवाजा, पत्थर गली, पृ०–44
11. नासिरा शर्मा–नई हुकूमत (साहित्य अमृत फर० 1998), पृ०–8.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 35–49

Exploring the Contested Legacies : Article 370 from Foundational Debates to its Abrogation

Padma Angmo
PhD Scholar, Department of Political Science
University of Delhi.

Abstract :

Article 370 has long been one of the most debated parts of the Indian Constitution because it lies at the intersection of federal principles, constitutional design, and the larger process of nationbuilding. Although it was introduced as a temporary measure to define how the State of Jammu and Kashmir (J&K) would relate to the Indian Union, it continued to shape Centre–state relations for nearly seventy years until its removal in August 2019. This study argues that the controversies surrounding Article 370 did not emerge only from political conflicts after independence. Instead, they can be traced back to the unclear and delicate conditions under which the provision was originally framed.

This paper analyzes the way legal and political meaning of Article 370 shifted over time employing major primary sources, such as the 1949 Constituent Assembly Debates, Presidential Orders issued between 1950 and 2019, records of the J&K Constituent Assembly (1951–56), and significant Supreme Court rulings such as Sampat Prakash v. State of J&K (1969) and Santosh Gupta v. SBI (2016). And it highlights how a provision designed to facilitate the flexibility in diversity evolved into an instrument for extending central authority by situating the 2019 abrogation within this broader historical journey.

The study suggests that the elimination of Article 370 in 2019 failed to resolve India's questions of autonomy or federal equilibrium. Rather it has ignited ongoing debates in India's federal structure over democratic consent, constitutional validity, and the limitations of central authority.

Introduction :

The Indian constitutional procedure has always been characterized by a dialectical clash between

unity and diversity, centralization and autonomy which is quite explicitly visible in the constitutional advancement of Jammu and Kashmir (J&K), than anywhere else in India. Article 370, which was designed as a "temporary provision" under Part XXI of the Constitution to serve as a transitional mechanism until the Constituent Assembly of Jammu and Kashmir reached an agreement on the final terms of unification, formulated the state's relationship with the Indian Union and functioned as a lens through which India's experiment with asymmetric federalism was tested and debated from 1949 to 2019. Subsequently, over the course of time, Article 370 has evolved into a strong, reliable and almost permanent constitutional feature, describing the federal imagination of India and contributing to discussions and debates on autonomy, sovereignty, and identity (Ayyangar N. G., Speech Introducing Article 306-A, Constituent Assembly Debates, 1949).

The issue in question can be traced back to the unfamiliar political circumstances of Kashmir's accession to India in 1947, as Article 370 has been an ambiguity from the beginning. Although its articulation pointed towards the fragility, its implementation presented a new type of constitutional sovereignty. Maharaja Hari Singh signed the Instrument of Accession on October 26, 1947, Despite an assault by tribal military forces from Pakistan, granting India limited defence, external affairs, and communications. This conditional accession was accompanied by a commitment, articulated by both Prime Minister Jawaharlal Nehru and N. Gopalaswami Ayyangar that the people of J&K eventually would decide their constitutional relationship with India through their own Constituent Assembly. Accordingly, Kashmir's integration into India was characterised from the beginning as both provisional and consensual (Noorani, 2011).

The proceedings of The Constituent Assembly Debates of 1949, especially the events on October 17, remain the major primary source for understanding the intellectual and political rationale behind Article 370. Ayyangar, who introduced Draft Article 306A (later renumbered 370), upheld the need for a specific provision by highlighting Kashmir's unique circumstances of recent accession, prevailing tension, and an unsettled decision on its internal constitution. He termed Article 370 as a "temporary measure," necessary till the J&K Constituent Assembly crafted the state's Constitution. Still, several other assembly members, including Maulana Hasrat Mohani and H.V. Kamath, raised strong reservations, warning that such asymmetry might institutionalise separatism and establish "a state within a state." Regardless of these concerns, the provision was adopted mainly due to Nehru's political influence and Sardar Vallabhbhai Patel's pragmatic acceptance that Kashmir required special attention during the turmoil of 1949 (Austin, 1966).

The ambiguity in Article 370's text led to various interpretations over time. The clause that allowed for abrogation "on the recommendation of the Constituent Assembly of the State" turned out

to be a key to discussions over its permanence. After the dissolution of Jammu and Kashmir Constituent Assembly in 1957 without recommending abrogation, it created a constitutional vacuum that judges would eventually fill. In Sampat Prakash v. State of J&K (1969), the Supreme Court maintained that Article 370 continued to apply even after the dissolution of the state's Constituent Assembly, ruling that it could only be amended through the mechanism stated in the provision itself. This interpretation effectively used judicial reasoning to convert a "temporary" provision into a permanent one. Politically, Article 370 took on several meanings. For Kashmiri political leaders, it was a hard-earned symbol of independence and recognition of their distinct historical past and roots. It represented a hurdle to full integration for nationalist organisations, particularly the Bharatiya Jana Sangh and its successor, the Bharatiya Janata Party (BJP). Article 370 became a constitutional flashpoint as a result of these contrasting narratives, which were constantly addressed in electoral politics, parliamentary debates, and courtrooms. Scholars such as Suhas Palshikar and Rekha Saxena refer to this tension as the Indian Constitution's "federal paradox," in which the language of cooperative federalism coexists with the reality of central dominance.

The repealing of Article 370 in 2019 was both a culmination and a rupture. On August 5, 2019, the President of India issued Constitutional Order 272, which reinterpreted Article 370(3) by substituting the phrase "Constituent Assembly of the State" with "Legislative Assembly of the State." This reinterpretation allowed the Union Government, then under President's Rule in J&K, to recommend its own abrogation, a move that critics described as constitutionally untenable. At the same time, Parliament enacted the Jammu and Kashmir Reorganisation Act, 2019, which split the state into two Union Territories: Jammu and Kashmir, and Ladakh. This twofold process, dissolution and reorganisation, modified India's federal architecture, reducing the only state with a distinct constitutional character to a system of centralised territories.

This abrogation provoked heated constitutional debates. In 2023, the Supreme Court upheld the government's decision, arguing that the provision's temporary nature justified its revocation and that, under President's Rule, the Governor could act on behalf of the legislature. While the decision resolved the legal controversy, it left unanswered the underlying political and constitutional questions, Can asymmetric federalism flourish in a highly centralised political system? What does consent refer to in a federal democracy where state institutions are suspended?

This article addresses these challenges by placing Article 370 within its historical context, from its conception in the Constituent Assembly until its revocation in 2019. It uses archival arguments, legal papers, and contemporary academics to demonstrate that the roots of the 2019 issue were ingrained in the architecture of 1949. Article 370 was more than just a political tool, it was a

constitutional experiment aimed at reconciling territorial integrity with regional autonomy. Its final repeal represents not only a political event, but also a constitutional reform of Indian federalism.

Constituent Assembly Debates and the Origins of Article 370 :

1. Historical and Political Context of Kashmir's Accession

The unique political circumstances surrounding Jammu and Kashmir's (J&K) in 1947 accession to India are the origins of Article 370. Princely states were given offer the option to join either India or Pakistan following the British withdrawal. Maharaja Hari Singh postponed his decision in effort to maintain independence in the face of mounting pressure from both the dominions in contrast to the majority of rulers who quickly acceded. When the Pakistani tribal militias invaded Kashmir on October 22, 1947, this hesitation came to an end. Raja Hari Singh signed the Instrument of Accession on the day October 26, 1947, giving India control over the communications, defence, and foreign policy in response to an existential threat (Instrument of Accession, 1947).

Accession of J&K was expressly temporary in nature in contrast to other princely states. The final constitutional relationship of J &K with India would be decided by its own Constituent Assembly as according to a crucial provision of the Instrument. This situation was the reflection of contentious internal politics in Kashmir particularly the impact of Sheikh Abdullah and the National Conference who had garnered substantial public support against the autocratic rule.

Further it supported the demand of Prime Minister Jawaharlal Nehru that India's presence in Kashmir be based on both the legitimacy and the popular consent. Nehru's repeated declarations in the Parliament and on the international forums stressed that democratic consent would be necessary for J&K's integration, this position was also influenced by ongoing UN Security Council dispute (Gupta, 2018). Therefore, any constitutional mechanism for J& K, had to take into account the late 1940s diplomatic pressures and its provisional accession and its internal political awakening.

2. Ayyangar's Drafting of Article 306A (Later Article 370)

On the October 17, 1949 N. Gopalaswami Ayyangar presented the Draft of Article 306A to the Constituent Assembly in tense situation. His remarks that which are included in Volume X of the Constituent Assembly Debates (CAD) and continue to be the most reliable source for comprehending the original intent of Article 370.

Ayyangar started out by highlighting Kashmir's "peculiar position," noting that the state had joined India via a restricted Instrument of Accession. It had not given up all legislative power or joined the Union, in contrast to other states. He maintained that conditions are not yet ripe for its full integration and that any constitutional arrangement had to take into the account of the UN's attention, the ongoing conflict, and presence of Indian troops (Ayyangar N. G., Constituent Assembly Debates,

1949).

Ayyangar provided three key justifications for proposed article :

(a) Temporariness as Political Prudence

Ayyangar described the provision as "temporary" but he did not specify how long it will last. The phrase was used to describe changing political conditions, particularly the upcoming discussions of J&K Constituent Assembly rather than a time frame. Later discussions concerning transitional or permanent nature of Article 370 has revolved around this flexible framing.

(b) Consent Based Federalism

Consensual federalism served as the basis for second justification. Ayyangar insisted that the relationship of state with Union be governed by concurrence because J&Ks accession was contingent on the future ratification by its Constituent Assembly. So the state can only be subject to constitutional provisions outside of Instrument of Accession with the consent of its government. This resulted in an asymmetric and negotiated form of federalism that acknowledged particular circumstances of J&K. The Government of the State must give its concurrence before the President applies any further provisions (Ayyangar, Constituent Assembly Debates, 1949).

(c) Political Necessity and Democratic Legitimacy

Ayyangar also emphasized how the unilateral action has global ramifications. India had to exercise the restraint and constitutional sensitivity because the Kashmir dispute was still pending before United Nations Security Council. Indian legal and moral position was reinforced by a framework based on the consultation and concurrence that refuted claims of coercion[i].

3. Debates and Opposition in the Constituent Assembly *:*

Primarily due to the ongoing war in the region and the involvement of the United Nations in the matter. Following the discussion, Draft Article 306A was adopted by the Constituent Assembly Assembly as Article370.

Draft Article 306A sparked the discussions. In a soon to be federal republic, a number of members questioned the wisdom of making the significant exception for one state.

Maulana Hasrat Mohani argued that J & K should integrate on the same terms as other states and denounced the proposal as discriminatory. He cautioned that giving one area extraordinary autonomy could encourage other groups to demand comparable rights (CAD, Vol. X, 1949). These worries were echoed by H.V. Kamath and he questioned whether a "temporary" provision may unintentionally become the permanent if the expected political circumstances never came to pass. Asymmetry according to critic can weaken the national cohesion and make the constitutional uniformity more difficult (CAD, Vol. X, 1949).

In response Ayyangar reaffirmed that said article was a practical reaction to current situation rather than a call for the ongoing exceptionalism. Nehru and Sardar Vallabhbhai Patel acknowledged a need for the flexible arrangement given the Kashmir's strategic and political volatility, supported his position, albeit cautiously. The article was approved without the formal vote, indicating the Assembly's agreement that an exceptional mechanism was necessary due to the Kashmir's unique circumstances (Austin, 1966).

4. *Adoption and the Architecture of Ambiguity*

A well thoughtout but unclear framework was institutionalised when the Draft Article 306-A was renamed as the Article 370 and added to the Constitution of India. While J&K retained limited autonomy also including the ability to draft its own constitution, it acceded to India in other areas. The clause safeguarded internal autonomy of state while maintaining the sovereignty of India.

Two deliberate ambiguities shaped the future controversies :

a) *The undefined nature of temporariness*

Question of whether the Article 370 was temporary or permanent in nature remained unresolved because no deadline was given.

b) *The requirement of recommendation by J&K's Constituent Assembly for abrogation*

When Assembly dissolved in the year of 1957 without offering such a recommendation and many scholars argued that the Article 370 became permanent by default.

A distinctive form of a executive federalism was also made possible by the Article 370, which allowed the Presidential Orders to extend the constitutional amendments to J& K. More than 45 such orders were issued between the year of 1950 and 2019, progressively extending the Union's power while the apparently maintaining appearance of autonomy (Puri, 2021).

5. *Significance of the Constituent Assembly Debates*

The Basic conflict in Indian federal structure are revealed by the discussions and debates saround the Article 370. They show how political contingency and calculated compromise, rather than just ideology and shaped the constitution making process. Ayyangars use of the transitional mechanisms acknowledged the frailty of India's federal experiment, his articulation of the temporariness reflected optimism about its eventual integration.

These arguments demonstrate to the constitutional scholars that the Article 370's inconsistencies existed from the inception . The structure that resulted from the attempt to strike a balance between unity, autonomy, and democratic consent was susceptible to conflicting interpretations, which eventually allowed for both extensive central intervention and abrogation of the article 370. The acceptance of this asymmetry by the Constituent Assembly shows that Indias

founding father saw diversity as the constitutional reality that needed to be accommodate rather than as a threat.

The Jammu and Kashmir Constituent Assembly (1951 to 1956) and the Erosion of Autonomy (1957 to 2019)

1. Political Genesis of the J&K Constituent Assembly

Article 370's constitutional development underwent the change with the establishment of the Jammu and Kashmir (J&K) Constituent Assembly. Article 370 of the Indian Constitution, which came into effect in the year of 1950 and stated that the final constitutional relationship between J&K and the Union of India would be decide by the state's Constituent Assembly. Elections was conducted in 1951 in accordance with the J&K Constitution Act of 1939 in order to satisfy this requirement. Because opposition parties like the Jammu Praja Parishad were either barred from running or withdrew in protest, Sheikh Abdullah's National Conference which had become the dominant political force after 1947, won a outstanding victory in that elections. And Sheikh Abdullah had almost complete control over the constitution-making process since National Conference members occupied all 75 Assembly seats.

On October 31, 1951, the Assembly convened for the first time in Srinagar City. Sheikh Abdullah stated in his introductory speech that the body's two main responsibilities were to draft a state constitution and decide the state's constitutional standing within the Union (J&K Counstituent Assembly Debates, 1951). The Assembly discussions from the beginning mirrored the larger conflict between preserving the internal autonomy and strengthening integration with the India conflicts that had been ingrained in the Article 370 since its draughting.

2. Affirmation of Accession and the Idea of Dual Sovereignty

The Assembly's resolution on February 15, 1954, was one of its first and significant decisions. By this resolution the Assembly supported the application of Articles 1 and 370 of the Indian Constitution to J&K and categorically approved the Instrument of Accession (J&K Constituent Assembly Proceedings, 1954). The resolution removed any doubt regarding the legitimacy of accession by stating that the state is and shall be an integral part of Union of India.

The Assembly did, however, clarify that J&K would maintain the substantial level of internal autonomy eventhough it was a part of India. Scholars refer to this arrangement as a model of Dual Sovereignty in which J&K maintained its membership in the Indian Union while exercising its own constitutional authority. With the adoption of the J&K Constitution in 1956 this idea gained institutional visibility. The unique identity of J&K including its own constitution, flag, and unique

political jargon was maintained while the Preamble largely mirrored the Indian Constitution (J&K Constitution, 1956). This framework provide the Ayyangar's concept of negotiated integration a concrete constitutional form.

3. Silence on Abrogation and the Shift from Temporariness to Permanence

The J&K Constituent Assembly purposefully avoided suggesting the repeal or modification of the Article 370, eventhough it clarified the status of accession. This silence created a constitutional void when Assembly disbanded in the year of 1957. According to Article 370(3), the President could only declare the provision inoperative upon the recommendation from the state's Constituent Assembly. Many constitutional scholars believed that Article 370 had gained defacto permanence because no such recommendation was made (Austin, 1966).

In Sampat Prakash v. State of J&K (1969), the Supreme Court upheld this opinion, holding that Article 370 remained in effect because the requirements for its repeal had not been met. The article remained a living mechanism within the Constitution, according to Justice Hidayatullah. As a result the 1949 vision of temporary nature effectively became permanent not through political decision-making but through constitutional silence.

4. Gradual Erosion of Autonomy through Presidential Orders (1954–2019)

While J&K's autonomy was officially protected under Article 370 of Indian constitution, its actual implementation relied on the Presidential Orders issued under Article 370 (1). The Constitution (Application to Jammu and Kashmir) Order, 1954, which extended the numerous important provisions of the Indian Constitution to the state, was the most significant of these. This order established Article 35A, which provides the state the authority to specify permanent residents and their special rights[ii].

Over forty Presidential Orders were issued over the years, each of which expanded J&K's access to Union institutions and laws. Almost the whole Indian Constitution was applicable to the state by the late 20th century. Article 370 is "hollow in substance but alive in form," (Noorani, 2011). Although autonomy's practical scope had been greatly diminished, its formal framework was still in place.

This erosion was further exacerbated by the political developments in J&K. Tighter central involvement in the state began in 1953 with Sheikh Abdullah's dismissal and the arrest. In exchange for political rehabilitation, the Indira Gandhi–Sheikh Abdullah Accord of 1975 wa accepted the current state of diminished autonomy. These changes were the reflection of broader centralization trends in Indian federal politics (Palshikar, 2004).

5. Federal Contestation and Political Symbolism

Article 370 had become an extremely politicized by the end of the 20th century. The clause was seen as the barrier to national integration by the Bharatiya Jana Sangh and its successor, the Bharatiya Janata Party (BJP). "One nation cannot have two constitutions, two flags, and two heads" was their catchphrase, which encapsulated their ideological Basis (Raina, 2019). On the otherside the Kashmiri parties like the PDP and National Conference saw Article 370 as a constitutional guarantee of limited self-rule.

The political Scene was further changed in 1989 by the emergence of insurgency. The autonomy guaranteed by Article 370 was essentially suspended for extended periods of the President's Rule. Therefore the clause had served more symbolical than substantively even prior to its official removal in the year 2019 (Bose, 2020).

6. Constitutional Paradoxes and Judicial Endorsements

The formal existence of Article 370 was maintained and its gradual dilution was made possible by judicial decisions. The Supreme Court maintained the President's power to alter Constitution's application to J&K in Puranlal Lakhanpal v. President of India (1961). Santosh Gupta v. SBI (2016) emphasized J&K's unique constitutional position while the Sampat Prakash case (1969) confirmed the ongoing operation of Article 370. However these decisions also subtly supported the widespread use of presidential concurrence to further integrate J&K with the Union (Verma, 2017). Article 370 was weakened in the practice but maintained in theory and creating constitutional paradox.

7. The Road to Abrogation (2014–2019)

The BJP's pledge to repeal Article 370 gained fresh attention after it came to the power in 2014. The establishment of President's Rule following the dissolution of the PDP-BJP alliance in 2018 provided the institutional space for the swift action. The Union Government issued the Constitutional Order 272 on August 5, 2019 which changed Article 370(3) from "Constituent Assembly to Legislative Assembly." The governor served as state government and gave the consent since the state was ruled by the President. The Union effectively recommended its own decision as according to critics (Kumar, 2020).

The most significant reorganization of the Indian federalism since independence was brought about by the Jammu and Kashmir Reorganization Act, 2019, which further split the state into Union Territories of Jammu & Kashmir and Ladakh (Puri, 2021; Chaudhuri, 2021).

Between 1951 and 2019, Article 370 changed from a negotiated federalism mechanism to a contentious political symbol and Eventually, a constitutional flashpoint. Through judicial

interpretations, political interventions, and presidential orders, the J&K Constituent Assembly's vision of autonomy was progressively weakened. Article 370 was primarily a symbolic marker at the time of its abrogation but its repeal sparked one of most significant federalism discussions in India. The flexibility of the India's federal system was reaffirmed by the Supreme Court's 2023 ruling or decision that upholding the abrogation, emphasizing the political priorities continue to have a significant influence on the constitutional arrangements rather than strict federal principles.

Judicial Interpretations and the 2019 Abrogation : Constitutional Legitimacy and Federal Transformation

1. Judicial Preservation of the Framework of Article 370

Article 370's meaning and duration have been significantly shaped by India's judiciary since the Republic's founding. In contrast to the majority of constitutional provisions, Article 370 developed through a combination of Supreme Court rulings and presidential orders rather than mainly through the parliamentary amendments. These decisions progressively transformed the clause from a "temporary" constitutional arrangement to an enduring and flexible mechanism within Indian federalism (Austin, 1966).

Puranlal Lakhanpal v. President of India (1961) was one of the first significant tests. In this case the petitioner claimed that the President had overreached his authority under Article 370(1) by issuing the Constitution (Application to Jammu and Kashmir) Order, 1954. This argument holds that the President could only make small "modifications," not significant changes and to how the Constitution applied to the state.

But the Supreme Court took a broad stance. According to the ruling, "modification" included major adjustments as long as the state government approved them. This ruling essentially supported what (Noorani, 2011)subsequently referred to as "executive constitutionalism," allowing Union to extend the additional constitutional provisions to J&K without the need for the formal amendment procedures. The Court interpretation effectively increased executive discretion and made it possible for the Indian state to further integrate through the administrative means as opposed to the legislative ones.

2.* Sampat Prakash case *(1969): Permanence through Judicial Interpretation

The Supreme Court's ruling in *Sampat Prakash v. State of Jammu & Kashmir* (1970) (Sampat Prakash v. State of jammu and Kashmir, 1970) became a cornerstone in the legal history of Article 370. In this case Petitioner argued that since Article 370(3) required that recommendation of the body for repeal, it could no longer be invoked following the dissolution of the J&K Constituent

Assembly in the year of 1957. This interpretation was rejected by Justice M. Hidayatullah who maintained that Article 370 was still applicable even after the Assembly was dissolved. He explain that because Article 370(1) did not automatically expire upon the Assembly's dissolution, the President's powers under it remained the indefinitely.

This decision effectively made Article 370 a permanent part of the constitution unless it was explicitly repealed through its own internal procedure, which was not feasible following the dissolution of the Constituent Assembly. Some Scholars argued that Article 370 became a stable part of Indias federal structure after Sampat Prakash Court Case.

3. *Judicial Retrenchment and Limited Autonomy(1970 to 2016)*

The Supreme Court continued in interpreting Article 370 in way that increased central authority over the decades. In the Mohd. Maqbool Damnoo v. State of J&K (1972), the Court decided that provided the state government agreed, replacing the elected Sadar-i-Riyasat with a Governor chosen by the Union did not violate essence of the Article 370. The distinction between centrally controlled and autonomous institutions was muddle by this ruling of court. It reaffirmed the notion that the presidential orders could be used to implement institutional changes within the J&K, evenif those changes compromised the special constitutional position of the state.

The Court's general deference to executive action continued through the 1980s and 1990s. However, in (Santosh Gupta v. State Bank of India , 2016) that the J&K constitutional uniqueness was briefly reaffirmed by the Court. Justice Nariman emphasised that Article 370 continued to restrict the parliamentary power and that the state maintained its own constitution. In clear contrast to the events of 2019, this ruling implied that the autonomy guaranteed by Article 370 had lasting the constitutional value.

4. *The 2019 Abrogation : Constitutional Maneuvering and Executive Innovation*

Article 370 was essentialy repealed on August 5, 2019, when the Union Government implemented a two-step constitutional strategy. In accordance with Article 370(1), the President issued Constitutional Order 272, which modified the 1954 Order by changing the definition of "Constituent Assembly" in Article 370(3) to "Legislative Assembly." The Governor, acting as state government and was considered capable of providing the concurrence that needed for such an order because J&K was then under the President's Rule.

After that, the President declared Article 370 to be ineffective by issuing Constitutional Order 273. When taken as a whole, these steps allowed the Union to get around the now-defunct Constituent Assembly's requirement. This substitution, according to critics, is a legal fiction intended to get

around constitutional protections. However, proponents contended that because Article 370 was temporary in nature and it should be removed in order to integrate J & K into the Union.

5. The Reorganization of Jammu & Kashmir

The Jammu and Kashmir Reorganisation Act, 2019, which divided the state into two Union Territories one is Ladakh and other is J & K was passed by Parliament concurrently with the abrogation of the Article 370. Exceptional constitutional change occurred this time. Although Article 3 permits Parliament to reorganise states, the Governor, acting under President's Rule, gave consent on its behalf, circumventing the customary requirement of consultiing the state legislature. This action according to academicians like Jaffrelot (2020) is considered as a "federal rupture," radically changing the balance of power between the Union and the states. Extensive detentions, a communication blockade or Barriers, and stringent state assembly restrictions were among the political fallout, which sparked criticism on a the national and international level (Raina, 2020).

6. Supreme Court Verdict on Abrogation (2023)

In Supreme Court Case (In Re: Article 370 and Connected Matters, Constitutional Bench, 2023), a contitutional five Judge bench upheld the 2019 abrogation of Article 370. The Court determined that the Governor could lawfully grant concurrence during President's Rule, that Article 370 was always intended to be temporary in nature, and that Parliament had the power to restructure state under Article 3 of the constitution. Previous Court Judgements that unxerlined J&K's constitutional uniquenes was drastically impacted by this court decision or ruling (Verma, 2023).

7. Federal Transformation and Democratic Uncertainty

In federal system, the judicial path of Article 370 represents a steady consolidation of centralizing tendencies and authority. The 2019 abrogation can be seen as the result of several decades of judicial and executive decisions and interpretations that slowly and gradually reduced the room for the asymmetric federalism, although it is frequently depicted as a moment of significant constitutional change in India. A poviotal question is whether this strengthens national unity or weakens plural federal character of India.

Conclusion :

In addition to changing the status of Jammu and Kashmir (J&K), the 2019 repeal of Article 370 changed the fundamental rules of Union-state relations and making it a turning point in the India's federal history. India's asymmetric federalism, a design decision that permitted differentiated autonomy to coexist with the national unity, had been embodied in the Article 370 fo r almost seven decades. The system shifted from negotiated accommodation to administrative uniformity, supports

centralised command over a state-level consent and by dividing J&K from a constitutionally autonomous state into two Union Territory, one with the legislature and other without.

Despite the institutional engineering, this change carries normative burden. As constitutional agreement, federalism is predicated on reciprocity and mutual trust between central government and its constituent parts. In absence of elected J&K assembly, the 2019 action was done under the President's Rule and depended on the Governor's "concurrence" to bring about a important change. Supporters argue that this process restored equality among states by overthrowing an exceptional regime, while critics contend that it undermined the deliberative ethos that uphold federal democracy. In any case, when state institutons were suspended and the episode establishes a precedent for the extent of central power.

The constitutional trajectory and democratic legitimacy are the main points to contention. Article 368 of the Constitution, which require the increased parliamentary majorities and, in certain situations, state ratification, provide the linear and understandable path for a structural change. Instead, the government relied on reinterpreting Article 370's own mechanisms, treating the

Governor under President's Rule as a stand-in for that legislature and replacing "Constituent Assembly" with "Legislative Assembly" in order to recommend abrogation. The distinction between textual interpretation and functional amendment is obscured by this confusion between recommender and decision-maker. The abrogation and reorganisation of J&K under Article 3 were legally validated in 2023 when a Constitution Bench upheld the decision. However, the normative concern that significant constitutional changes were made without representatve consultation in the affected territory persisted (Supreme Court of India, 2023).

The social and symbolic ramifications of the abrogation are equally significant. Even though Article 370's meaning had been weakened by decades of presidential directives, for many in J&K, it had represented acknowledgemant of a unique history and political identity. The J&K state legislature authority to define " the permanent residents" and rights that go along with them was eliminated withthe deletion of the Article 35A, which reframed equality as uniformity. While some applauded this move for creating opportunities and markets, others condemned it for eliminating locally negotiated protections. Opponents interprete tha detentions and communication restrictions in the months after the August 2019 as the proof that legal integration that had surpassed democratic inclusion. The question of whether national sameness can replace consent in plural societies is known as the politics of recognition and deletion.

The broader framework of asymmetric federalism in India is also significantly impacted by

these developments. Political settlements based on the conflict, history, and culture gave rise to speciel and unique arrangements under Articles 371A–H for portions of the Northeast (Choudhry, 2020). The perceived stability of other asymmetries may wane if a clause that was previously regarded by courts as having an enduring character can be reconfigured without a formal amendmant. Therefore, the question are conceptual: Is asymmettry merely a policy decision that can be undone by the political majorities, or is it a constitutional principle intended to protect negotiated difference? The 2019 turn suggests the latter, while the constitution framers' 1949 acceptance of the Article 370 suggested the former.

The stakes are highlighte by the comparative experience. Federations frequently use calibrated asymmetry to manage the deep diversity: Canada's accommodations for Quebec, the UK's devolved institutions, and Spain's autonomous communities show that structured difference, not total uniformity, can lead to stability. India's current course goes against this. Sujit Choudhry pointout that while centralising trends that are a part of a larger global trend, inclusive processes and negotiations rather than the executive unilateralism usually results in longlasting agreements. The Indias case is unique in that it achieved effects similar to those of a constitutional amendment by using an internal interpretive lever Article 370 itself.

Furthermore, to providing legal closure, the Supreme Court's 2023 ruling marked the shift in jurisprudence. The formal architecture of asymmetric accommodation was preserved even as the executive practice narrowed it thanks to earlier decision like Sampat Prakash, which upheld Article 370's continued operation followng the dissolution of the J&K Constituent Assembly (Austin, 1966). In contrast, In Re: Article 370 recalibrates the balance between federal consent and Union prerogative by validating the view of "temporariness" that permit executive-led transformations during the President's Rule (Supreme Court of India, 2023; Verma, 2023)[iii]. According to Scholars, this is a consolidation of the "executive constitutionalism," in which executive branch takes the lead in a way in determining the meaning of constitution.

So what is constitutional legacy of Article 370? Abrogation finished integration administrativelly, but politicaly it revealed a lack of trust in the participation and the procedure. The ability of a federation to maintain diversity through rules that are seen as just is more important than symmetry. Legitimacy costs may persist if unity is sought by taking procedural shortcuts. Whether political discourse and representative institutions in J&K and, elsewhere are able to rebuilds consensus around new constitutional settlement will be e long-term test for Indian federalism. Constitutional democracies are evaluated not only by their results but also by the means by which they arrive at

them, as Rajeev Bhargava warns (Bhargava, 2020).

The story is still open in that regard. Resilience is not the same as reconciliation, but the Constitution has shown itself to be strong enough to withstand a significant reorganisation without formal amendment. Whether the shift to uniformity fosters a sense of democratic fragility or strengthens national identity will depend on rebuilding the spirit of accommodation through inclusive governance, credible elections, and a renewed respect for negotiated federalism. Thus the journey of the Article 370 leaves a paradoxical chapter that a union may centralise its laws, but it ensures its future by fostering consent.

Reference :

- Noorani, A. G. (2011). Article 370: A constitutional history of Jammu and Kashmir. Oxford University Press.
- Puri, B. (2021). Presidential orders and the constitutional erosion of autonomy in Jammu and Kashmir. Indian Journal of Constitutional Law, 13(1), 45–78.
- Supreme Court of India. (2023). In Re: Article 370. Judgment of the Constitution Bench (December 2023).

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 50–55

जातकों के आधार पर बौद्ध धर्म के विकास में वैश्य वर्ग का योगदान

डॉ. अनीता रानी
सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग,
कालिंदी कॉलेज (एन.सी.डब्ल्यू.ई.बी.)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

1. सारांश :

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में जब गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों का प्रचार आरम्भ किया, उस समय उत्तर भारत में नगरीकरण, व्यापारिक विस्तार और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही थी। महाजनपदों के उदय, मुद्रा–प्रचलन और लंबी दूरी के व्यापार के कारण एक समृद्ध व्यापारी वर्ग (वैश्य वर्ग) का विकास हुआ। इस वैश्य वर्ग ने बौद्ध धर्म के संरक्षण, विकास और प्रचार–प्रसार में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वैश्य वर्ग का अस्तित्व वैदिक काल से ही दिखाई देता है, किंतु उस समय वे वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत कृषि, पशुपालन और व्यापार जैसे कार्य करते थे। यद्यपि सामाजिक दृष्टि से उन्हें ब्राह्मण और क्षत्रिय से निम्न माना जाता था, फिर भी धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञादि में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य– तीनों को भाग लेने का अधिकार था। शूद्रों को इन धार्मिक विधियों से वंचित रखा जाता था।

2. प्रस्तावना :

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के समय समाज में धर्म का स्थान विधानों ने ले लिया था, कर्मकांड धर्म का पर्याय बन चुके थे एक तरफ ब्राह्मणों के असीमित अधिकार थे दूसरी ओर शूद्रों के लिए कठोर विधान थे, बुद्ध के समय क्षत्रियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था उसके बाद ब्राह्मणों का फिर उसके बाद वैश्यों को स्थान दिया गया, यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथों में ब्राह्मण का सबसे ऊँचा स्थान बताया, परन्तु जैन और बौद्ध ग्रंथो से क्षत्रियों का विशिष्ट स्थान होने का पता चलता है, जातकों से यह भी ज्ञात होता है उस समय अछूत और चांडाल जातियां थी जिन्हे छूना पाप समझा जाता था, और उनके साथ बुरा वर्ताव किया जाता था, जातकों में उल्लेख है की उस समय ब्राह्मण और वैश्य दोनों वर्ग खेती भी किया करते थे वैश्य वर्गों में धनी व्यापारियों के पास करोड़ों का धन होता था जिसे वह संचय किया करते थे, तथा अपने भोग विलास के लिए उपयोग करने के साथ–साथ धार्मिक और सामाजिक

कामों में भी उपयोग किया करते थे, बौद्ध धर्म के विस्तार में ऐसे ही व्यापारी वर्ग की बहुत बड़ी भूमिका रहीं।

3. दान परंपरा और आर्थिक सहयोग द्वारा बौद्ध संघ का विस्तार :

बौद्ध धर्म को विस्तार देने में अनाथपिंडक नामक व्यापारी का बड़ा योगदान था, बौद्ध ग्रंथों में कई जगह उनका नाम आया है, जातक से पता चलता है की अनाथपिण्डिक का वास्तविक नाम सुदत्त था जो श्रावस्ती कोशल के एक धनी व्यापारी थे, जिन्हें अनाथों को भोजन प्रदान करने के कारण उन्हें अनाथपिंडिक कहा गया! तथागत बुद्ध के पहली बार उपदेश सुन कर वे इतने प्रभावित हो गए थे, की उन्होंने उनके लिए जेतवन विहार बनवाया। कहा जाता है की इस भूमि के खरीदने के लिए भूमि पर स्वर्ण मुद्राएं बिछाकर (18 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं) राजकुमार जेत को दिया गया क्योंकि उनकी यही शर्त थी।

तथागत बुद्ध को भी जेतवन विहार अत्यंत प्रिय था, यही कारण हैं की बुद्ध ने अपने जीवन के सर्वाधिक (24) वर्षावास यहाँ पर बिताए! एक कारण यह भी रहा कि जेतवन एकांत में शांत वातावरण में स्थित जगह थी। धीरे धीरे यहाँ बुद्ध के उपदेश सुनने वाले श्रद्धालुयों संख्या बढ़ती गई जिनके रहने खाने की व्यवस्था अनाथपिंडिक स्वयं किया करते थे, इसके साथ जब तक बुद्ध और उनके अनुयायी यहाँ ठहरते थे तब तक उनके वस्त्र भोजन सभी की व्यवस्था अनाथपिंडिक करते थे।

बौद्ध धर्म के विस्तार में दो वैश्य भाई तपस्सु और भल्लिक का भी बहुत योगदान रहा है। ये पेशेवर व्यापारी थे जो तथागत बुद्ध के आरंभिक दिनों में उनके साथ रहे थे। इनका निवास स्थान प्राचीन उक्क्ला (वर्तमान उड़ीसा या म्यांमार क्षेत्र) था, ये व्यापार के उद्देश्य से व्यापारिक कारवां के साथ चला करते थे। जब तथागत बुद्ध बोधि वृक्ष के नीचे बैठे ज्ञान प्राप्ति का प्रयास कर रहे थे, तब ये दोनों भाई इसी रास्ते से गुजर रहे थे, इसकी नजर बुद्ध के ऊपर पड़ी, तथा इन्होने बुद्ध को खीर अर्पित किया और बौद्ध धर्म ग्रहण किया। इस प्रकार ये दोनों भाई बौद्ध धर्म ग्रहण करने वाले पहले गृहस्थ उपासक बने, बौद्ध ग्रंथों में इन्हें द्विशरण ग्रहण उपासक कहा गया है।

'जातक वण्णना' में वर्णित है कि भगवान ककुसन्ध के समय अच्युत नामक सेठ ने सोने की ईंटों को बिछाकर उसी से भूमि खरीद कर उस पर एक गण्यूति भरकर संघाराम बनवाया। कोणागमन भगवान के समय उग्र नामक सेठ ने स्वर्ण के कछुओं को बिछाकर, उसी से भूमि खरीद उस स्थान पर अर्द्ध पण्यूति के प्रमाण का संघाराम बनवाया। भगवान कश्यप के समय सुमंगल नामक सेठ ने सोने की ईंटों को फैलाकर उसी मूल्य से भूमि खरीद कर उस स्थान पर सौ करोड़ का विहार बनवाया।

इस तरह जातक कथाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि अनाथपिंडिक ने केवल करोड़ों के कार्षापण से जेतवन विहार निर्माण करके दान ही नही दिया अपितु तत्कालीन बौद्ध विहारों में ठहरे बौद्ध भिक्षु एवं संघ की सहायता हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन विहारों में आर्थिक मदद और सेवा में लगा दिए।

विशाखा एक अत्यंत समृद्ध व्यापारी परिवार की महिला थीं। उनके पिता धनंजय सेठ अंग देश के भद्दिया नगर के बड़े व्यापारी थे। बचपन से ही विशाखा धार्मिक, बुद्धिमान और दयालु स्वभाव की थीं। कहा जाता है कि उन्होंने सात वर्ष की आयु में ही बुद्ध का उपदेश सुनकर बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था।

विशाखा का विवाह श्रावस्ती के धनी व्यापारी पुण्णवर्धन से हुआ। उनके ससुर मिगार सेठ प्रारंभ में बौद्ध धर्म के अनुयायी नहीं थे, किंतु बाद में विशाखा के प्रभाव और बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर वे भी बौद्ध धर्म

के अनुयायी बन गए। इसी कारण उन्होंने विशाखा को "मिगारमाता" (मिगार की माता) की उपाधि दी। विशाखा ने श्रावस्ती में पूर्वाराम विहार का निर्माण कराया।

जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि विहारों का दान मात्र वैश्य पुरुष उपासक वर्ग ही नही अपितु वैश्य समुदाय की उपासिकाओं द्वारा भी विहार दान के उदाहरण मिलते है जैसे विशाखा का पूर्वाराम विहार। विशाखा जो भद्दिय नगर श्रेष्ठि की पुत्री थी उनका विवाह मृगार श्रेष्ठि के पुत्र पूर्ववर्धन के साथ हुआ था जिसके समारोह में बिंबसार बाराती बनकर धनंजय के यहां कई दिनों तक ठहरे थे। विशाखा भगवान बुद्ध की अन्नय भक्त थी उसने अपने अमूल्य महालता हार को बेचकर एक विहार का निर्माण करवाया थी। उसने नौ करोड़ की भूमि खरीदी, उस भूमि पर नौ करोड़ लगवाकर एक भवन निर्माण करवाया, दो तल प्रसाद बनवाया। भूमि तल पर पांच सौ गर्भ (कोठरियां) बनवायी, ऊपरी तल पर भी पांच सौ गर्भ बनवाये। इस तरह यह प्रसाद एक सहस्त्र गर्भों से सुसज्जित था जिसे 'पूर्वाराम विहार' नाम दिया गया इसे विशाखा ने बड़े उत्सव के साथ भगवान को समर्पित किया। इस उत्सव में भी विशाखा ने करोड़ो का दान किया। विशाखा जब भी जेतवन विहार में भगवान के दर्शन के लिए आती थी वे वह कुछ न कुछ दान देकर जाती थी। इन विहारों में जो भी उपासक व उपासिकाएं बुद्ध के उपदेश सुनने आते कुछ न कुछ परिवर्तन अपने में अवश्य पाते थे। विहारों में दिए जाने वाले उपदेशों के कारण जन साधारण की अंतरात्मा में जो परिवर्तन होते थे उसमें विहारों का वातावरण भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता था यही कारण है कि विशाखा ने बौद्ध भिक्खु व भिक्खुणियों की समस्याओं के प्रति अपना ध्यान आकर्षित कर भगवान बुद्ध से आठ वचन मांगे थे विशाखा ने बुद्ध से आठ प्रकार के दान (अष्टदान) की अनुमति भी प्राप्त की, जिनमें भिक्षुओं के लिए भोजन, वस्त्र, औषधि तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था शामिल थी।

बौद्ध ग्रंथों में पांच महान धनवान के बारे में उल्लेख मिलता है जीने अनाथपिंडिक (सुदत्त), विशाखा, मेंडक सेठ, जोतिका जटिल सेठ है, विशाखा के ससुर मेंडक सेठ थे ये भद्दिया नगर मगध में व्यापारी थे, जिन्हें आदर्श धनवान व्यक्ति के रूप में जाना जाता है जो धन का सदुपयोग करते थे तथा धन का अधिकांश भाग धार्मिक सामाजिक कार्यों में लगाया करते थे। मेंडक सेठ अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। वे यात्रियों और गरीबों की सहायता करते थे तथा नियमित रूप से भिक्षु संघ के लिए भोजन की व्यवस्था करते थे। इस प्रकार उन्होंने बौद्ध संघ को आर्थिक स्थिरता प्रदान की और धर्म के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4. विहारों के रूप में वैश्य वर्ग का योगदान :

जातक कथाओं में बौद्ध धर्म के विकास में वैश्य समुदाय द्वारा बनवाए गए विहारों का महत्वपूर्ण योगदान देखने को मिलता है। विहार वे स्थान थे, जिन्हें बौद्ध भिक्षुओं का आवास गृह कहा जाता था। इनमें भिक्षु और भिक्षुणियां संघ बनाकर निवास करते थे। इसी कारण इन्हें 'संघाराम' भी कहा गया। इन संघारामों में भिक्षु एकत्र होकर बैठते और 'संधिक' कृत्य करते थे।

बौद्ध धर्म को फैलाने में विहारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, विहार में बुध और उनके अनुयायी वर्षावास के दिनों में ठहरा करते थे। अक्सर जिन विहारों में बुध ठहरते थे उनके आसपास के इलाके के लोग बुद्ध का उपदेश सुनने के लिए आया करते थे, जिससे बौद्ध धर्म की प्रसिद्धि बढ़ती गई। वर्षावास वह समय होता था जब वर्षा होती थी, तथागत बुद्ध का मानना था की इन दिनों सांप, बिच्छू आदि जीवों के साथ–साथ वर्षा, आंधी तूफान का डर भिक्षुओं को रहता था। इसी कारण बारिश के दिनों में एक स्थान पर रुकना ही उचित था, इस उद्देश्य

की पूर्ति विहारों से हुआ करती थी। इसके साथ विपश्यना, ध्यान, अध्ययन और चर्चा के लिए समय निकल जाता था, वर्तमान समय में भी अलग अलग स्थानों पर विपश्यना केंद्र बने है जो की दान से ही चलते है।

वर्षावास (वस्सावास) का महत्व भी विहारों से जुड़ा हुआ है। वर्षावास वह विधि है जिसमें भिक्षु वर्षा के तीन महीनों तक किसी एक स्थान में रहकर ध्यानाभ्यास करते हैं। वर्षा के समय भूमि पर रहने वाले भिक्षु चारिकारत रहते हैं, जिससे छोटे जीवों की हिंसा कम होती है और ध्यानाभ्यास की पूर्णता सुनिश्चित होती है। इस कारण भगवान बुद्ध ने वर्षावास का विधान किया और इसे 'अनुजानमिभिक्खवे' के रूप में बताया।

वर्षावास दो प्रकार का होता है : प्रथमिका और परिच्छमिका। प्रथमिका वर्षा के आषाढ़ के प्रथम दिन से प्रारंभ होती है, जबकि परिच्छमिका श्रावणी के प्रथम दिन से। दोनों अवस्थाओं में इसकी अवधि तीन महीनों की होती है। वर्षावास का स्थान ग्राम से न तो बहुत निकट होना चाहिए, न ही अत्यधिक दूर, ताकि पिण्डाचार के लिए आने–जाने में सुविधा बनी रहे।

इस प्रकार, बुद्ध द्वारा भिक्षुओं को विहारों में रहने का प्रावधान करने से भिक्षुओं को प्राकृतिक संकटों से सुरक्षा मिली। साथ ही बौद्ध विहार ऐसे आश्रय स्थल बन गए जहाँ सामान्य जन समूहों में आकर भगवान बुद्ध के उपदेश सुनते थे। विहारों के दान और निर्माण से बौद्ध भिक्षुओं के लिए अधिक संख्या में आवास स्थलों की व्यवस्था होने लगी। प्रारंभिक अवस्था में विहारों की संख्या सीमित थी, लेकिन बुद्ध के पश्चात् काल में उनकी संख्या में वृद्धि हुई।

जातक कथाओं में उल्लेख मिलता है कि जितने भी विहारों का निर्माण और दान किया गया, उनमें सबसे अधिक निर्माता या दानी वर्ग राजा या धनी वैश्य वर्ग के लोग होते थे। इस प्रकार वैश्य समुदाय ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार और भिक्षुओं के कल्याण में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके समान वैश्य वर्ग के अन्य लोगों के बारे में भी जातक कथाओं के वर्णित किया गया है कि उन्होने भी विभिन्न विहारों का निर्माण करके उन्हें बुद्ध संघ को दान दिया था जैसे उग्ग गृहपति जो 'काण' का श्रेष्ठि था जिसने जेतवन विहार से डेढ़ किलोमीटर दूरी पर भगवान बुद्ध के लिए एक विहार का निर्माण किया था जो नवीन विहार के नाम से जाना गया। जबकि उग्गा ने केतकावन उद्यान को निर्मित कर बौद्ध संघ को दान दिया था। इसी दान के कारण उग्गा बारह बार राजा बना था।

जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि वैश्य वर्ग ने विहारों के विकास के अनेक अन्य तरीकें अपनाये जिनमें एक था यात्राओं के समय विहारों को आर्थिक अनुदान करके। जैसे जातक वण्णना में वर्णन किया है कि एक प्रकार जब भी व्यापारी वर्ग कभी साझे मे तो कभी अकेले से या समूहों में दूरस्थ क्षेत्रों में व्यापार के लिए जाया करते थे तो अपनी गाड़ियों जो पांच–पांच सौ की संख्या में होती थी उनमें क्रय–विक्रय हेतु सामान ले जाते थे तो इन व्यापारिक यात्राओं के समय मार्ग में स्थित विहारों आते हुए महादान देते थे और जाते समय भी वह विहारों और बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणियों को प्रणाम करते हुए दान देकर जाते थे बौद्ध काल में वैश्य (व्यापारी) वर्ग की दान–परंपरा अत्यंत विकसित और संगठित थी, जो व्यापार और धर्म के गहरे संबंध को दर्शाती है। व्यापारी जब व्यापार के लिए लंबी–लंबी यात्राओं पर निकलते थे, तो मार्ग में पड़ने वाले विहारों और श्रमणों के पास जाकर दान देते और आशीर्वाद प्राप्त करते थे तथा यह संकल्प लेते थे कि यदि उन्हें लाभ हुआ तो वे पुनः आकर दान करेंगे। 'अप्पणांक जातक' तथा 'वण्णना जातक' से ज्ञात होता है कि बोधिसत्व स्वयं व्यापारी रूप में जन्म लेकर

यात्रा के दौरान विहारों में दान देते थे और लाभ प्राप्त होने पर पुनः संघ को भेषज, वस्त्र और अन्य आवश्यक सामग्री प्रदान करते हुए 'त्रिशरण' और 'पंचशील' ग्रहण करते थे। 'खादिरगार' जातक वण्णना में एक धनी सेठ द्वारा छः दानशालाओं के निर्माण और प्रतिदिन विशाल दान देने का उल्लेख है, जबकि विसस्य्य जातक वण्णना में नगर में अनेक दानशालाओं के निर्माण का वर्णन मिलता है। इस प्रकार दान केवल व्यक्तिगत आस्था तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह एक संगठित सामाजिक व्यवस्था बन गया, जिसे वैश्य वर्ग ने पीढ़ी दर पीढ़ी बनाए रखा, और जिसके माध्यम से बौद्ध संघ को निरंतर आर्थिक सहयोग प्राप्त होता रहा तथा धर्म के प्रसार और स्थायित्व को सुदृढ़ आधार मिला।

प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म केवल धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का माध्यम भी बना। इसके प्रसार में राजाओं, भिक्षुओं और विद्वानों के साथ–साथ व्यापारी वर्ग की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही। व्यापारी दूर–दूर तक यात्रा करते थे और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के साथ संपर्क स्थापित करते थे। इसी कारण वे बौद्ध धर्म के विचारों और शिक्षाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के प्रभावी माध्यम बन गए।

5. निष्कर्ष :

वैश्य वर्ग द्वारा व्यापार मार्गो के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रसार किया। वैश्य वर्ग व्यापार के लिए भारत से मध्य एशिया, चीन, और दक्षिण–पूर्व एशिया तक कई महत्वपूर्ण मार्गों का प्रयोग करते। वह देश ही नही रेशम मार्ग द्वारा विदेशों तक की लंबी–लंबी यात्राएं किया करते थे। इन मार्गा से वस्तुओं के साथ–साथ संस्कृति और धर्म का भी आदान–प्रदान करते थे। कई बार इन यात्राओं के दौरान वे बौद्ध–भिक्षुओं को साथ ले जाते थे या उनके लिए मार्ग में ही मठ बनवाते थे जिससे बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ। जैसे रेशम मार्ग में माध्यम से व्यापार करने के कारण मध्य एशिया के खोतान कुचा और चीन में प्रारंभिक काल में बौद्ध धर्म व्यापारियों और यात्रियों के माध्यम से ही पहुंचा।

बौद्ध साहित्य में जातक कथाएँ बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। इन कथाओं में बुद्ध के पूर्व जन्मों की कहानियाँ वर्णित हैं और इनके माध्यम से उस समय के समाज, व्यापार, यात्राओं और नैतिक जीवन की जानकारी मिलती है। जातकों से यह भी पता चलता है कि वैश्य वर्ग के व्यापारी बौद्ध धर्म के विचारों और नैतिक मूल्यों को दूर–दूर तक फैलाने में महत्वपूर्ण माध्यम बने।

प्राचीन भारत में व्यापारी अपने व्यापार के लिए स्थलीय (कारवां मार्ग) और समुद्री मार्गों से विभिन्न क्षेत्रों और देशों की यात्रा करते थे। इन यात्राओं के दौरान वे केवल वस्तुओं का ही आदान–प्रदान नहीं करते थे बल्कि अपने साथ धार्मिक विचार, नैतिक मूल्य और सांस्कृतिक परंपराएँ भी ले जाते थे। इस प्रकार व्यापार मार्ग बौद्ध धर्म के प्रसार के प्रमुख साधन बने। जातक कथाओं में कई व्यापारियों का उल्लेख मिलता है जो अपने आचरण और यात्राओं के माध्यम से बौद्ध आदर्शों को फैलाते थे। सेरिवाणिज जातक में दो घूमने वाले व्यापारियों का वर्णन मिलता है जो विभिन्न नगरों में सामान बेचने जाते थे। उनमें से एक व्यापारी ईमानदार और धर्मनिष्ठ था। उसकी सत्यनिष्ठा और सदाचार से लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा और बौद्ध नैतिक मूल्यों का प्रचार हुआ। इसी प्रकार सुप्पारक जातक में समुद्री व्यापार करने वाले व्यापारियों का वर्णन मिलता है। ये व्यापारी जहाजों के माध्यम से दूर देशों तक जाते थे। उनके द्वारा स्थापित व्यापारिक संपर्कों से भारत और विदेशी क्षेत्रों के बीच सांस्कृतिक

तथा धार्मिक संबंध मजबूत हुए और बौद्ध धर्म के विचारों का प्रसार हुआ। महाजनक जातक में महाजनक नामक व्यापारी का उल्लेख है जो समुद्री व्यापार के लिए लंबी यात्राएँ करता है। इस कथा में उसके धैर्य, साहस और नैतिकता का वर्णन है, जो बौद्ध धर्म के आदर्शों को दर्शाता है। उसके आचरण से लोगों को नैतिक जीवन का संदेश मिलता है। इसी तरह शंख जातक में शंख नामक एक धनी व्यापारी का उल्लेख मिलता है जो दानशीलता और परोपकार के लिए प्रसिद्ध था। उसने अपने धन का उपयोग धार्मिक कार्यों और समाज की सेवा में किया, जिससे बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का प्रचार हुआ।

कई जातकों में 500 व्यापारियों के कारवां (व्यापारिक दल) का भी उल्लेख मिलता है। ये व्यापारी समूह बनाकर जंगलों, मरुस्थलों और दूर देशों की यात्रा करते थे। रास्ते में वे विभिन्न क्षेत्रों के लोगों से संपर्क करते और अपने आचरण तथा नैतिक व्यवहार के माध्यम से बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को फैलाते थे। इस प्रकार जातक कथाओं से स्पष्ट होता है कि वैश्य वर्ग के व्यापारी केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने धर्म, संस्कृति और नैतिक मूल्यों के प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। व्यापार मार्गों के माध्यम से उनके संपर्क दूर–दूर के क्षेत्रों और देशों से बने, जिससे बौद्ध धर्म भारत से बाहर भी फैल सका।

वैश्य वर्ग द्वारा व्यापारिक मार्गो पर बनवायें गए स्तूप, चौत्यों विहारों का उपयोग भिक्षु–भिक्षुणियों के साथ–साथ अन्य देश के व्यापारी भी विश्राम स्थल के रुप में करते थे। साथ ही व्यापारी समुदायों ने शिक्षण केन्द्रों की स्थापना भी की, जिसमें देश के कोने–कोने से लोग शिक्षा ग्रहण करने आते थे तक्षशिला, मथुरा और उज्जैन उस समय के प्रमुख व्यापारिक और शैक्षणिक नगर बने। इस दौरान वह भारत की संस्कृति और बौद्ध धर्म से अवगत होते थे और बुद्ध के उपदेश अपने देश तक ले जाते थे। इस प्रकार जहां व्यापार अधिक होता था, वहां सांस्कृतिक और धार्मिक गतिविधियां भी अधिक होती थी, इसलिए व्यापारी नगर बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए। भारतीय व्यापारी समुद्री मार्गों से श्रीलंका, म्यामार, थाईलैंड और इंडोनेशिया, दक्षिण पूर्व एशिया तक बौद्ध धर्म संस्कृति का प्रभाव बढ़ा।

संदर्भ–सूची :

1. राहुल सांकृत्यायन – बौद्ध धर्म का इतिहास, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. भदंत आनंद कौसल्यायन – जातक कथाएँ, बुद्ध विहार प्रकाशन।
3. रामशरण शर्मा – प्राचीन भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. गोविंद चंद्र पांडे – बौद्ध धर्म और संस्कृति, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
5. डी. डी. कोसांबी – प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. कोसांबी, डी. डी. (1956). एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री. बंबई : पॉपुलर प्रकाशन।
7. भगवत शरण उपाध्याय – भारतीय संस्कृति का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. काउवेल, ई. बी. (अनुवादक). (1895). जातक कथाएँ (Jataka Tales). कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. कुमारस्वामी, आनंद के. (1916). बुद्ध का जीवन. न्यूयॉर्क : मैकमिलन कंपनी।
10. धर्मानन्द, शान्ता. (2005). भारत में बौद्ध भिक्षु जीवन. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
11. राहुल सांकृत्यायन. (1951). बौद्ध धर्म और दर्शन. इलाहाबाद : किताब महल।
12. थापर, रोमिला. (2002). अर्ली इंडिया : फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300. नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स।
13. विनय पिटक. (विभिन्न संस्करण). त्रिपिटक का एक भाग.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 56–62

वंदना यादव के कहानी संग्रह 'जिंदगी और मौत के बीच में' सैनिक जीवन के विविध आयाम

सीमा शर्मा
शोधार्थी, पी–एच.डी. हिन्दी,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समर हिल शिमला।

सारांश :

मानव एक सामाजिक प्राणी है और समाज उसके जीवन तथा व्यवहार को प्रभावित करता है। समाज में घटित होने वाली घटनाएं और अनुभव विभिन्न रूपों में साहित्य में अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं। इसी कारण साहित्य को समाज का प्रतिबिंब माना जाता है। साहित्यकार अपने समय और परिवेश से प्रभावित होकर समाज के विभिन्न वर्गों तथा उनके जीवन–संघर्षों को अपनी रचनाओं का विषय बनाता है। हिंदी साहित्य में भी समाज के अनेक महत्वपूर्ण विषयों को विभिन्न विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। सैनिक समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो राष्ट्र की सुरक्षा और अखंडता के लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। सैनिक जीवन के विविध पक्षों को साहित्य में अभिव्यक्ति देने का प्रयास अनेक रचनाकारों ने किया है। वंदना यादव द्वारा संपादित कहानी–संग्रह 'जिंदगी और मौत के बीच' सैनिक जीवन के बहुआयामी यथार्थ को प्रस्तुत करने वाली एक महत्वपूर्ण कृति है। इस संग्रह में संकलित कहानियाँ सैनिकों के जीवन के सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा राष्ट्रीय पक्षों को उद्घाटित करती हैं। कहानी संग्रह के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सैनिक का संघर्ष केवल युद्धभूमि तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके जीवन में परिवार से दूरी, सामाजिक असंवेदनशीलता, आर्थिक सीमाएँ, युद्धजनित मानसिक आघात तथा कर्तव्य और मानवीय संवेदनाओं के बीच निरंतर द्वंद्व भी उपस्थित रहता है।

बीज शब्द : सैनिक जीवन, वंदना यादव, जिंदगी और मौत के बीच, सामाजिक उपेक्षा, सैनिक परिवार, सैनिक पत्नी, आर्थिक संघर्ष, मनोवैज्ञानिक आघात, अपराधबोध, नैतिक द्वंद्व, राष्ट्रप्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, त्याग, बलिदान।

जिंदगी और मौत के बीच कहानी संग्रह में सैनिक जीवन के विविध आयाम :

सैनिक जीवन त्याग, अनुशासन, साहस और राष्ट्रनिष्ठा का प्रतीक माना जाता है। एक सैनिक का जीवन सामान्य नागरिक के जीवन से बहुत अलग और कठिन होता है। सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियाँ, आतंकवाद अथवा युद्ध का भय तथा परिवार से लंबे समय तक दूरी ये सभी परिस्थितियाँ उसके जीवन को संघर्षमय बना देती हैं। सैनिक केवल बाहरी शत्रुओं से ही नहीं, बल्कि अपने भीतर के भय, अकेलेपन, अपराधबोध और भावनात्मक द्वंद्व से भी जूझता है। कर्तव्य और संवेदनाओं के बीच संतुलन बनाए रखना उसके

जीवन की सबसे बड़ी चुनौती बन जाता है। सैनिक जीवन के इसी कठोर यथार्थ को समकालीन हिंदी साहित्य के विभिन्न साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों और कहानियों में अभिव्यक्त किया है, जिनमें वंदना यादव का महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी साहित्य में सैनिक जीवन से संबंधित उपलब्ध चुनिंदा कहानियों को संकलित करते हुए उन्होंने 'जिंदगी और मौत के बीच' शीर्षक से एक कहानी–संग्रह का संपादन किया है, जिसमें विभिन्न कहानीकारों की 21 कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ सैनिक जीवन के विविध पहलुओं को गहराई से प्रस्तुत करती हैं। प्रसिद्ध लेखिका नासिरा शर्मा के अनुसार ''हिंदी साहित्य में सैनिकों की जिंदगी और संघर्ष पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है तथा यह कहानी–संग्रह उसी कमी की पूर्ति करता है।''[1]

इस संग्रह की कहानियाँ सैनिक जीवन के कठोर यथार्थ के साथ–साथ उसके पारिवारिक संघर्षों को भी सामने लाती हैं। सैनिकों को अपने परिवार से लंबे समय तक दूर रहना पड़ता है। इस दूरी का प्रभाव उनके परिवार पर भी पड़ता है। सैनिक पत्नी का जीवन विशेष रूप से कठिन हो जाता है। उसे परिवार की सभी जिम्मेदारियाँ अकेले निभानी पड़ती हैं। इसी स्थिति को कहानी–संग्रह में संकलित रेणु यादव की कहानी 'मुखाग्नि' में अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है– 'जब पति नहीं होता है तब मन को समझाया जा सकता है, लेकिन होते हुए भी जब दूर हो जाए तो जो हाल होता है वह कवनी मरन से कम नहीं होता।'[2] यह कथन केवल विरह की अनुभूति नहीं, बल्कि उस मानसिक स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें पत्नी पति के जीवित होते हुए भी भावनात्मक रूप से उसे खो देती है। सैनिक के लंबे समय तक घर से दूर रहने के कारण पत्नी स्वयं को अकेला महसूस करती है। वह जानती है कि उसका पति जीवित है, फिर भी उसके साथ न होने के कारण उसके जीवन में एक खालीपन बना रहता है।

सैनिक परिवार का जीवन केवल विरह और प्रतीक्षा तक सीमित नहीं होता, बल्कि शहादत के बाद गहरे मानसिक आघात का भी सामना करता है। संग्रह की 'मुखाग्नि' कहानी में शहीद सैनिक के पार्थिव शरीर के सामने खड़ी पत्नी राधिका की मनःस्थिति का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है– 'आज उसे ना तो देशभक्ति का स्वांग सूझ रहा था, न माँ–बाप पर कोई गुस्सा। न भविष्य की चिंता है न बच्चों की। वह नहीं चाहती कि कोई उसे देखे और न ही वह किसी को। सबकी नजरों से छिपकर वह एकटक निहार रही है तिरंगे में लिपटे ताबूत को।'[3] यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि सैनिक की शहादत को समाज जहाँ राष्ट्रीय गौरव के रूप में देखता है, वहीं परिवार के लिए यह असहनीय व्यक्तिगत क्षति और भावनात्मक विघटन का कारण बन जाती है। प्रमुखतः शहीद की पत्नी का पूरा जीवन एक पल में बदल जाता है।

इसके अतिरिक्त सैनिकों और उनके परिवारों को सामाजिक उपेक्षा का भी सामना करना पड़ता है। सोनाली मिश्रा की 'ब्रेकिंग नहीं प्रीचिंग न्यूज' नामक कहानी एक लापता सैनिक की पत्नी के दर्द को मार्मिक ढंग से चित्रित करती है। कहानी में मीडिया एडिटर चीफ द्वारा लापता सैनिक की खबर को यह कहकर छापने से मना कर दिया जाता है कि– 'सैनिक की कहानी में किसी को इंटरेस्ट नहीं होता। हॉटनेस नहीं होती यार, ब्रेकिंग न्यूज चाहिए, प्रीचिंग न्यूज नहीं।'[4] यह पंक्ति दर्शाती है कि समाज सैनिकों के प्रति संवेदनशील नहीं है। वह उनके त्याग और समस्याओं को समझने के बजाय उन्हें महत्वहीन मानकर उपेक्षित कर देता है। इसके साथ ही ये कथन बताता है कि आज समाचारों का चयन जनहित के लिए नहीं, बल्कि टीआरपी, सनसनी और बाजारवादी सोच के आधार पर किया जाने लगा है। सैनिकों और उनके परिवारों की समस्याएँ समाज के लिए उतनी

आकर्षक नहीं मानी जातीं, जितनी विवाद, अपराध या मनोरंजन से जुड़ी खबरें। परिणामस्वरूप सैनिकों के वास्तविक जीवन से जुड़े मुद्दे मीडिया और समाज दोनों की उपेक्षा का शिकार हो जाते हैं। समाज द्वारा सैनिकों की उपेक्षा और उनके योगदान को भुला देने की प्रवृत्ति का चित्रण संग्रह की अन्य कहानियों में भी हुआ है। सुषमा मुनींद्र की कहानी 'सैनिक की स्मृति में' रोहिणी प्रसाद के दादा समाज की इसी मानसिकता पर दुःख व्यक्त करते हुए कहते हैं– 'तब खजूरी का बच्चा–बच्चा रोहिणी के साहस का किस्सा सुनाता था। अब लोग थूक रहे हैं। रोहिणी का अपमान कर रहे हैं। आप लोग शहीद का आदर न करो पर थूको नहीं। विजय स्तंभ आप लोगन का कुछ नहीं बिगाड़ेगा।'[5] यह कथन समाज की कृतघ्नता और बदलती मानसिकता को उजागर करता है। युद्ध अथवा संकट के समय समाज सैनिकों को वीर, देशभक्त नायक के रूप में देखता है। उनके साहस और बलिदान की प्रशंसा की जाती है तथा उन्हें सम्मान दिया जाता है। किंतु समय बीतने के साथ वही समाज उनके योगदान को भूलने लगता है। परिणामस्वरूप सैनिकों की स्मृतियाँ धूमिल पड़ जाती हैं।

इसी प्रकार चंद्रकांता द्वारा रचित कहानी 'सरहदों के नाम' में समाज द्वारा सैनिकों की उपेक्षा को व्यक्त करते हुए कहा गया है– 'तुमने लिखा है वीर, लोग जवानों की भूमिका को भूल जाते हैं, या उनका मूल्यांकन नहीं करते।'[6] वहीं 'गर्ल–फ्रेंड्स' कहानी में प्रत्युष कहता है– 'कोई नहीं समझता मैम इन कुर्बानियों को, हमारी तो बस गलतियाँ ही गलतियाँ दिखती हैं मुल्क वालों को।'[7] इन कथनों से स्पष्ट होता है कि युद्ध के समय सैनिक की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है, किंतु समय बीतने के साथ समाज उसका महत्व भूल जाता है। ये कथन इस तथ्य की ओर भी संकेत करते हैं कि सैनिक का जीवन समाज के लिए तब तक महत्वपूर्ण दिखाई देता है, जब तक वह किसी बड़ी घटना, युद्ध या संकट से जुड़ा हुआ हो। सामान्य परिस्थितियों में उसकी भूमिका को स्वाभाविक मान लिया जाता है।

कहानी–संग्रह में ऐसी अनेक कहानियाँ हैं जिनमें युद्ध का सामाजिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कृष्ण बिहारी द्वारा लिखित कहानी 'कारगिल के साथ–साथ' में यह दिखाया गया है कि युद्ध केवल मोर्चे पर ही नहीं होता, बल्कि समाज में भी प्रवेश कर जाता है। एक टैक्सी ड्राइवर कहता है– 'धमाका किया न, किया न धमाका? अब हम करेंगे धमाका।'[8] यह पंक्ति इस बात को रेखांकित करती है कि युद्ध सामाजिक सौहार्द को तोड़कर हिंसा और घृणा को जन्म देता है। युद्ध का उद्देश्य भले ही राष्ट्रीय सुरक्षा हो, लेकिन उसके परिणाम समाज के भीतर भय, प्रतिशोध की भावनाओं को जन्म दे सकते हैं। परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधों में अविश्वास और कटुता बढ़ने लगती है।

सैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण आयाम उसका आर्थिक पक्ष है। सैनिक का जीवन अनेक आर्थिक परिस्थितियों और चुनौतियों से जुड़ा होता है। कई बार सेना में भर्ती होने का निर्णय केवल राष्ट्रप्रेम का परिणाम नहीं होता, बल्कि इसके पीछे आर्थिक आवश्यकताएँ और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी होती हैं। विशेष रूप से ग्रामीण और आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के युवाओं के लिए सेना सम्मानजनक रोजगार और आर्थिक स्थिरता का माध्यम माना जाती है। ऐसे परिवारों में सेना की नौकरी केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि पूरे परिवार के जीवन स्तर को सुधारने का साधन मानी जाती है। 'वांग–छी' कहानी में यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि ग्रामीण और सीमित संसाधनों वाले परिवारों के लिए सेना एक स्थायी आय का साधन बन जाती है– 'वे लोग छोटे किसान थे या उनके लड़के फौज में तैनात थे। फौज वाले लड़के अपने माँ–बाप के लिए कुछ

पैसे जरूर भेज दिया करते और इस तरह वे बाकी परिवारों से थोड़े संपन्न दिखने लगते। फौज में होने से पूरे परिवार की रोटी का पक्का इंतजाम मान लिया जाता था। शायद इसी वजह से उन्होंने फौज में भर्ती होने का सोचा होगा। परिवार को मदद जरूरी थी।'[9] यह कथन स्पष्ट करता है कि सेना में भर्ती होना केवल देशसेवा का अवसर नहीं, बल्कि आर्थिक असुरक्षा से मुक्ति का माध्यम भी है। कहानीकार यहाँ ग्रामीण समाज की उस वास्तविकता को सामने लाता है, जहाँ सीमित कृषि आय और रोजगार के अभाव में सेना की नौकरी पूरे परिवार के लिए आशा का आधार बन जाती है। सैनिक द्वारा भेजी गई धनराशि केवल आर्थिक सहायता नहीं होती, बल्कि परिवार के सामाजिक और आर्थिक सम्मान को भी बढ़ाती है। दूसरी ओर सैनिक जीवन की आर्थिक सीमाएँ भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। सैनिक की नौकरी आर्थिक सुरक्षा तो प्रदान करती है, किंतु उससे जुड़ी अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी होती हैं। 'मुखाग्नि' कहानी में सिपाही मनोज का कथन– 'एक सिपाही की एतना सैलरी नाही होती कि सहर में लेकर पालेंगे–पोसेंगे। बच्चा छोटा है तो काम चल जाएगा लेकिन बड़े होने पर मुश्किल हो जाएगी। अच्छे स्कूल बहुत महंगे हैं, पढ़ा–लिखा नहीं पाएंगे।'[10] एक सामान्य सिपाही की सीमित आय और उससे उत्पन्न पारिवारिक कठिनाइयों को उजागर करता है। यह कथन दर्शाता है कि सिपाही अपने परिवार की अनेक मूलभूत आवश्यकताओं को लेकर चिंतित रहता है। विशेष रूप से बच्चों की शिक्षा, बेहतर जीवन–स्तर और भविष्य की सुरक्षा उसके लिए निरंतर चिंता का विषय बने रहते हैं।

सैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण परंतु कम समझा गया पक्ष उसका मनोवैज्ञानिक पक्ष है। युद्ध समाप्त हो सकता है, लेकिन सैनिक के भीतर चलने वाला युद्ध समाप्त नहीं होता। वह अपने अनुभवों और स्मृतियों के साथ जीता है, जो उसके मन पर गहरा प्रभाव डालती हैं। संग्रह में 'सैनिकों की स्मृति में', 'गर्ल–फ्रेंड्स', 'फौजी', 'आह कश्मीर' और 'रंगरेज मेरे' जैसी कहानियाँ सैनिकों के मानसिक संघर्षों को गहराई से प्रस्तुत करती हैं। गौतम राजऋषि द्वारा लिखी कहानी 'गर्ल–फ्रेंड्स' में मेजर प्रत्यूष कहता है– 'काहे का ब्रेव सोल्जर मैम? रोज रात को सिद्धू मेरे बेड के सामने खड़ा हो जाता है और घूरता है मुझे। जिन गोलियों ने उसकी जान ली, वो तो दरअसल थी मेरे नाम की ना?'[11] यह कथन सैनिक के मानसिक तनाव और अपराधबोध को व्यक्त करता है। सैनिकों के मन में युद्ध की स्मृतियाँ लंबे समय तक उसका पीछा करती रहती हैं। कई बार सैनिक अपने साथी की मृत्यु के लिए स्वयं को दोषी मानने लगता है। 'गर्ल–फ्रेंड्स' कहानी में मेजर प्रत्यूष का यह मानसिक संघर्ष अत्यंत मार्मिक रूप में सामने आता है– 'कैसा शौर्य? कैसी वीरता? जब उसका बडी लांस नायक खुशहाल उसके सामने ही दम तोड़ गया.... जब गोलियों ने उसके प्यारे से सिद्धू की जान ले ली और वह कुछ ना कर सका तो इसमें शौर्य कहां से आया? कई बार बहुत दर्द से चीखना चाहता था जोर–जोर से।'[12] आगे वह भावुक होकर कहता है– "I could have saved him ma'am! उसे...... अपने सिद्धू को बचा सकता था मैं।'[13] यह कथन सैनिक के भीतर उपस्थित गहरे अपराधबोध, आत्मग्लानि और युद्धोत्तर मानसिक आघात को व्यक्त करता है। मेजर प्रत्यूष के मन में अपने साथी की मृत्यु की स्मृति इतनी गहराई से अंकित है कि वह स्वयं को उस घटना के लिए उत्तरदायी मानने लगता है। यह स्थिति युद्धोत्तर मानसिक आघात (Post-Traumatic Stress) की ओर संकेत करती है, जिसमें सैनिक बार–बार उन्हीं दुखद घटनाओं को स्मरण करता है और उनसे मुक्त नहीं हो पाता।

इसी प्रकार रजनी मोरवाल द्वारा रचित 'रंगरेज मेरे' में मेजर सौरभ कहता है– 'मैं सच कहता हूँ नैन्सी, जिसे मैंने उस रात मारा था उससे मेरी कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं थी लेकिन मेरा फर्ज यही कहता है।'[14] यह

कथन सैनिक के भीतर कर्तव्य और मानवता के बीच चलने वाले मानसिक संघर्ष को स्पष्ट करता है। ऐसी परिस्थितियां सैनिक के मन में एक गहरे नैतिक द्वंद्व को जन्म देती है। एक ओर उसकी मानवीय संवेदनाएँ होती हैं, जो जीवन की रक्षा और करुणा का संदेश देती हैं, वहीं दूसरी ओर उसका सैनिक धर्म और कर्तव्यबोध होता है, जो उसे राष्ट्रहित में कठोर निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है।

सैनिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष राष्ट्र के प्रति उसका समर्पण और बलिदान है। सैनिक अपने व्यक्तिगत सुख–दुख से ऊपर राष्ट्र की रक्षा को सर्वोपरि मानता है। 'मोर्चे पर', 'सरहदों के नाम', 'कारगिल के साथ–साथ', 'हवा में फड़फड़ाती चिट्ठी' और 'बिरहन' जैसी कहानियों में देशप्रेम, वीरता और बलिदान का सशक्त चित्रण किया गया है। कृष्ण बिहारी की 'कारगिल के साथ–साथ' कहानी में मेजर शैतान सिंह की राष्ट्रभक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है– 'किसी भी हालत में हम सियाचिन नहीं छोड़ सकते चाहे माइनस 40 डिग्री तापमान में रहते हुए जान ही क्यों न देनी पड़े।'[15] सैनिक जानता है कि सियाचिन जैसे क्षेत्र में डटे रहना अत्यंत कठिन है, फिर भी वह अपने जीवन से अधिक राष्ट्रहित को महत्व देता है। इस प्रकार यह कथन सैनिक के उस कर्तव्यबोध को व्यक्त करता है, जिसमें व्यक्तिगत सुरक्षा से अधिक महत्वपूर्ण राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा होती है।

इसी भावना को व्यक्त करते हुए 'सैनिक की स्मृति में' कहानी का पात्र रोहिणी कहता है– 'जयपाल, फौजी घर में, वन में, कैद में, युद्ध में, सीमा पर जहाँ भी होता है प्रसन्न ही होता है। निराशा की बात नहीं करता।'[16] यह कथन सैनिक के आत्मविश्वास और मानसिक दृढ़ता को अभिव्यक्त करता है। विपरीत परिस्थितियाँ सैनिक के जीवन का सामान्य हिस्सा होती हैं, किंतु वह उन्हें अपनी कमजोरी नहीं बनने देता। यह कथन सैनिक के सकारात्मक जीवन–दर्शन को भी सामने लाता है, जहाँ कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उसका मनोबल बना रहता है। सैनिक के लिए परिस्थितियों से अधिक महत्वपूर्ण उसका कर्तव्य होता है और यही भावना उसे निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। सैनिक जीवन में राष्ट्र के प्रति समर्पण का सर्वोच्च रूप बलिदान है। संग्रह में संकलित नीतू सिंह की कहानी 'आह कश्मीर' सैनिक के बलिदान का यथार्थ वर्णन किया गया है – 'ऑपरेशन सफल रहा था। सामने था एक बहादुर जवान का जिस्म जिसने देश की हिफाजत के लिए सीने पर गोली लेकर अपनी जान कुर्बान कर दी थी। वह जवान जब से भर्ती हुआ तभी से इस यूनिट का हिस्सा था और आज इसी यूनिट के कई साथियों को बचाते हुए वहाँ शहीद हो गया।'[17] यह प्रसंग सैनिक के अदम्य साहस और राष्ट्ररक्षा के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देने की भावना को रेखांकित करता है। वह अपने साथियों और राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। 'वन्स ए सोल्जर' कहानी में बलजीत मेहता कहते हैं– 'एक सिविलियन कभी भी फौजी के दिल की भावनाओं को समझ नहीं सकता। सच तो यह है कि हमारा शरीर मर सकता है मगर हमारे भीतर का फौजी कभी नहीं मरता। वन्स ए सोल्जर, ऑलवेज ए सोल्जर।'[18] यह कथन सैनिक जीवन को केवल एक पेशे के रूप में नहीं, बल्कि एक स्थायी पहचान के रूप में प्रस्तुत करता है। सैनिक की वर्दी भले ही एक दिन उतर जाए, किंतु उसके भीतर विकसित अनुशासन, राष्ट्रप्रेम, कर्तव्यनिष्ठा और त्याग की भावना जीवन भर बनी रहती है। यहाँ सैनिक होना केवल रोजगार नहीं, बल्कि एक ऐसी पहचान है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्थायी हिस्सा बन जाती है।

इसी प्रकार 'बिरहन' कहानी में जगतसिंह अपनी पत्नी से कहता है– 'रामरती हम फौज की नौकरी छोटी

सी तनख्वाह के लिए नहीं करते बल्कि उस जज्बे के लिए करते हैं जो दिल के अंदर परिवार के प्रेम से भी बड़ा देश प्रेम के रूप में बैठा है।'[19] यह कथन सैनिक जीवन की राष्ट्रीय चेतना का सबसे सशक्त उदाहरण है। सामान्यतः व्यक्ति के जीवन में परिवार सर्वोच्च स्थान रखता है, किंतु सैनिक अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक हितों से ऊपर उठकर राष्ट्र को प्राथमिकता देता है। इस प्रकार यह पक्तियां सैनिक के उस त्याग और समर्पण को उजागर करती है, जो उसे सामान्य नागरिक से भिन्न और विशिष्ट बनाता है।

निष्कर्ष :

वंदना यादव द्वारा संपादित 'जिंदगी और मौत के बीच' कहानी–संग्रह सैनिक जीवन के विविध पक्षों को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करता है। संग्रह की कहानियाँ सैनिक को एक ऐसे संवेदनशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जो सामाजिक, आर्थिक, मानसिक और पारिवारिक चुनौतियों से निरंतर संघर्ष करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सैनिक जीवन का सामाजिक पक्ष परिवार से दूरी, सैनिक पत्नी के संघर्ष, सामाजिक उपेक्षा तथा युद्ध के सामाजिक प्रभावों के रूप में सामने आता है। आर्थिक पक्ष सैनिकों और उनके परिवारों की आर्थिक आवश्यकताओं तथा सीमाओं को उजागर करता है, जबकि मनोवैज्ञानिक पक्ष युद्धजनित तनाव, अपराधबोध, स्मृतियों और नैतिक द्वंद्व को अभिव्यक्त करता है। वहीं राष्ट्रीय पक्ष सैनिक के राष्ट्रप्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, त्याग और बलिदान की भावना को रेखांकित करता है।

संग्रह की कहानियाँ यह भी स्पष्ट करती हैं कि सैनिक के साथ उसके परिवार का जीवन में भी निरंतर संघर्ष चलता रहता है। सैनिक की शहादत के बाद पुरे परिवार का सर्वस्व नष्ट हो जाता है, उन्हें अनेक दुःखो से गुजरना पड़ता है इसका मार्मिक वर्णन संग्रह की कहानियों में किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि 'जिंदगी और मौत के बीच' हिंदी साहित्य में सैनिक जीवन को अधिक मानवीय, यथार्थपरक और बहुआयामी दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची :

1. वंदना यादव, संपादक, जिंदगी और मौत के बीच, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2021
2. रेनू यादव, मुखाग्नि, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 2021, पृष्ठ 155
3. रेनू यादव, मुखाग्नि, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन 2021, पृष्ट 164
4. सोनाली मिश्रा, ब्रेकिंग नहीं प्रीचिंग न्यूज, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन 2021, पृष्ठ 196
5. सुषमा मुनींद्र, सैनिक की स्मृति में, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 62
6. चंद्रकांता, सरहदों के नाम, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 4
7. गौतम राज ऋषि, गर्लफ्रेंड्स, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन 2021, पृष्ठ 146

8. कृष्ण बिहारी मिश्र, कारगिल के साथ–साथ, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 75
9. मनीष वैद्य, वांग छी, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन 2021 पृष्ठ 104
10. रेनू यादव, मुखाग्नि, संपादक वंदना यादव, जिंदगी और मौत के बीच, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 158
11. गौतम राज ऋषि, गर्लफ्रेंड, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 148
12. गौतम राज ऋषि, गर्लफ्रेंड्स, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 139
13. गौतम राज ऋषि, गर्लफ्रेंड्स, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 141
14. रजनी मोरवाल, रंगरेज मेरे, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव प्रलेक प्रकाशन 2021 पृष्ठ 121
15. कृष्ण बिहारी मिश्र, कारगिल के साथ–साथ, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव प्रलेक प्रकाशन 2021, पृष्ठ 71
16. सुषमा मुनींद्र, सैनिक की स्मृति में, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन 2021, पृष्ठ 64
17. नीतू सिंह, आह कश्मीर, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 199
18. तेजेंद्र शर्मा, वन्स ए सोल्जर, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 58
19. डॉ अनीता यादव, बिरहन, जिंदगी और मौत के बीच, संपादक वंदना यादव, प्रलेक प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 213

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 63–67

THEMATICALLY STUDY BETWEEN NOVELS OF R.K NARAYAN'S NOVEL 'THE GUIDE' AND 'THE MALGUDI DAYS'

Hemant Kamra, Ph.D Scholar
Deptt. of English, SKD University, Pillibanga Hanumangarh (Raj.)
Dr Sheeshpal Singh, Assistant Professor,
Deptt. of English, Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan.

Abstract :

This thematically study explores the narrative architecture and spatial-temporal dynamics in R.K. Narayan's The Guide and Malgudi Days. By examining Narayan's manipulation of narrative frequency, flashbacks and framing devices, the analysis reveals a mathematical-like precision in his storytelling. In The Guide, the intersection of past and present and the dual first-and-third-person perspectives construct a dynamic structural progression.

In Malgudi Days, a spatial analysis of his short stories reveals a recurring thematic rhythm, the tension between tradition and modernity within a fixed geographic coordinate. Ultimately, this study demonstrates that Narayan's fictional universe relies on a carefully balanced equilibrium of tragicomedy, irony, and cyclical time, transforming the ordinary into the universal.

R. K. Narayan is well known Indian writer famous for his set of works and writing in fiction.He was one of the leading and famous authors Mulk Raj Anand and Raja Rao. He was a pioneering Indian novelist whose gentle humor and keen observations made him one of the most beloved voices in Indian English literature. His greatest achievement was to make Indian accessible to the outside world through his writings and powerful words in his literature.

He struggled early with academics but eventually earned a degree in English literature from Mysore, where he began writing. His debut novel Swami and Friends (1935) introduced the fictional town of Malgudi and The Guide, which became the backdrop for most of Narayan's prose was marked by simplicity and clarity, yet it carried profound insights into human nature, tradition and modernity.

Over his long career, he wrote acclaimed novels such as The Bachelor of Arts, The English Teacher and The Guide—the latter winning the Sahitya Akademi Award.His short stories, collected in Malgudi Days, brought ordinary characters to life with warmth and wit and the television adaptation made him a household name. Internationally, he gained recognition with the help of Graham Greene, who admired his work and helped publish it abroad. Narayan received numerous honors, including the Padma Vibhushan and was regarded as part of the "trinity" of early Indian English writers alongside Mulk Raj Anand and Raja Rao. His legacy endures as a chronicler of Indian society, whose stories continue to resonate for their timeless portrayal of human emotions and everyday struggles.

R. K. Narayan was born in a Tamil Brahmin family on October 10, 1906 in Madras (now Chennai, Tamilnadu), British India. He was one of eight children; six sons and two daughters. Of the sons, Narayan was the second oldest; his younger brother Laxman went on to become a cartoonist, while his younger brother Ramachandran working as an editor at Gemini Studios. His father was a school headmaster and Narayan did some of his studies at his father's school. As his father's business necessitated many transfers. Narayan spent a part of his childhood under the care of his maternal grandmother, Parvati.

A cheeky monkey and a peacock were his favorite buddies and playmates at this time.

The family mostly spoke in English and grammatical mistakes made by Narayan and his siblings were frowned upon. While living with his grandmother, Narayan attended a number of Madras schools, including the Lutheran Mission School in Purasawalkam, C.R.C. High School and the Madras Christian College Higher Secondary School. Narayan was an avid reader and his early literary diet included Dickens, Wodehouse, Arthur Conan Doyle and Thomas Hardy. When he was twelve years old, Narayan participated in a Pro-Independence March, for which he received a reprimand from his uncle; the family was a political and considered all when his father was transferred to the Maharajah's College High School. The well-stocked library at the school and his father's own fed his reading habit and he started writing as well. After completing high school, Narayan failed the university entrance examination and spent a year at home reading and writing; he subsequently passed the examination in 1926 and joined Maharaja College of Mysore. It took Narayan four years to obtain his bachelor's degree, a year longer than usual. After being persuaded by a friend that taking a master's degree (M.A.) would kill his interest in literature, he briefly held a job as a school teacher; however, he quit in protest when the headmaster of the school asked him to substitute for the physical training master. The experience made Narayan realise that the only career for him was in writing and he decided to stay at home and write novels. His first published work was a book review of Development of Maritime Laws of 17th-Century England. Subsequently, he started writing the occasional local interest story for English

newspapers and magazines. Although the writing did not pay much (his income for the first year was nine rupees and twelve annas), he had a regular life and few needs and his family and friends respected and supported his unorthodox choice of career. In 1930, Narayan wrote his first novel, Swami and Friends, an effort ridiculed by his uncle and rejected by a string of publishers. With this book, Narayan created Malgudi, a town that creatively reproduced the social sphere of the country; while it ignored the limits imposed by colonial rule, it also grew with the various socio-political changes of British and post-independence India.

He believes in making our faculties and experiences useful in this life, rather than accumulating them for an after-life. Narayan's view is that wisdom is not gained through meditation, or by spiritual contemplation, but by going through the experiences that life has to offer. Raju in The Guide has an ordinary childhood, an extra-ordinary love affair, a parasitic life which extends to his term in jail. In plain and simple words, Narayan portrays a normal Indian man in different circumstances. I find no similarities between Raju and existential characters such as Mersault in Albert Camus's The Outsider. And what happens to Raju, has something in common with what happens to Savitri in The Dark Room when she tries to commit suicide after being driven out by her husband, to the headmaster in The English Teacher when he does not die on the day an astrologer predicted that he would, to Jagan in The Vendor of Sweets when his son Mali violates all his notions of life and to Chandran in The Bachelor of Arts when he renounces everything and becomes a Sanyasi. They all die a death, but this death is not an end but the starting point of a new life. As Narayan says about Chandran when he becomes a sanyasi because he couldn't marry a young girl called Malathi.

R. K. Narayan has deservedly come to be regarded as a pioneer of the Indian novel in English. He has endeared himself to millions of readers throughout the world, because of his impassioned blend of profound and comic vision. He has an uncanny capacity for empathizing with the common masses in a realistic manner. His art of storytelling enabled him to carry the tradition of great writers to new heights. He was not only interpreted the soul of India, the real India of the villages to the West, but also convincingly made known to the colonial rulers, the religious, moral and spiritual heritage of India. Though he makes no overt attempt to include religion, yet the religious factor does get interwoven in his novels, as it is a part of life in India. What gives Narayan, a distinctive place in the Postcolonial Indian English Literature, is the great importance he attaches to his vocation as a writer.

RK Narayan was one of those creative writers who made a living out of their creative writing. He struggled very hard to establish himself as a man of letters. The Guide (1958) appeared in 1950s which are markedly different from his earlier novels.The publication of The Guide proved a landmark for Narayan after which he had received an outstanding reputation and recognition.

R.K. Narayan's novel The Guide and his short story collection Malgudi Days explore the lives of ordinary Indians in the fictional town of Malgudi, they differ in scope. The Guide traces a profound, overarching journey of moral and spiritual redemption, whereas Malgudi Days offers a scattered, slice-of-life glimpse into the varied, everyday struggles of the middle and lower classes. A thematic study of the two texts reveals fascinating contrasts and overlaps in how Narayan portrays humanity and the Indian morality.

The Guide : The novel operates on a macro level, built around the psychological and spiritual evolution of a single protagonist, Raju. He transitions from a corrupt tourist guide, to an exploitative and lover and finally to a revered saint who undergoes a transformative fast for the village's salvation.

Malgudi Days : The collection operates on a micro level. Characters here generally represent the status and struggle to navigate their given realities rather than achieving massive spirituality. The central theme in The Guide is the blurring of illusion and reality. Raju is a master of disguise and deception who casually tells stories for tourists. However, the weight of public perception forces him to "act" like a swami so perfectly that the performance eventually bleeds into his own reality and ultimate martyrdom.

The stories of Malgudi Days like "An Astrologer's Day" or "The Missing Mail" explore everyday deception and the minor hypocrisies people use to get by. Instead of grand illusions, they examine how individuals juggle moral struggles with economic pressures like poverty. The Modernity in The Guide focuses heavily on the friction between modern ambition and traditional restraint. Rosie's desire for an independent artistic career shatters the orthodox expectations of her husband, Marco. Meanwhile, the setting of the abandoned temple embodies ancient religious belief persisting alongside modern commercialism.The stories reflect how traditional family values, orthodox religious customs and caste hierarchies are constantly challenged by modern economic shifts, colonialism and urban poverty.

The Guide is deeply rooted in the Hindu concept of Karma. Raju's past deeds dictate his progression from a life of selfish indulgence to a final act of selflessness. He is bound by cosmic forces to pay for his moral transgressions.

Malgudi Days examine individual agency through small, localized decisions. The collection relies on irony, fatalism and the unpredictable nature of daily life. Rather than being punished for profound sins, characters are often at the mercy of luck, unemployment and rigid societal expectations.

The Guide and Malgudi Days as expressions of Narayan's role as an objective, compassionate chronicler of Indian life, emphasizing the quiet ironies and resilience of ordinary people. For The Guide, Narayan was fascinated by how social pressure could transform an ordinary, flawed man like

Raju into a genuine martyr and he deliberately left the climax open-ended to mirror the mystery of his uttermost faith.He viewed Malgudi Days as a vibrant, universal tapestry of an unstandardised society, asserting that the fictional town of Malgudi could be any small town where microscopic human struggles carry profound cosmic weight. Ultimately, across both works, Narayan maintained an "art for art's sake" philosophy, choosing to observe human behavior with detachment and good humour rather than using his characters to deliver heavy political or moral lectures.

Conclusion :

Narayan, R.K. (1958) The Guide. Indian Thought Publications. (Explores Raju's shift from egotism to altruism).

Narayan, R.K. (1982) Malgudi Days. Penguin Books. (Provides insight into everyday life and the common human experiences across the fictional town).Critical Analysis: Mukherjee, Meenakshi. (1971) The Twice Born Fiction. Heinemann. (Offers classic commentary on how Raju's mask ultimately becomes his reality and transforms his character).Scholarly Overview: Iyengar, K.R. Srinivasa. (1983) Indian Writing in English. Sterling Publishers. (Evaluates how Narayan's works seamlessly enact "the miracle of Faith" amid the sickness of modern life).

Thematic Commentary: LitCharts Analysis of The Guide (Details the socio-cultural norms, hypocrisy and illusion vs. reality themes).

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 68–75

वैश्वीकरण का साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (भारत के सन्दर्भ में)

डॉ० जय शंकर पाण्डेय
विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग)
अवधूत भगवान राम पी.जी. कॉलेज, अनपरा, सोनभद्र।

वैश्वीकरण के बारे में कुछ भी कहने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि क्या है वैश्वीकरण? मानव विकास रिपोर्ट : 2000[1] की दृष्टि में वैश्वीकरण :–

संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम (UNDP) के अन्तर्गत प्रकाशित मानव संसाधन रिपोर्ट में यह कहा गया है कि आधुनिक युग वस्तुतः वैश्वीकरण का युग है। यह रिपोर्ट कहती है, कि वैश्वीकरण दुनियाँ के लिए नया नहीं है। इसका प्रारम्भ 16वीं शताब्दी से है। लेकिन आज का वैश्वीकरण अतीत के वैश्वीकरण से भिन्न है।

इस रिपोर्ट ने वैश्वीकरण को चार विशेषताओं द्वारा परिभाषित किया है, –

01) **नये बाजार (New Markets) :** विदेशी विनिमय व पूँजी बाजार वैश्वीय स्तर पर जुड़े हुए हैं और ये बाजार चौबीसों घण्टे काम करते हैं। इनके लिए भौतिक दूरियाँ कोई अर्थ नहीं रखतीं।

02) **नये उपकरण (New Tools) :** आज के विश्व में लोगों के लिए कई नये उपकरण (Tools) आ गये हैं। इनमें इण्टरनेट लिंक्स, सेल्यूलर फोन्स और मीडिया तंत्र सम्मिलित हैं।

03) **नये एक्टर या कर्ता (New Actors) :** वैश्वीकरण की प्रक्रिया ऐसी है, जिसमें कार्यों का सम्पादन करने के लिए कई कर्ता हैं। इन कर्ताओं में विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.), गैर सरकारी संगठन (N.G.O.), रेड क्रास (Red Cross) आदि सम्मिलित हैं।

04) **नये नियम (New Rools) :** अब सभी काम संविदा (Contract) के माध्यम से होते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां दुनियाँ भर के राष्ट्र–राज्यों के साथ सीधा व्यापार समझौता करते हैं। हमारे देश भारत में अमरीकी बहुराष्ट्रीय एनरॉन कम्पनी ने महाराष्ट्र सरकार के साथ बिजली की आपूर्ति के लिए समझौता किया था। इसी तरह के समझौते अन्य देशों के साथ भी होने हैं। ये कतिपय नये नियम हैं, जो वैश्वीकरण के आर्थिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता देते हैं।

अमित भादुड़ी एवं दीपक नैय्यर[2] का भी यह कथन कि वैश्वीकरण के तीन महत्वपूर्ण आर्थिक पहलू उल्लेखनीय है, जो निम्नांकित है –

(1) पहला पहलू यह है कि, वैश्वीकरण से अन्तराष्ट्रीय बाजार खुल गया है। अब कोई भी व्यक्ति देश के किसी

भी कोने से दूसरे देश के किसी भी कोने के साथ व्यापार कर सकता है।

(2) इसका दूसरा पहलू यह है, कि अब अन्तराष्ट्रीय निवेश सरलता से किया जा सकता है। किसी भी देश का व्यक्ति हमारे यहाँ उद्योग चलाने के लिए, कारखाना खोलने के लिए पूँजी लगा सकता है। और,

(3) वैश्वीकरण का तीसरा पहलू यह है, कि अर्थव्यवस्था में अन्तराष्ट्रीय वित्तीय सहायता को काम में लिया जा सकता है।

इस प्रकार अगर हम आर्थिक संदर्भ में देखें तो वैश्वीकरण ने भारत के अर्थ बाजार में तीन नयी प्रक्रियाएं प्रारम्भ कर दी हैं–

- खुला अन्तराष्ट्रीय व्यापार,
- अन्तराष्ट्रीय निवेश, और
- अन्तराष्ट्रीय वित्त।

इन तीनों ही प्रक्रियाओं के फलस्वरुप हमें यह परिणाम देखने को मिल रहा है कि अब आये दिन नयी तकनीकी इस देश में आ रही है, सूचना का एक पूरा नेटवर्क देश में फैल गया है, और आर्थिक सेवाओं ने सम्पूर्ण देश को अपने में समेट लिया है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के नेतृत्व में विश्व बैंक, अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष तथा 01 जनवरी, 1995 को गैट के स्थान पर अस्तित्व में आये विश्व व्यापार संगठन ने आर्थिक क्षेत्र मे जिस नीति को अपनाने पर तृतीय विश्व के देशों पर दबाव डाला उसे 'L.P.G.' अर्थात Liberalization (उदारीकरण), Privatization (निजीकरण) तथा Globalization (वैश्वीकरण) की नीति कहा जाता है।

वैश्वीकरण के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है :–

(अ) विभिन्न देशों के बीच श्रम, पूँजी, तकनीकी तथा कच्चे माल का मुक्त भाव की बिना किसी रोक–टोक के अन्तर्गमन एवं बहिर्गमने।

(ब) सभी प्रकार के मात्रात्मक प्रतिबन्धों को हटाते हुए नाम मात्र के प्रशुल्कीय ढाँचे के अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार।

(स) सूचना प्रौद्योगिकी के अत्याधुनिक एवं परम्परागत साधनों का प्रयोग करते हुए सूचनाओं, आंकडों, ज्ञान, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विचारधाराओं का आदान–प्रदान करते हुए सारे विश्व को 'वैश्विक गाँव' के रूप में संस्थापित करना।

इस प्रकार उपर्युक्त के अवलोकनोपरान्त वैश्वीकरण के बारे में यह कहा जा सकता है, कि 'किसी वस्तु, सेवा, विचार, पद्धति अथवा सिद्धान्त का अन्योन्याश्रित होना तथा इसको विश्वव्यापी बनाना ही उस वस्तु, सेवा, विचार, पद्धति अथवा सिद्धान्त का वैश्वीकरण कहलाता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ वस्तु, सेवा, पूँजी एवं भौतिक सम्पदा का अप्रतिबन्धित या निर्बाध विनिमय ही वैश्वीकरण कहलाता है। वैश्वीकरण के अन्तर्गत वह सभी बातें आ जाती हैं जो विभिन्न देशों द्वारा अपनायी जाने वाली आर्थिक नीतियों जिनमें उत्पत्ति के साधनों श्रम, पूँजी, तकनीकी, कच्चे माल तथा विचारों के आदान प्रदान में किसी प्रकार की कोई कानूनी बाधा न हो, अर्थात् इन सबके स्वतंत्र आवागमन हेतु सम्पूर्ण विश्व एक इकाई हो।'

इस प्रकार एक देश का स्वयं को शेष दुनियाँ के साथ मुक्त भाव से जुटने का प्रयास है 'वैश्वीकरण'।

भारत में वैश्वीकरण का सांस्कृतिक परिदृश्य :–

एस.एल. दोषी[3] ने भारत में वैश्वीकरण के सांस्कृतिक परिदृश्य का बहुत सुन्दर शब्द–चित्र प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है :–

'हमारे देश में सांस्कृतिक वैश्वीकरण के खिलाफ आर्थिक वैश्वीकरण की तुलना में बड़ा हल्ला हो रहा है। संकट यह है कि यदि इसी रफ्तार से मीडिया ने विदेशी संस्कृति को यहाँ फैलाया तो हमारी पहचान समाप्त हो जायेगी। वस्तुतः यह संकट पहचान का है। पोप संगीत के सामने हमारे शास्त्रीय संगीत का क्या होगा? वेस्टर्न डान्स की तुलना में हमारे भरत नाट्यम और ओडिसी नृत्य जिसमें वर्षों की साधना होती है, कहाँ खड़े होगे? आज प्रेमचन्द और फणीश्वरनाथ रेणु को कौन पढ़ता है? हुआ यह कि संस्कृति वैश्वीकरण की दौड़ में हमारी कई विधाएँ अपनी पहचान खो चुकी हैं। छत्तीसगढ़ की पंडवानी, विन्ध्यप्रदेश का आल्हा, महाराष्ट्र का तमाशा, उत्तरप्रदेश और विहार की नौटंकी और पंजाब का गिद्दा समाप्ति के छोर पर हैं। ऐसा लगता है कि यदि सांस्कृतिक वैश्वीकरण इसी तरह अपना पैर फैलाता रहा तो हमारी सांस्कृतिक विरासत देखते ही देखते हमारे हाथों से किसी साबुन की तरह फिसल जायेगी और हम रीते हाथ रह जायेंगे।

संस्कृति ने हमारे एथनिक पहनावे पर भी हमला किया है। आज की स्त्रियों की नई पीढ़ी जमकर नाइट क्लब में जाती हैं, धूम्रपान और मद्यपान करती हैं, मिनी स्कर्ट पहिनती हैं और जिन्स को अपनी पसन्दगी पोशाक समझती हैं। यह सब ठीक है बुनियादी रुप से कोई भी सांस्कृतिक आईटम सबसे ऊँचा है, कभी नहीं कहा जा सकता। संस्कृति तो संस्कृति है। लेकिन संस्कृति सापेक्षिक भी होती है। मानवशास्त्री इसे सांस्कृतिक सापेक्षता कहते हैं। भारतीय सन्दर्भ में परेशानी यह है, कि हमारी एक विशिष्ट पहिचान है। यह पहिचान सभ्यता की पहचान है, इतिहास की पहिचान है। जब यह पहचान हमसे छूट जायेगी तो इस विश्व समुदाय में हमें अलग से कौन पहचानेगा। इस तरह से सांस्कृतिक वैश्वीकरण का बहुत बड़ा संकट पहचान का संकट है। और यह पहचान राष्ट्र की पहिचान है, एक जाति की पहचान है।'[4]

सांस्कृतिक संदर्भ में वैश्वीकरण का उल्लेख करते हुए रवि प्रकाश पाण्डेय ने लिखा है, कि— 'सांस्कृतिक संदर्भ में वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व में बढ़ी हुई सांस्कृतिक अन्तर्सम्बन्धता का द्योतक है। लोगों के उत्प्रवास, पर्यटन, वैश्विक अर्थव्यवस्था और राजनीतिक संस्थाओं के कारण दुनिया के विभिन्न भागों में सादृश्य जीवन पद्धति के रुप में उसे देखा जा सकता है। वैश्वीकरण क्षेत्रीय संस्कृति के लिये विकल्प उपलब्ध कराता है। मानव अधिकारों, जनतंत्र, बाजार अर्थब्यवस्था, उत्पादन के नये तरीकों, उपभोग हेतु नये उत्पादों तथा विश्राम की आदतों आदि के विचारों को क्षेत्रीय संस्कृति के नवीन दृष्टिकोण द्वारा उपस्थित किया जाता है। इससे आविर्भाव होता है नई संस्कृति की समझ, राष्ट्रीयता, दुनिया में 'स्व', एक विदेशी हेतु क्या है? एक नागरिक हेतु क्या है? कैसे लोगों की राजनीतिक भागीदारी हो? तथा अन्य सामाजिक जीवन के विविध पक्षों आदि का।"

जबकि एस.एल. दोषी तथा पी.सी. जैन[5] ने संयुक्त रूप से वैश्वीकरण के सांस्कृतिक पहलू का विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से किया है :–

'यदि आर्थिक पहलुओं को छोड़ दें तो वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जो सांस्कृतिक फैलाव की चर्चा करता है। यह एक तरह का सांस्कृतिक पेरामिड या एजेण्डा है। वैश्वीकरण के अन्तर्गत जहाँ दुनियाँ भर की विभिन्नताओं को पहचाना जाता है वहीं दुनियाँ की सजातीयता को भी समझा जाता है।____जब वैश्वीकरण

सांस्कृतिक पहलुओं का विश्लेषण करता है तब आह करता है कि संसार के कुछ ऐसे तत्व हैं, जिनमें आदान–प्रदान होना चाहिये। इस दृष्टि आग्रह से वैश्वीकरण एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। यह सामाजिक परिवर्तन को बताती है और सम्पूर्ण विश्व को अपने में बाँध लेना चाहती है।

भारत जैसे देश में जहाँ वैश्वीकरण की प्रक्रियाएँ हमें देखने को मिलती है, राष्ट्रीय और स्थानीय संस्कृति पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के कारण ऐसा लगता है कि कहीं विदेशी संस्कृति का प्रभाव हमारी स्थानीय संस्कृति की पहचान को न समाप्त कर दे।

लेकिन नदीम हसनैन[6] ने भूमंडलीकरण के भारत पर सांस्कृतिक प्रभाव का एक तस्वीर इस प्रकार से प्रस्तुत किया है :–

"भूमंडलीकरण लोगों को और अधिक लालची व भौतिकवादी बना रहा है और इसी के साथ दहेज की माँग भी तेजी के साथ बढ़ रही है जो गरीब अभिभावकों को पहले से अधिक आर्थिक समस्याओं व अपमानजनक परिस्थितियों में ढकेल रहा है। बढ़ते हुए भूमंडलीकरण ने तथाकथित 'सौन्दर्य प्रतियोगिताओं' को जुनूनी हद तक बढ़ावा दिया है।''

भारत में वैश्वीकरण के सांस्कृतिक प्रभावों का लेखा-जोखा अरविन्द[7] (2002) ने बहुत ही खूबसूरती से इस प्रकार किया है :–

"इस 'पागलपन' का लाभ तो वे निगम व संस्थायें ले रही हैं, जो ऐसे कार्यक्रमों के द्वारा अपने उत्पादों का विज्ञापन करती हैं, लेकिन मानसिक स्तर पर इसका दुष्प्रभाव प्रमुख तौर पर शहरी मध्यम वर्ग या निम्न मध्यम वर्ग की लड़कियों पर पड़ता है। 'सौन्दर्य गृहों' (Beauty Parlours). फेशियल क्रीम व दूसरे सौन्दर्य प्रसाधन जो 'गोरा' करने का दावा करते हैं, उस विचार को आगे बढ़ाने में भूमिका निभाते हैं जिन्हें 'निहित स्वार्थ' फैलाना चाहते हैं। बाजारी अर्थव्यवस्था के तर्क से देखें तो देह व्यापार भी एक श्जायजश प्रणाली बन जाती है– 'सेवा क्षेत्र' (Service Sector) का एक और उद्योग। भूमंडलीकरण के इस दौर में खाते–पीते या समृद्ध परिवारों की अनेकों लड़कियाँ ऐसे ही 'ब्यूटी पार्लर', 'मसाज पार्लर' व 'आओ दोस्ती करें' (Make a friend) जैसे उद्योगों के माध्यम से वेश्यावृत्ति या 'कालगर्ल' के धन्धे में जाने से भी नहीं हिचकतीं। बाजारी अर्थव्यवस्था से प्रत्येक वस्तु 'बिकाऊ' हो सकती है।

वास्तव में अरविन्द ने वैश्वीकरण की वास्तविक किन्तु विभत्स व नग्न चित्र बखूबी प्रस्तुत किया है।

रवि प्रकाश पाण्डेय[8] ने वैश्वीकरण के संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्नलिखित प्रकार से अभिव्यक्त किया है :– "आज सांस्कृतिक आन्तरिक सम्बन्धता को बढ़ावा मिल रहा है। इसका मुख्य कारण है जनसंचार, उत्प्रवास, पर्यटन, विदेशी कम्पनियाँ, आदि। वैश्वीकरण के कारण विकसित और विकासशील देशों के बड़े नगरों की ओर उत्प्रवास तेजी से बढ़ रहा है। इससे लोगों के समक्ष यह समस्या खड़ी हो रही है कि वे अपने ही मूल निवास स्थान पर अपनी परम्परागत तथा लोकसंस्कृति, राष्ट्रीयता, नागरिकता, तथा सामाजिक जीवन के अन्य पक्षों के साथ समायोजन करके किस प्रकार से जीवन व्यतीत करें।

कुछ समाज वैज्ञानिक यह मानते हैं कि वैश्वीकरण के फलस्वरुप बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा मिल रहा है। खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा सहित जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की सामग्री तथा एक देश के उत्पादन की दूसरे देश में आज खपत हो रही है। इसके माध्यम से भी एक देश की संस्कृति दूसरे देश में पहुँच

रही है। आकाशीय मार्ग से विदेशी संस्कृति हमारे घरों में प्रवेश कर रही है। विभिन्न टी.वी. चैनल्स विदेशी संस्कृति के वाहक हैं। कुछ लोग इसे सांस्कृतिक आक्रमण की संज्ञा भी प्रदान करते हैं।'

पुनः एस.एल. दोषी[9] ने भारतीय संदर्भ में सांस्कृतिक वैश्वीकरण के प्रभाव को विशद रूप में वर्णित किया है :–

(01) वैश्वीय व्यापार और बाजार का सांस्कृतिक प्रभाव : वैश्वीकरण ने व्यापार और बाजार को हमारे यहाँ अत्यधिक प्रभावित किया है। इसके प्रभाव हमें सांस्कृतिक क्षेत्र में देखने को मिलते हैं। पहले भी भारत का दूसरे देशों के साथ व्यापार था। मध्य और पूर्वी एशिया हमारे परम्परागत बाजार थे। पर तब इस व्यापार और बाजार का प्रभाव हमारी संस्कृति पर नाम मात्र को था। आज स्थिति बदल गई है। बिदेशी बाजार और व्यापार ने 1990 के बाद, भारतीय जीवन के कई सांस्कृतिक पहलुओं को झकझोर दिया है। इसने हमारी जीवन–पद्धति को बदल दिया है, उपभोग के प्रतिमान में उलट–फेर दिया है, सांस्कृतिक उत्पादन को बाजार के माध्यम से बदल दिया है। धार्मिक व्यवहार में परिवर्तन कर दिया है। वाहनों में वैश्वीय व्यापार और बाजार ने नई उप संस्कृतियाँ पैदा कर दी हैं। अब एक पोप्यूलर कल्चर (Popular Culture) का विकास हो गया है।

(02) उपभोग समाज (Consumer Society) : अब भारतीय समाज एक उपभोग समाज का रुप ले रहा है। देश के कई गाँवों में बिजली पहुँच गई है। मिट्टी के तेल का उपभोग व्यापक हो गया है, सड़कों का विशाल जाल फैल गया है, संचार साधन विकसित हो गये हैं और खान–पान तथा रहन–सहन में सजातीयता आ गई है। पुरुषों की पोषाक पेंट–शर्ट हो गई है, स्त्रियाँ सलवार कमीज पहनने लगी हैं। चाय, कॉफी, अंडा, मांस, मछली आदि सारे देश के लोगों का स्वाद बन गये हैं। देश में जो हरित क्रांति आई, उसने गाँव के लोगों को भी परिवर्तन की इस श्रृंखला में बाँध दिया है।

(03) मीडिया समाज (Media Society) : ....उपनिवेश काल में समाचार पत्रों के प्रकाशन पर कई पाबन्दियाँ थीं। वैश्वीकरण ने यह सब पिछले दस वर्षों में क्रांतिकारी रूप से बदल दिया। यह मौखिक समाज आज एक मीडिया समाज बन गया है। प्रेस की आजादी हमारे स्वतंत्रता का चौथा स्तम्भ बन गया है। ....इन्फोरमेशन ब्यूरो है, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (PTI) और यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (UNI) हैं देश को सम्पूर्ण विश्व के साथ जोड़ते हैं।

समाचार पत्रों के अतिरिक्त मुख्य दूर–संचार सुविधाएँ भी हैं, जिनमें रेडियो, टेलिविजन, फिल्म, टेलिफोन, मोबाइल फोन, ई–मेल, फैक्स, इन्टरनेट आदि सम्मिलित हैं। ....वैश्वीकरण से प्रभावित दूर–संचार का यह जाल आज बहुत विस्तृत है। विदेश संचार निगम लिमिटेड (VSNL) अन्तर्राष्ट्रीय संचार का बहुत बड़ा साधन है। .... इन सब दूरसंचार सुविधाओं के आर्थिक विकास, व्यापार तथा बैंकिंग व्यवहार में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है। इनके कारण स्थानीय समुदाय भी मुख्य धारा से जुड गये हैं। एक दूसरे प्रकार का प्रभाव स्थानीय संस्कृतियों में देखने को मिलता है। अब उनमें सुदृढ़ता आ गई है और अपनी पहचान बनाने में अधिक जागरुक हो गये हैं।

(04) वैश्वीकरण की अन्य प्रक्रियाएँ (Other Proccesses of Globalization) : वैश्वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के कारण स्थानान्तरण, पर्यटन और यात्रा में वृद्धि हुई है। ....दूसरे देशों में जो प्रवासी भारतीय (Dispora) हैं वे अपनी सांस्कृतिक पहिचान को बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

(05) एकीकरण और पहिचान की समस्या (Problem of Integration and Identity) : वैश्वीकरण का सांस्कृतिक प्रभाव होता है। वास्तव में वैश्वीकरण स्थानीयता के साथ जुड़ा होता है। जब इस प्रक्रिया द्वारा आधुनिकीकरण और उत्तर–आधुनिकीकरण की अन्तःक्रिया स्थानीय संस्कृति के साथ होती है तब पहचान की समस्या सामने आती है। ....यह सही है कि बाजार अर्थव्यवस्था, मीडिया की शक्ति तथा सूचना तकनीकी तंत्र ने स्थानीय संस्कृति के सामने पहचान की बहुत बड़ी समस्या पैदा कर दी है। सजातीयता की यह भीमकाय प्रक्रिया यदि बराबर चलती रही तो स्थानीय तथा राष्ट्रीय पहचान का क्या भविष्य होगा। वैश्वीकरण केवल व्यापार, बाजार और मीडिया ही नही है। इसके अन्तर्गत प्रजातंत्र और पूँजीवाद भी है। जब वे सब प्रक्रियाएँ जमीनी स्तर पर पहुंचती हैं, तो लोगों को लगता है कि इन सब आधुनिक संस्थाओं के साथ उसका मोह भंग (Disenchantment) हो गया है। यही कारण है कि जब सांस्कृतिक आधुनिकीकरण वैश्वीकरण के माध्यम से स्थानीय लोगों की संस्कृति पर आघात करता है, उसे चोट पहुँचाता है, उसकी भाषा, धर्म, जीवन–पद्धति और सांस्कृतिक मूल्यों पर हमला करता है तो लोग तिलमिला उठते हैं। इस देश में हमेशा ऐसा होता रहा है कि विविधता ने इसे बांधे रखा है। इसी वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने स्थानीयता को तोडने की अपेक्षा सुदृढ़ किया है। भारत के लोगों की सबसे महत्वपूर्ण खोज यह है कि पिछले एक दशक में क्षेत्रीयता की भावना बहुत अधिक सुदृढ़ हुई है। इस निष्कर्ष पर के.एस. सिंह और एम. एन. श्रीनिवास दोनो सहमत हैं। लगता है जितना अधिक सांस्कृतिक वैश्वीकरण व्यापक होगा, उतनी ही अधिक क्षेत्रीयता की भावना मजबूत होगी। ऐसी अवस्था में हमारे देश में शायद स्थानीय संस्कृति को वैश्वीकरण से कोई खतरा नहीं।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण का समग्र मूल्यांकन या निष्कर्ष एवं सुझाव :–

भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण का आशय उदारीकरण, निजीकरण, व्यापार, निवेश, आयात और निर्यात से लिया जाता है। परन्तु दुखद बात यह है कि, भारत में वैश्वीकरण और उदारीकरण नें स्थानीय धंधों को, स्वदेशी उत्पादन को, बड़ी ठेस पहुँचायी है। हमारे यहाँ उत्तर आधुनिक समाज का सूचना–समाज अभीं ठीक ढंग से विकसित नहीं हुआ है। तकनीकी तंत्र का ज्ञान भी अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। हम दुनियाँ के विकसित देशों के बाजार में ठीक से प्रतियोगिता नहीं कर सकते। हमारा माल इस बाजार में टक्कर नहीं ले सकता। परिणामस्वरुप हमारे ही स्थानीय बाजार में हम अपना उत्पाद नहीं बेच पाते। हमारे स्थानीय कारखाने एक के बाद एक बन्द होने लगे हैं। मन्दी जानलेवा हो गयी है। बेरोजगारी आसमान को छू रही है और कृषक आत्म–हत्याएँ करने पर मजबूर हैं। हमारी संस्कृति खतरे में है, ऐसे में क्या वैश्वीकरण हमें राहत दे सकता है? ऐसा प्रतीत होता है कि यह केवल हमें आहत ही करेगा! राहत नहीं देगा। हमारी संस्कृति, हमारी स्वतंत्रता, हमारी अस्मिता और हमारे गौरवपूर्ण आदर्श को यह कहीं धूल–धुसरित न कर दे। समय रहते ही हमें सजग और सचेत हो जाना चाहिए।

वैश्वीकरण एवं संस्कृति को यदि हम भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो हाल में ही घटी किसानो की मौत की घटनाओं से उठते सवालों के जबाब भी हम वैश्वीकरण के प्रभावों में ही खोज सकते हैं। अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से किसानों की रुचि खाद्यानों के उत्पादन के बजाय नकदी फसलों के उत्पादन में बढ़ रही है। अधिकांश नकदी फसलों में लागत व सिंचाई की आवश्यकता कुछ अधिक पड़ती है तथा बिजली की कमी, उसकी बढ़ती हुई दरों व अपर्याप्त सिंचाई सुविधावों के कारण अक्सर उनकी फसलें चौपट हो जाती हैं तथा

उनकी समस्याएँ असहनीय हो जाती हैं। ये घटनाएँ स्पष्ट करती हैं कि विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष व अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को आज विकास योजनाएँ तैयार करते समय अधिक अहमियत दी जा रही है, तथा स्थानीय स्तर पर पंचायत जैसी संस्थाओं को दर–किनार कर जनता के एक बड़े वर्ग को विश्वास में नहीं लिया जा रहा है। इस प्रकार वैश्वीकरण की आड़ में, जो हमारे अर्थतंत्र की बुनियाद में हैं, हम उनका ही जीवन छीन रहे हैं। वैश्वीकरण समृद्ध देशों के ही पक्ष में है। अल्पविकसित अथवा विकासशील राष्ट्रों की चिन्ता महज एक छलावा प्रतीत होती है।

अब इसमें किसी को भी संदेह नहीं रह गया है कि वैश्वीकरण की नीति से जहाँ विदेशी प्रौद्योगिकी, विदेशी बाजारों तथा विदेशी पूँजी के लिए विकासशील देशों की पहुँच बढ़ी है और उसी के चलते उन्होंने अपने द्वार वैश्वीकरण की वाहक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोल दिये हैं, लेकिन इसी परिप्रेक्ष्य में यह भी प्रमाणित हो चुका है, कि विकासशील देशों में व्याप्त निर्धनता, कुपोषण, अशिक्षा तथा बेरोजगारी निवारण पर वैश्वीकरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा है। ऐसे में राज्य की भूमिका नये सिरे से अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है। वैश्वीकरण को अपनाते समय राज्य को यह सुनिश्चित करना है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश के शोषण का प्रतीक न बन जायें।

वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर विकासशील देशों या अल्पविकसित देशों को बाह्य धक्कों के प्रति कमजोर या निरीह बना दिया है वहीं सम्भावनाओं के द्वार खोलकर प्रगति का पथ प्रशस्त भी किया है। वैश्वीकरण की उपलब्धियाँ उत्साहवर्धक रही हैं। विदेशी मुद्रा का भंडार अभूतपूर्व स्तर पर पहुँच गया है। निर्यात में वृद्धि हुई है, यद्यपि हाल के वर्षों में निर्यात और कृषि की विकास दरों में गतिरोध उत्पन्न हो गया और विदेशी व्यापार का घाटा बढ़ने लगा, अब स्थिति सुधरने लगी है। विदेशी ऋण पर निर्भरता में कमी हुई है और मुद्रा स्फीति की दर भी नियंत्रित हुई है। विदेशी पूँजी निवेश बढ़ा है। यद्यपि ब्राजील और चीन के मुकाबले यह अत्यल्प है। प्रौद्योगिकी के स्तर का उन्नयन हुआ है। और यह आशंका निराधार साबित हुई है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभुत्व स्थापित कर लेंगी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वैश्वीकरण के फलस्वरुप सामान्य लोगों को आहत होना पड़ा है या इसके परिणामस्वरुप हानि या नुकसान उठाना पड़ा है। यह विकासशील देशों के लिए एक अभिनव प्रयोग है और आगामी कुछ वर्षों तक इसे आजमाने के बाद ही निर्णायक रूप से यह कहा जा सकेगा कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया को जारी रखा जाए या छोड़ दिया जाय।

अन्त में सुझाव के तौर पर यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ नफा–नुकसान का आंकलन करने के बाद ही पूँजी का निवेश करती हैं, उसी प्रकार भारत सरकार को भी अपने नफा–नुकसान का आंकलन करने के बाद ही विदेशी पूँजी निवेश को प्रवेश की अनुमति देनी चाहिए, और इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि स्वदेशी उद्योगों और विशेषकर लघु एवं कुटीर उद्योगों पर विदेशी पूँजी निवेश का प्रतिकूल और घातक प्रभाव नहीं पड़े। कुछ क्षेत्रों को स्वदेशी उद्योगों के लिए सुरक्षित कर देना चाहिए।

संदर्भ-सूची :-

1. दोषी, एस. एल. : आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव– समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रावत पब्लिकेशन्स,

जयपुर, 2002 पृ.— 323 एवं 324.

2. भादुड़ी, अमित, नैय्यर, दीपक : द इन्टेलीजेण्ट पर्ससन्स गाईड टू लिबरलरइजेशन्स, जयपुर, 2000 पृ.— 30.
3. दोषी, एस. एल. : आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव—समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002 पृ. — 358 एवं 359.
4. पाण्डेय, प्रकाश रवि : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 2004 पृ. — 418.
5. दोषी, एस. एल. एवं जैन, पी.सी. : भारतीय समाज, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, पृ.— 285.
6. हसनैन नदीम : समकालीन भारतीय समाज, एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2004 पृ.— 573.
7. अरविन्द : ग्लोब्लाइजेशन : ऐन अटैक आन इण्डियाज सोवरनिटी, न्यू देलही, न्यू विस्टास पब्लिकेशन : 2002.
8. पाण्डेय, प्रकाश रवि : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 2004 पृ. — 429.
9. दोषी, एस. एल. : आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव—समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002 पृ. — 360—362.

पता—
2nd-RN-03, UPRNN कॉलोनी, Near WIE Gate/RTC Company, अनपरा, सोनभद्र, पिन—231225
मोबाइल—9415689907, ईमेल— dr.js.pandey1967@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 76–81

मल्हारराव होलकर और राजपूतों के मध्य संबंध : एक ऐतिहासिक अध्ययन

महेंद्र, शोधार्थी
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस श्री अटल बिहारी वाजपेयी शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर।

शोध सारांश :

अठारहवीं शताब्दी में भारत में राजनीतिक परिवर्तन और सत्ता–संघर्षों का दौर चल रहा था। मुगल साम्राज्य की शक्ति लगातार कमजोर होती जा रही थी, जबकि मराठा, राजपूत, जाट और अन्य क्षेत्रीय शक्तियाँ अपने प्रभाव का विस्तार कर रही थीं। इसी समय मल्हारराव होलकर मराठा शक्ति के एक प्रमुख सेनानायक और कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में उभरकर सामने आए। उत्तर भारत, विशेषकर राजपूताना की राजनीति में उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही।

प्रस्तुत शोध–पत्र में मेवाड़, जयपुर और जोधपुर के राजपूत नरेशों के साथ मल्हारराव होलकर के संबंधों का ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है। सामान्यतः मराठा–राजपूत संबंधों को केवल परस्पर संघर्ष, चौथ–वसूली और सैन्य हस्तक्षेप के संदर्भ में देखा जाता है, किन्तु यह अध्ययन दर्शाता है कि इन संबंधों का स्वरूप इससे कहीं अधिक व्यापक और पेचीदा था। मल्हारराव होलकर और राजपूत राज्यों के बीच समय–समय पर संघर्ष, संधियाँ, राजनीतिक समझौते तथा पारस्परिक सहयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जयपुर के उत्तराधिकार संबंधी विवादों, मेवाड़ की राजनीतिक परिस्थितियों तथा जोधपुर की क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं के संदर्भ में मल्हारराव की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही।

यह शोध विभिन्न प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के आधार पर तैयार किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मल्हारराव होलकर केवल एक सफल सैनिक नेता ही नहीं थे, बल्कि वे परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने वाले व्यवहारिक राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने राजपूत राज्यों के साथ संबंधों को सैन्य शक्ति के साथ–साथ कूटनीति और सहयोग के माध्यम से भी विकसित किया। इन संबंधों ने न केवल मराठा शक्ति के विस्तार में योगदान दिया, बल्कि राजपूताना की राजनीति और उत्तर भारत के व्यापक सत्ता–संतुलन को भी प्रभावित किया।

अंततः यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मल्हारराव होलकर और राजपूत नरेशों के संबंधों को केवल विरोध या संघर्ष की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। इनके संबंधों में राजनीतिक यथार्थवाद, सामरिक आवश्यकता और पारस्परिक हितों का महत्वपूर्ण स्थान था। इस प्रकार यह अध्ययन अठारहवीं शताब्दी के मराठा–राजपूत संबंधों को समझने के लिए एक नया और अधिक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : मल्हारराव होलकर, राजपूताना, मेवाड़, जयपुर, जोधपुर, मराठा–राजपूत संबंध, अठारहवीं शताब्दी, कूटनीति, क्षेत्रीय राजनीति, चौथ।

महाराज सूबेदार मल्हारराव होलकर का संक्षिप्त परिचय –

होलकर वंश के संस्थापक मल्हारराव होल्कर का जन्म 1693 ई. के लगभग हुआ था। उनके पिता का नाम कंधा था, जो हुल गांव के रहने वाले एवं गाडरी कौम और धनगर गोत्र से ताल्लुक रखते थे।[1]

मल्हार राव जब मात्र 3 वर्ष की आयु का था तभी मल्हारराव के पिता का देहावसान हो गया था, इसलिए उनका पालन पोषण उनके मामा नारायण राव के यहां हुआ,जिसको उदयपुर के महाराजा संग्राम सिंह द्वितीय की ओर से "बूढ़ा" की जागीर मिली थी।[2]

मल्हारराव बाल्यावस्था में रहते हुए अपने मामा के यहां उनकी भेड़–बकरियां चराया करते थे। युवा होने पर मल्हार राव की सैनिक प्रतिभा छूपी नहीं रह सकी। उनके मामा नारायण राव ने उन्हें 25 सवारों की टोली का अफसर बना दिया। अपनी वीरता और कुशलता से मल्हार राव ने अश्वारोहियों के मध्य अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था।[3]

मल्हार राव में निहित वीरता प्रतिभा और शौर्य से पेशवा बाजीराव अत्यधिक प्रभावित हुआ और मल्हार राव को अपनी सेवा में ले लिया निजाम के साथ हुए युद्ध और कोंकण की लड़ाईयों में मल्हार राव का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान था। 1739 ईस्वी में पुर्तगालियों के विरुद्ध लड़े गए युद्ध में भी उसने मराठा दल का सफल नेतृत्व किया था। उत्तर भारत विशेषकर बुंदेलखंड में उसने मराठा शक्ति का बीजारोपण किया था। पानीपत के तृतीय युद्ध के पश्चात मराठा शक्ति का अवसान हो चला था। अवध के नवाब शुजाउद्दौला और उसके वजीर हिम्मत बहादुर गोसाई ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी, किंतु 1764–65 ईस्वी में मल्हारराव ने उन्हें खदेड़कर बुंदेलखंड में मराठा राजसत्ता की पुनर्स्थापना की थी। मल्हार राव होल्कर ने अवध के मुल्क से लेकर सिंधु नदी तक और राजपूताना के पहाड़ों से लगाकर कुमायूं के पहाड़ो तक वे निरंतर एक जुझारू योद्धा की भांति जूझते रहे और अपने विजय अभियान के झंडे गाड़ते रहे।

1734 ईस्वी में मराठा पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा प्रदत्त इकरारनामा के तहत महाराज सूबेदार मल्हार राव होलकर ने मालवा प्रदेश में होलकर राज्य की आधारशिला रखी।

मल्हारराव होलकर तथा राजपूतों के मध्य संबंध एक रोचक और गंभीर विषय है। एक तरफ तो राजपूताना के राज्यों से मराठा सरदारों के लूटपाट एवं चौथ वसूली और आपसी संघर्ष से भरे संबंध रहे वहीं दूसरी ओर राजपूत शासकों से पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध भी रहे। 1734 ईस्वी में राजपूतों ने मराठों को राजस्थान से निष्कासन के लिए हुरडा सम्मेलन के रूप में लामबंद हुए, लेकिन यह असफल रहा।

मल्हारराव होलकर और राजपूतों के मध्य संबंध

कोटा राज्य से संबंध :

कोटा के शासक दुर्जनशाल ने पेशवा बाजीराव प्रथम के विरुद्ध मुगल सेनापति खान ए दौरा की मदद की थी, जिसके कारण पेशवा के आदेश से सूबेदार मल्हारराव होलकर ने कोटा राज्य पर आक्रमण कर दिया। कोटा का शासक दुर्जनशाल जान बचाकर मांगरोल भाग गया। बालाजी यशवंत गुलगुले नामक ब्राह्मण की सहायता से उसने संधिवार्ता की। संधि के अनुसार दुर्जनशाल ने 10 लाख रुपए देना स्वीकार किया, जिसमें 8

लाख रुपए तत्काल और 2 लाख के लिए दस्तावेज लिख दिए गये। यशवंत राव गुलगुले को पेशवा ने कोटा राज्य में अपने वकील के रूप में नियुक्त कर दिया, और कोटा के नरेश मराठों को चौथ देने लगे।[4]

दुर्जनशाल की मृत्यु के बाद मराठों की अनुमति के बिना जब महाराव अजीत सिंह को कोटा राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ किया तो मराठे नाराज हो गए और सिंधिया, होलकर और पवार की संयुक्त शक्ति ने हमला कर दिया। लेकिन दुर्जनशाल की विधवा रानी ने रानोजी शिंदे को राखी भेजकर एवं अजीत सिंह को गोद लेकर राजकुल को स्थिर रखने की अनुमति मांगी। रानोजी शिंदे ने उनकी प्रार्थना का मान रखा, लेकिन मराठे धन का लोभ त्यागने को राजी नहीं थे, अतः उन्होंने अजीत सिंह को वारिस मान्य करते हुए 40 लाख रुपए का नजराना प्राप्त किया।[5]

1761 ईस्वी में जयपुर की सेना द्वारा कोटा राज्य पर आक्रमण किया गया, इस दौरान मल्हारराव होलकर ने कोटा राज्य के समर्थन में जयपुर की सेना के शिविर में लूटपाट मचा दी, फलस्वरूप जयपुर की सेना भटवाड़े के इस युद्ध में पराजित हुई। इस युद्ध से पहले हुए समझौते के अनुसार मल्हारराव होलकर को 4 लाख रुपए की राशि प्राप्त हुई।[6]

बूंदी राज्य से संबंध :

बूंदी राज्य में सिंहासन को लेकर प्रताप सिंह और दलेल सिंह के मध्य आपसी संघर्ष चल रहा था, इसी दौरान प्रताप सिंह, बुध सिंह हाड़ा की पत्नी कछवाही रानी से मिला और उसके परामर्श से मराठों को गद्दी की समस्या के निराकरण हेतु आमंत्रित किया, बदले में उन्हें 6 लाख रुपए देने का वचन दिया। 22 अप्रैल 1743 ईस्वी को मल्हारराव होलकर, रानोजी सिंधिया, आनंदराव पवार और रामचंद्र बाबा के सेनापतित्व में बूंदी पर आक्रमण हुआ। इस युद्ध में मराठों ने बूंदी के किले को जीत लिया और बुद्ध सिंह को पुनः सिंहासन पर बैठाया।[7]

मराठों की विजय की खबर सुनकर बुद्ध सिंह हाडा की पत्नी कछवाही रानी बूंदी जा पहुंची और उसने विजयी मराठों का खुले दिल से स्वागत–सत्कार किया। सूबेदार मल्हार राव होलकर को उसने राखी बांधकर अपना धर्म भाई बनाया और सूबेदार की पत्नी गौतमाबाई को अपनी भाभी के समान सम्मान किया।[8]

मारवाड़ राज्य से संबंध :

मारवाड़ के शासक अभय सिंह द्वारा 1736 ईस्वी की चौथ वसूली की संधि के प्रति उदासीनता दिखाने के कारण पेशवा ने मल्हारराव होलकर तथा रानोजी सिंधिया को अभय सिंह के विरुद्ध चौथ वसूली हेतु भेजा।[8]

अभय सिंह ने मराठों से मुकाबला करने के लिए विजयराव भंडारी को भेजा, जिसने मराठों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और मुआवजा देने के लिए तैयार हो गया। मराठों ने नागौर के शासक बखत सिंह को हराकर चौथ देने के लिए विवश किया।[10]

अभय सिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र राम सिंह 13 जुलाई 1749 ईस्वी को जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। इस नये अनुभवहीन, अदूरदर्शी शासक की कार्यप्रणाली से सामंत नाराज थे।[11]

इसके राज्यारोहण के समय राजस्थान के लगभग समस्त शासक सम्मान प्रकट करने आये, किंतु उसका सगा चाचा बखत सिंह नहीं आया।

राज्यारोहण के इस अवसर पर सूबेदार मल्हारराव होलकर ने अभय सिंह के समय से विद्यमान पारिवारिक सम्बन्धों के चलते इस अवसर पर रामसिंह के लिए 'टीका' भेजा। जिसका उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में

इस प्रकार दिया गया है—

"दिखणी मलार रां सुं टीको आयो : हाथी 1, घोड़ा 4, सिरपाव तोरा साथे असवार 200 दोय सो आया"।[12]

रामसिंह से नाराज सामंत बखत सिंह के पक्ष में चले गए, तत्पश्चात चाचा और भतीजे के मध्य युद्ध हुआ जिसमें रामसिंह को पलायन करना पड़ा।[13]

राम सिंह ने बखत सिंह से बदला लेने के लिए सूबेदार मल्हारराव होलकर की सहायता मांगी, लेकिन मल्हारराव होलकर तटस्थ रहे। आगे चलकर बखत सिंह की असमय मृत्यु के कारण मारवाड़ की उत्तराधिकार की समस्या भी अनिर्णीत रह गई।[14]

डूंगरपुर राज्य से संबंध :

डूंगरपुर राज्य का पुराना नाम 'बागड़' है, इसका अभिप्राय जंगल अथवा कम आबादी वाले प्रदेश से होता है।[15]

1746 ईस्वी में मल्हारराव होलकर ने डूंगरपुर अभियान किया था, उन्होंने डूंगरपुर पहुंचकर सिंधिया के कोटा स्थित वकील यशवंत गुलगुले और कोटा के कामविशदार हरिवल्लाल को पत्र लिखकर सूचित किया था कि — "मैं पावागढ़ का काम निपटाकर डुंगरपुर आ गया हूं और उदयपुर होकर हाड़ौती जाने का मेरा विचार है।

एक और अन्य पत्र उसने अपने पेशवा बालाजी बाजीराव के लिए भी लिखा— 'मैं डूंगरपुर राज्य को गया, जहां एक अरसे से कोई मराठा सेना नहीं गई थी, इसलिए मुझको वहां जाना आवश्यक था।'[16]

जयपुर राज्य से संबंध :

23 नवंबर 1733 ईस्वी में जयपुर के सवाई राजा जयसिंह की मृत्यु हो गई। जय सिंह की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्रों ईश्वर सिंह और माधव सिंह के मध्य उत्तराधिकार संघर्ष आरंभ हो गया। ईश्वर सिंह ज्येष्ठ पुत्र था और गद्दी पर पदस्थ था। सवाई जयसिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी चन्द्र कंवर से विवाह किया था, और उसने यह वचन दिया था, कि मेवाड़ी रानी चंद्र कंवर का पुत्र ही जयपुर के सिंहासन पर बैठेगा। माधव सिंह इसी मेवाड़ी रानी का पुत्र था। अतः जयसिंह का वचन ही ईश्वर सिंह और माधव सिंह के मध्य संघर्ष का कारण बना।[17] इसके अतिरिक्त ईश्वर सिंह का व्यवहार अपने सामंतों के साथ संतोषजनक नहीं था। अतः विरोधी सामंत ईश्वर सिंह को हटाकर माधव सिंह को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। मेवाड़ के महाराणा भी माधव सिंह के ही पक्ष में थे। अतः ऐसी स्थिति में जय सिंह के पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार संघर्ष अनिवार्य हो गया जयपुर के इस उत्तराधिकार संघर्ष के कारण एक बार पुनः राजस्थान मराठों के लिए आकर्षण का केंद्र बिंदु बन गया। ऐसे कठिन समय में ईश्वर सिंह ने जयप्पा सिंधिया को एक मोटी रकम देकर सिंधिया की मदद प्राप्त कर ली। 1747 ईस्वी में ईश्वर सिंह ने बनास नदी के तट पर कोटा—बूंदी और मेवाड़ की संयुक्त सेना को राजमहल के युद्ध में पराजित कर दिया।[18]

इस पराजय से उपजी आत्मग्लानि के कारण महाराणा जगत सिंह ने मल्हार राव होलकर से सहायता की याचना की।[19]

माधव सिंह ने भी होलकर को चार लाख रुपए देने का वचन दिया। अगस्त 1748 ईस्वी में मल्हारराव होल्कर ने ईश्वर सिंह पर आक्रमण कर दिया और बंगरू के युद्ध में ईश्वर सिंह की बुरी तरह पराजय हुई।[20]

होल्कर ने माधव सिंह को जयपुर के सिंहासन पर आरूढ़ करवाया। राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के

बदले में जयपुर के नवनियुक्त शासक माधव सिंह ने चार लाख रूपयों के एवज में मल्हार राव होलकर को जयपुर राज्य के दो महत्वपूर्ण परगना 'रामपुर और भानपुरा' प्रदान कर दिए।[21]

मेवाड़ राज्य से संबंध :

मेवाड़ के राणा राज सिंह द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् 1761–62 ईस्वी में अरिसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। अरिसिंह क्रोधी और अधैर्य स्वभाव का व्यक्ति था, इसके शासक बनते ही सरदार इसके विरोध में हो गए। इसी बीच गद्दी का एक और दावेदार उभरकर सामने आया, जिसका नाम रतन सिंह था। मेवाड़ के सामंतों में गृह कलह बढ़ने लगा जिसको हवा देने का काम जोधपुर के शासक विजय सिंह ने किया।[22]

विद्रोही सरदारों के दमन हेतु अरिसिंह ने मल्हारराव होलकर से सहायता मांगी, परिणामस्वरूप सूबेदार मल्हारराव होलकर ने सभी विद्रोही सरदारों का दमन कर दिया और राज्य में शांति और सुव्यवस्था स्थापित की। संधि के अनुसार मेवाड़ से चौथ के 51 लाख रुपए वसूल किए। इतना ही नहीं उसने इस उपकार के बदले मेवाड़ के बहुत से इलाकों पर कब्जा कर लिया।[23]

अठारहवीं शताब्दी का भारत राजनीतिक अस्थिरता, सत्ता–संघर्ष और क्षेत्रीय शक्तियों के उदय का काल था। इस युग में मराठा शक्ति के विस्तार में महाराज सूबेदार मल्हारराव होलकर की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजपूताना के विभिन्न राज्यों 'कोटा, बूंदी, मारवाड़, डूंगरपुर, जयपुर तथा मेवाड़' के साथ मल्हारराव होलकर के संबंध केवल युद्ध, चौथ–वसूली और सैन्य हस्तक्षेप तक सीमित नहीं थे, बल्कि उनमें राजनीतिक सहयोग, कूटनीतिक समझौते, पारिवारिक निकटता तथा सामरिक हितों का भी महत्वपूर्ण स्थान था।

कोटा और बूंदी के प्रसंगों से ज्ञात होता है कि मराठा शक्ति का उपयोग केवल आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए ही नहीं किया गया, बल्कि अनेक अवसरों पर स्थानीय राजनीतिक विवादों के समाधान तथा शासकों के संरक्षण के लिए भी किया गया। बूंदी की कछवाही रानी द्वारा मल्हारराव होलकर को राखी बांधना इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन राजनीति में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंध भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इसी प्रकार मारवाड़ के साथ उनके संबंधों में राजनीतिक व्यवहारिकता और पारिवारिक सौहार्द दोनों दिखाई देते हैं।

जयपुर के उत्तराधिकार संघर्ष में मल्हारराव होलकर की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही। उन्होंने परिस्थितियों का सूक्ष्म मूल्यांकन करते हुए माधव सिंह का समर्थन किया और उसे जयपुर के सिंहासन पर स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इससे स्पष्ट होता है कि वे केवल एक सैनिक सेनानायक नहीं थे, बल्कि दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी थे, जो बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अपने निर्णय लेने में सक्षम थे। मेवाड़ के आंतरिक संघर्षों में हस्तक्षेप कर उन्होंने वहाँ शांति एवं व्यवस्था स्थापित करने में सहायता की, यद्यपि इसके बदले उन्होंने आर्थिक और क्षेत्रीय लाभ भी प्राप्त किए। इससे उनकी व्यावहारिक राजनीति का परिचय मिलता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि मल्हारराव होलकर और राजपूत राज्यों के संबंधों का स्वरूप स्थायी मित्रता अथवा स्थायी शत्रुता का नहीं था। इन संबंधों का आधार तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामरिक आवश्यकताएँ तथा पारस्परिक हित थे। जहाँ आवश्यकता हुई वहाँ संघर्ष हुआ, और जहाँ राजनीतिक लाभ दिखाई दिया वहाँ सहयोग एवं समझौते भी किए गए। यही कारण है कि एक ओर वे राजपूताना में चौथ–वसूली करने वाले मराठा सेनानायक के रूप में दिखाई देते हैं, तो दूसरी ओर अनेक राजपूत शासकों के सहयोगी, संरक्षक

और मध्यस्थ के रूप में भी उनकी भूमिका सामने आती है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाराज सूबेदार मल्हारराव होलकर और राजपूत नरेशों के मध्य संबंध बहुआयामी, जटिल तथा परिस्थितिजन्य थे। उन्हें केवल संघर्ष अथवा केवल सहयोग की दृष्टि से समझना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं होगा। वास्तव में ये संबंध अठारहवीं शताब्दी की उस राजनीतिक संस्कृति के प्रतीक थे, जिसमें शक्ति, कूटनीति, सामरिक आवश्यकता और पारस्परिक हित एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए थे। इसलिए मल्हारराव होलकर और राजपूत राज्यों के मध्य संबंधों का अध्ययन न केवल मराठा–राजपूत संबंधों को समझने में सहायक है, बल्कि उत्तर भारत की अठारहवीं शताब्दी की व्यापक राजनीतिक संरचना और सत्ता–संतुलन को समझने के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कवि श्यामलदास : वीर विनोद, भाग 2, खंड 3, पृ. 1612
2. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 221
3. कवि श्यामलदास : वीर विनोद, भाग 2, खंड 3, पृ. 1612
4. सूर्यमल मिश्रा : वंश भास्कर – भाग 4, पृ. 3241)
5. फालके द्वारा संपादित : शिंदेशाही इतिहासांची साधने, जि. 1, लेखांक 179
6. डॉ मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 444
7. सूर्यमल मिश्रा : वंश भास्कर, जि. 4, पृ. 3126– 27, 3216–18
8. डॉ मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 346
9. पेशवा दफ्तर : जि. 29, लेखांक 39
10. मारवाड़ री ख्यात : जि. 2, पृ. 145–146
11. कर्नल टॉड : राजस्थान का इतिहास, पृ. 448
12. जोधपुर राज्य की ख्यात – भाग 2, पृ. 270
13. बारहठ बिशन सिंह कृत – विजय विलास, पृ. 103–104
14. माधवसिंह का बखतसिंह को खरीता पौष सुदी 15, वि. स. 1807/31 दिसंबर 1750 ईस्वी
15. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 1
16. आनंदराव भाऊ फालके : शिंदेशाही इतिहासांची साधने, भाग 2, लेखांक 37, पृ. 29–30
17. कर्नल टॉड : राजस्थान का इतिहास (अनुवाद), पृ. 627
18. डॉ मथुरालाल शर्मा : मराठों का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 243
19. कर्नल टॉड : राजस्थान का इतिहास, पृ. 651
20. मारवाड़ री ख्यात, जि. 2, पृ. 159
21. कर्नल टॉड : राजस्थान का इतिहास, पृ. 651–52
22. गौरीचंद हीराचंद ओझा : प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 247–48
23. टॉड : राजस्थान का इतिहास, पृ. 253– 54

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 82–87

Literary Style of Mulk Raj Anand specifically on Coolie…

Harinder Pal Singh, Ph.D Scholar
Deptt. of English, SKD University, Pillibanga Hanumangarh (Raj.)
Dr Sheeshpal Singh, Assistant Professor
Deptt. of English, Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan.

Mulk Raj Anand's style in Coolie is a blend of stark social realism, humanism, and picaresque storytelling. He highlights systemic class oppression, using the tragic journey of the protagonist, Munoo, to expose the exploitative forces of colonialism, capitalism, and the Indian caste system.Key Elements of Anand's StyleSocial Realism & Humanism: Anand's work is deeply reformist. Rather than relying on melodrama, he portrays the squalor, hunger, and daily humiliations of the poor. He humanizes the marginalized, shifting the focus from an individual's personal choices to the society determining their tragic destiny.Picaresque & Episodic Structure: The novel functions as a picaresque epic, tracing Munoo's travels from a rural village (Bilaspur) to towns, and eventually to metropolitan hubs (Bombay) and the mountains (Simla). This episodic structure captures a wide cross-section of Indian society while emphasizing how the poor are relentlessly tossed around by uncontrollable socio-economic forces.Social Satire & Humor: Anand uses satire to expose the hypocrisies of the affluent—both British colonizers and the rising Indian bourgeoisie. He juxtaposes the extreme wealth of the upper classes with the sheer destitution of the working masses to heighten the tragedy.Use of Indian English: Anand pioneered writing Indian English. He broke traditional English conventions by incorporating Punjabi and Hindustani idioms, proverbs, and rhythms to reflect the authentic cultural milieu of his subjects.Anand's exploration of the marginalized in Coolie established him as one of the founding fathers of the English-language Indian novel, creating a profound prototype for socially conscious literature.

Literary style of Mulk Raj Anand specifically on Coolie :

Mulk Raj Anand's writing goes way beyond just being a pioneer of realistic storytelling; it's a

powerful mix of social awareness, deep thinking, and new ways of telling stories. His books not only show the harshness of caste and class struggles but also highlight the strength and hope of people. Characters like Bakha, Munoo and Gangu are not just people who suffer, they are real, full of hope and capable of change. His writing often includes words and phrases from Punjabi and Hindustani, which connects the everyday language of India to the wider world of English, making his voice both personal and widely relatable. Influenced by Gandhi's values and Marxist ideas, Anand tells stories that question old beliefs, criticize colonial power and fight against unfair systems, while also promoting kindness, hard work and pride in culture. He uses techniques like stream-of-consciousness, symbolic images and detailed descriptions of nature to make his stories feel emotionally rich, turning them into more than just reports about societyâ ”they become important literary works that show India's growing moral awareness. By combining old storytelling traditions with modern methods, Anand doesnot just write about Indiahe helps reshape how we see it. Mulk Raj Anand's writing is full of deep themes and real cultural details, creating clear and lively images of Indian life, especially the experiences of those on the edges of society.

Mulk Raj Anand’s novels are not merely narratives, they are acts of conscience,crafted with the urgency of a reformer and the tenderness of a humanist. His fiction pulses with the lived experiences of India’s marginalized, transforming suffering into testimony and silence into speech. Anand’s realism is deeply ethical, rooted in the belief that literature must illuminate injustice and awaken empathy. In Untouchable, Bakha’s humiliation is not just personal, it is emblematic of a society shackled by caste, where dignity is denied by birth. His longing for education and respect becomes a quiet revolution against inherited oppression. In *Coolie,* Munoo’s journey through factories, households and hospitals reveals the brutal machinery of class exploitation, where childhood is consumed by labor and dreams are extinguished by hunger. Anand’s portrayal of poverty transcends economic deprivation—it becomes a spiritual wound, a force that distorts identity and erodes hope. Two Leaves and a Bud exposes colonial cruelty through Gangu’s story, where the lush tea estates of Assam conceal systemic violence, and the struggle for survival becomes a daily act of resistance.

Anand’s characters are not passive, they are seekers, rebels, and dreamers, whose pain is rendered with compassion, not pity. His prose, influenced by Dickens, Tolstoy, and Gandhian ideals, is lucid yet emotionally profound, often ending in reflective silences that invite readers to contemplate their own moral positions. In The Road, Bhikhu’s labor becomes symbolic of the invisible hands that build the nation but remain excluded from its promises. The Private Life of an Indian Prince explores

the emotional decay of feudal privilege, revealing how power without purpose leads to existential emptiness. Anand's autobiographical works like Seven Summers and Morning Face blend memory with critique, tracing the evolution of a socially conscious writer whose art is inseparable from activism. His commitment to the Progressive Writers' Movement underscores his belief that literature must serve the people, challenge injustice, and inspire change. Hunger in his novels is not just physical, it is metaphorical, representing the yearning for justice, dignity, and belonging. Exploitation is portrayed not only as economic but as a spiritual violation, a theft of humanity. Anand's realism is redemptive, affirming the possibility of transformation even amidst despair. His characters, though broken by circumstance, retain their humanity and dreams, making his fiction a celebration of resilience. Through evocative storytelling and emotionally lucid narratives, Anand transforms literature into a torchbearer for social reform, where every tale is a plea for compassion and a challenge to indifference. His legacy is not confined to the pages of his novels, it lives on in the hearts of readers who find in his work a mirror to society's failings and a map toward justice. In every narrative, Anand invites us to bear witness, to feel deeply and to act with courage, proving that the most powerful literature is that which dares to speak truth to power and love to suffering. His novels remain timeless because they speak to the universal quest for identity, equality and human dignity reminding us that the struggle for life is, above all, the struggle for meaning.

Anand's literary universe is populated not by heroes in the conventional sense, but by ordinary individuals whose lives are shaped by extraordinary suffering. His protagonists…Bakha, Munoo, Gangu, Bhikh are not defined by triumph, but by their capacity to endure to dream, and to assert their humanity in the face of systemic cruelty. This quiet heroism is what makes Anand's realism so compelling: it does not rely on dramatic gestures but on the subtle, persistent assertion of dignity. His characters often exist on the periphery of society, yet their emotional depth and moral clarity place them at the center of his ethical vision.

Through their eyes, readers are invited to confront uncomfortable truths about caste, class, and colonialism, not as abstract concepts,but as lived realities that shape identity and destiny. Anand's commitment to social justice is not limited to thematic content, it is embedded in his narrative style. He avoids ornate language and romanticized portrayals, choosing instead a direct, compassionate tone that mirrors the urgency of his message. His use of vernacular speech patterns and regional idioms lends authenticity to his characters, grounding their experiences in specific cultural contexts while also making them universally relatable. The emotional cadence of his prose marked by pauses,

silences and internal monologues creates space for reflection, allowing readers to absorb the weight of each moment.

Anand's realism is thus not just visual or structural, it is deeply psychological, revealing how oppression infiltrates the mind and spirit as much as the body. In Anand's world, literature is not a retreat from reality but a confrontation with it.

His novels serve as ethical documents, chronicling the moral failures of society while also offering glimpses of redemption. He believed that art must serve the people, and his fiction reflects this conviction with unwavering clarity. Whether depicting the indignities of caste in Untouchable, the exploitation of labor in Coolie or the emotional decay of aristocracy in The Private Life of an Indian Prince. Anand's work consistently challenges readers to see beyond privilege and prejudice. His realism is not passive observation, it is active engagement, a call to empathy and action. In this way, Anand transforms the novel into a space of resistance, where storytelling becomes a form of social intervention.

Ultimately, Mulk Raj Anand's literary legacy lies in his ability to humanize the dehumanised to dignify the discarded, and to illuminate the shadows of society with the light of compassion. His novels are not just stories, they are moral inquiries, philosophical meditations and emotional journeys. They remind us that the struggle for justice begins with the recognition of shared humanity, and that literature,at its best, can be both a mirror and a torch. Anand's realism continues to resonate because it speaks to the timeless truths of suffering, resilience and hope.

Reality in the novels of Mulk Raj Anand.

Mulk Raj Anand's novels are rooted in a profound realism that vividly portrays the socio-economic struggles of India's marginalized classes during colonial and early post-colonial periods. Through works like Untouchable, Coolie, and Two Leaves and a Bud, Anand gives voice to the voiceless, depicting the cruelty of caste discrimination, the exploitation of laborers, and the trauma of colonial rule. His characters, often drawn from the lowest rungs of society, live raw and painful lives, expressed through unembellished language, authentic settings, and deep psychological insight. Anand rejects romanticism and instead embraces the stark truths of poverty, oppression, and human dignity, using narrative as both protest and portrayal. His realist technique, combining vernacular dialogue with philosophical undertones, underscores his commitment to social reform and empathetic storytelling, making his fiction not just art, but advocacy.

Mulk Raj Anand's Coolie utilizes a third-person limited omniscient perspective to highlight

the brutal effects of caste-based oppression and colonial-era industrial capitalism through the experience of its adolescent protagonist, Munoo. By framing the novel as a picaresque journey from a rural village to urban centers of exploitation, the narrative functions as a powerful indictment of social injustice, transforming the protagonist into a symbol of exploited labor.

Anand's specific point of view and writing techniques in Coolie feature several core characteristics:Sympathetic Third-Person Perspective: The story is told in the third person, but it remains strictly tethered to Munoo's internal world. The reader witnesses the world through his innocent, vulnerable eyes, allowing for deep emotional empathy as he encounters class disparity. Picaresque Framework: The novel follows a traditional picaresque structure. Munoo migrates from his village in the Kangra hills to towns and cities like Bombay and Simla, serving in various roles (domestic servant, factory worker, coolie, rickshaw puller). This episodic structure provides a wide-ranging, bird's-eye view of a highly stratified colonial India.Gritty Social Realism: Unlike the whimsical, romanticized settings of R.K. Narayan's Malgudi, Anand's reality is harsh.He avoids embellishments to present the raw, unvarnished struggles of the poor, focusing on themes like hunger, disease, and systemic abuse.

Vernacular Dialect and Idiom :

Anand breaks away from standard, elevated British English. He incorporates localized Indian words, speech patterns and everyday phrases from regional languages (Hindustani/Punjabi) directly into his prose, giving the narrative authentic cultural weight.

Humanist Critique : The perspective acts as an indictment of social inequalities. Through Munoo's tragic journey, Anand exposes the cruelty of both the British colonial system and the traditional Indian caste/class structure.

In Mulk Raj Anand's *Coolie,* the secondary characters encountered by the adolescent protagonist, Munoo, serve as vivid, structural symbols of the socioeconomic forces reshaping colonial India. His journey begins in Sham Nagar under Babu Nathoo Ram, a bank clerk embodying petty-bourgeois Anglophilia and his abusive wife, Uttam Kaur, whose harsh domestic servitude is briefly softened only by the kindness of Dr. Prem Chand. Moving to the mercantile sector of Daulatpur, Munoo finds rare, surrogate parental warmth from the compassionate factory owner Prabha Dyal, only to witness his downfall engineered by the greedy, violent business partner, Ganpat. In the industrial landscape of Bombay, Munoo faces severe capitalist and colonial oppression from the predatory British foreman Jimmie Thomas, but he also glimpses working-class defiance and solidarity through

Ratan, a robust wrestler and trade unionist. Finally, in Simla, the neurotic Anglo-Indian Mrs. May Mainwaring highlights the psychological damages of colonial mimicry; her demanding nature drives her to subject Munoo to fatal physical labor as a rickshaw puller, cementing how each character systematically pushes him toward his tragic end.

Mulk Raj Anand has focused the ruthless exploitation of the marginalized poor by the intersecting forces of British colonialism, industrial capitalism and India's traditional social hierarchies. The novel serves as a poignant social critique, highlighting the cyclical oppression of the working class and the denial of their fundamental humanity.Through the tragic odyssey of Munoo—an orphan boy forced into a lifetime of subservience and manual labor across India. Anand exposes how poverty transcends caste and religion, trapping vulnerable individuals in a relentless, unforgiving system until their untimely death.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 88–90

भारतीय संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री की संस्थागत भूमिका : अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व का विश्लेषण

डॉ. विरमा राम देवासी, निर्देशक
कांता भाटी, शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर।

सार :

भारतीय संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री का पद शासन–तंत्र का केंद्रीय स्तंभ है, जो न केवल कार्यपालिका का नेतृत्व करता है बल्कि राजनीतिक, प्रशासनिक और नीतिगत दिशा भी निर्धारित करता है। इस शोध–पत्र में प्रधानमंत्री की संस्थागत भूमिका का विश्लेषण करते हुए अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व को एक केस अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वाजपेयी का कार्यकाल भारतीय राजनीति में गठबंधन युग, आर्थिक परिवर्तन, और अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के सुदृढ़ीकरण के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा। इस अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार वाजपेयी ने प्रधानमंत्री के पद की संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहते हुए उसे प्रभावी, संतुलित और लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान किया।

प्रस्तावना :

भारतीय लोकतंत्र में संसदीय शासन प्रणाली का आधार ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है, जिसमें वास्तविक कार्यपालिका शक्ति प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद के पास निहित होती है। संविधान के अनुच्छेद 74 और 75 के अनुसार, राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने वाली मंत्रिपरिषद का प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। इस प्रकार प्रधानमंत्री न केवल शासन का संचालन करता है, बल्कि नीति–निर्माण, प्रशासनिक समन्वय और राजनीतिक नेतृत्व का भी केंद्र बिंदु होता है। प्रधानमंत्री की भूमिका समय, परिस्थितियों और नेतृत्व शैली के अनुसार बदलती रही है। विशेष रूप से गठबंधन युग में प्रधानमंत्री की भूमिका और अधिक जटिल हो जाती है, जहाँ उसे विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच संतुलन स्थापित करना होता है।

प्रधानमंत्री की संस्थागत भूमिका का विश्लेषण :

भारतीय संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री की भूमिका बहुआयामी है। वह एक ओर संवैधानिक पदाधिकारी है, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक नेता भी है। संवैधानिक दृष्टि से प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद का गठन करता है, उसके कार्यों का समन्वय करता है और राष्ट्रपति को सलाह देता है। इस प्रक्रिया में प्रधानमंत्री सरकार की नीतियों और निर्णयों का वास्तविक निर्धारक होता है। राजनीतिक दृष्टि से प्रधानमंत्री संसद में बहुमत दल या गठबंधन का

नेता होता है। वह न केवल अपनी पार्टी बल्कि सहयोगी दलों के बीच भी संतुलन बनाए रखता है। यह भूमिका विशेष रूप से तब महत्वपूर्ण हो जाती है जब सरकार गठबंधन आधारित हो। प्रशासनिक स्तर पर प्रधानमंत्री विभिन्न मंत्रालयों के बीच समन्वय स्थापित करता है और शासन की दक्षता सुनिश्चित करता है। इस प्रकार प्रधानमंत्री की भूमिका केवल औपचारिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक और निर्णायक होती है।

अटल बिहारी वाजपेयी का नेतृत्व : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

अटल बिहारी वाजपेयी भारत के ऐसे नेता थे जिन्होंने तीन बार प्रधानमंत्री पद संभाला – 1996 में अल्पकालीन, तथा 1998 से 2004 तक स्थायी कार्यकाल के रूप में। वे भारतीय जनता पार्टी के प्रमुख नेता थे और स्वतंत्र भारत के पहले गैर–कांग्रेसी प्रधानमंत्री थे जिन्होंने पूर्ण कार्यकाल पूरा किया। उनका राजनीतिक जीवन चार दशकों से अधिक समय तक फैला रहा, जिसमें उन्होंने संसद, विदेश नीति और विपक्ष के नेता के रूप में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वाजपेयी के नेतृत्व में प्रधानमंत्री की भूमिका का व्यावहारिक स्वरूप :

अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में प्रधानमंत्री का पद केवल संवैधानिक दायरे तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने इसे व्यावहारिक राजनीति और लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ जोड़ा। उनका नेतृत्व उस समय सामने आया जब भारतीय राजनीति में गठबंधन युग का उदय हो चुका था। वाजपेयी ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) का नेतृत्व करते हुए विभिन्न दलों के बीच संतुलन स्थापित किया। उन्होंने 'गठबंधन धर्म' की अवधारणा को व्यवहार में लागू किया, जिसमें सभी सहयोगी दलों की भावनाओं और हितों का सम्मान किया गया। उनकी विदेश नीति में भी प्रधानमंत्री की भूमिका अत्यंत प्रभावशाली रही। 1998 के पोखरण परमाणु परीक्षणों के माध्यम से उन्होंने भारत को एक परमाणु शक्ति के रूप में स्थापित किया, जो राष्ट्रीय सुरक्षा और वैश्विक प्रतिष्ठा की दृष्टि से महत्वपूर्ण कदम था।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अंतरराष्ट्रीय संबंधों में संतुलित और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया, जिसमें सुरक्षा और आर्थिक हितों का समन्वय देखा जा सकता है। आर्थिक क्षेत्र में वाजपेयी सरकार ने बुनियादी ढांचे के विकास, उदारीकरण और निजीकरण को बढ़ावा दिया। उनके कार्यकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था में स्थिरता और विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए गए।

संसदीय परंपरा और लोकतांत्रिक मूल्यों का संरक्षण :

अटल बिहारी वाजपेयी का नेतृत्व विशेष रूप से उनकी संसदीय मर्यादा और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता के लिए जाना जाता है। वे विपक्ष के प्रति सम्मानजनक रवैया रखते थे और संसद में संवाद को प्राथमिकता देते थे। उनकी शैली में टकराव के बजाय सहमति और संवाद को महत्व दिया गया, जिससे संसदीय लोकतंत्र को मजबूती मिली।

आलोचनात्मक विश्लेषण :

हालांकि वाजपेयी का नेतृत्व अत्यंत प्रभावशाली रहा, लेकिन कुछ सीमाएँ भी स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। गठबंधन सरकार होने के कारण कई बार निर्णय लेने की प्रक्रिया धीमी हो जाती थी। इसके अतिरिक्त, कुछ नीतिगत मामलों में समझौते करने पड़े, जो गठबंधन राजनीति की अनिवार्यता थी। फिर भी, इन सीमाओं के बावजूद वाजपेयी ने प्रधानमंत्री के पद को संतुलित, लोकतांत्रिक और प्रभावी बनाए रखा।

निष्कर्ष :

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री की भूमिका अत्यंत व्यापक और निर्णायक है। अटल बिहारी वाजपेयी का नेतृत्व इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार एक प्रधानमंत्री संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहते हुए भी प्रभावी शासन प्रदान कर सकता है। वाजपेयी ने न केवल गठबंधन राजनीति को स्थिरता प्रदान की, बल्कि आर्थिक सुधार, राष्ट्रीय सुरक्षा और अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका नेतृत्व भारतीय लोकतंत्र में सहमति, संवाद और संतुलन की राजनीति का प्रतीक माना जा सकता है।

संदर्भ :

1. ब्रिटानिका विश्वकोश, 'अटल बिहारी वाजपेयी का जीवन परिचय'।
2. भारत सरकार, प्रधानमंत्री कार्यालय, 'पूर्व प्रधानमंत्रियों का विवरण'।
3. गौर, सुधीर सिंह (2024), 'भारतीय राजनीति में योगदान'
4. तिर्की, सी. अनुपा (2017), 'भारत की विदेश नीति का विश्लेषण'।
5. चिरल्ली, चित्रशेखर (2022), 'राजनीतिक जीवन एवं योगदान का अध्ययन'।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 91–97

The Political Economy of Slow Reform : Democracy, Legitimacy, and Market Liberalization in India

Kuldeep Singh

UGC- Junior Research Fellow, Department of Political Science, University of Delhi.

ABSTRACT :

Since the initiation of economic Liberalization in 1991, India witnessed the economic changes in it's economic structures, such as higher growth rates, increased foreign investment and global connect in business segment. However the pace of the India market model reforms has not sustained for long time. It is very uneven when compared to several other emerging economies. This paper examines the political factors that have shaped the trajectory if India economic reforms over the past three decades.

Adopting a political economy perspective, the study argues that the slow pace of reforms is not merely the result of economic constraints but is closely linked to Democratic Politics, electoral considerations, and the absence of a broad political consensus on market reforms. The paper draws upon secondary literature on Indian political economy, Inequality, and economic reforms, and analysed the cases of Land Acquisition Act amendments (2015) and the farm laws (2020) to understand the political challenges faced by reform initiatives. It conclude the future success of economic reforms in India will depend on their ability to secure broader political legitimacy and public acceptance within a Democratic framework.

KEYWORDS : Economic Reforms, Liberalization, Populism, Political Economy, Democracy.

INTRODUCTION :

Economic 'reforms' have always been the buzzword in India's political vocabulary. The Indian political economy revolves around the question of free-market economic reforms - ushered in in late 1980's and early 1990's in the form of liberalization, privatization and globalization (LPG). A similar economic model was followed by many developing countries in that period such as Ethiopia in Africa, Vietnam in south- east Asia and others. The political tussle behind free-market economic

reforms finds its way in the political landscape every now and then. As with many structural reforms, the market reform process in India has had some winners but many losers too. The government of India adopted a more liberalized model in gradual manner over time. It marked a decisive system in India's economic pattern from a socialist (formally declared Awadh session in 1955) to a capitalist model of economy. These steps contributed to higher economic growth, increased foreign investment, and the expansion of private sector. But the things are not as smooth as they initially appear. The anticipated level of economic growth has not been achieved to the extent that was expected. In this context, it is the starting point of this study that India's pace on market-oriented reforms has been slow. Our neighboring country, China is a useful example for comparison because of its growth under the shadow of "state led capitalism". In 1978, around a decade ago China opened its economy under the leadership of Deng Xiaoping and achieved a growth of around 10% for nearly three decades. So, It is the central motive of this study to understand the political economy of reforms in India. The Central question of the research, why market-reforms couldn't 'take-off' wholesomely even after nearly three decades of its adoption in 1991? This research paper will study and investigate the political factors behind the slow, lethargic pace of economic reforms in India - be it under the coalition government or a majority government. We shall analyze the role of three major stakeholders - the state, the political actors and the electorate - with regards to their position on market reforms.

REVIEW OF LITERATURE :

Several studies have been conducted on the political economy of the reforms initiated in 1990's. We analyse these works and try to find out the nature, difficulties and the objectives of the economic growth of our country. The growth pattern of India is similar to Ethiopia in Africa to some extent. During the first fifteen years of globalization, Liberalization and privatization, India recorded average growth rate of around 6.5% until 2005. According to estimates for 2024-25, The growth rate is expected to be 7.2% but again some institutions drop to 6.8%. The political, economic and geopolitical reasons for such reforms have already been discussed, critically analysed in detail, as can be seen in the works of Kohli (2006). But little work has been done on the contemporary political economy of reforms in India. According to World Bank Report, in 1990 there were 431 million poor people in India, which is now reduced to 129 million. The poverty line is defined by the World bank includes those who earn less than 180 rupees per day. The report further states that the poverty projection in India may fall below to 3% at the end of decade. On the other side, China has lifted the highest number of people approximately 800 million people out of poverty in Asia over the past 30 years.(Sengupta,2024). The main thing why we are talking about this data because the China growth rate and the people uplifted from the poverty line is very high comparatively to India. China maintained

a growth rate of around 10% for nearly three- four decades. On the other side, India has neither been able to achieve nor sustain such a high growth rate for a prolonged period. Why is the pace of reforms still slow and its political cost so high that a single party majority government finds it difficult to fulfil its economic agenda? - remains an unexplored question. Populism has been identified by many authors as being persistent in Indian politics, but little work has been done to identify the underlying causes of populist politics. To add to that, little work has been done on the 'perception' of economic reforms in the minds/psyche of those who are not so well-off, and how this feeling of being 'left behind' affects their political choices. A similar picture we are seeing is that, the concentration of wealth has increased significantly, the impact of globalization on the social fabric has not been has transformative or effective as it appear in its initial stages. Based on the inequality report, it is also observed that developing countries now have more millionaires in number that has more than the world since 2007. Apart from Sanjay Kumar's (2004) work on 'Impact of Economic Reforms on Indian Electorate', no substantial work can be found in this field. We reviewed James Manor's (2020) article on the inability of the Modi Government to push through economic reforms due to excessive centralization in the economic sphere. Manor (2020) talks in detail about the tendency of strongmen (here, Narendra Modi) to centralise and hence discouraging true economic liberalism. (Manor, 2020, 13, 14)

We correlated our characterisation of the Indian political-economy model with Peter Evans' characterization of South Asian states' as 'Developmental States' with embedded autonomy - states having a proactive role in the economic growth. (Evans, 1995). Pranab Bardhan (2015) identified the structural issues with the Indian political economy. These were 'legitimation crisis of capitalism' due to rising inequality, 'elite fragmentation' or lack of consensus on economic model and the issue of 'political rent' which is politicians encouraging oligarchic forces to extract 'rents' or election funding from them as quid-pro-quo (Bardhan, 2015,14-17). Atul Kohli (2006) stated about the pro-business tilt of the Indian state, resembling East-Asian statist model, due to which there is inequality, concentration of wealth, democratic deficit and stagnant employment. (Kohli, 2006, 1364, 1368) We use this analysis to hypothesise about 'trust deficit' in Indian masses for economic reforms. India's pace of market oriented economic reforms has been slow which we have seen in the above data analysis.

CENTRAL THEME OF STUDY :

India's pace on market-oriented economic reforms has been slow. Market reforms after three decades of its initiation have been incremental, piecemeal and not substantive (Manor 2020) (Mehta & Deo, 2020). One can clearly see that many of the pro-market reforms instituted over the years are

yet to take off effectively(Mehta & Deo, 2020). In this context, the central question of this study is why market-reforms couldn't 'take-off' wholesomely even after nearly three decades of its adoption in 1991? This question gains all the more weight due to the fact that India from the last 8 years has had a single-party majority, stable government (serving its second term) that doesn't have to depend on generally populist regional parties. In spite of this, why are market-oriented reforms moving at a lethargic pace? If some commentators believed half a decade back that India's slow pace of economic reforms were due to the persistence of coalition governments at the centre having relatively less stability, conviction and will to accelerate market reforms, then how do they explain the yet so slow pace of reforms even after having a single party full majority government at the centre? More so when one of the key planks on which the leader of present government Prime Minister Narendra Modi won the 2014 Lok Sabha elections handsomely was his 'Gujarat Model' of development which was perceived to be driven by business-friendly policies, entrepreneurship and high economic growth. Sanjeev Sanyal, then principal economic advisor in the ministry of finance, even called Modi "the first genuinely post-socialist political leader of India". (Mehta & Deo, 2020) Expectations that the Modi government would liberalise audaciously have been disappointed. (Manor, 2020, 12)

The Main Questions of the research are :-

Has it been difficult to politically convince the people to embrace market reforms - be it under the coalition government or a single-party majority government? Why is there only rhetoric on market-reforms but with no real action on the ground, even after three decades since its initiation in early 1990's? Why does a politically stable and strong Modi-government have to bow down to political pressures in two specific cases of market reforms - three farm bills in 2021 and amendments to the Land Acquisition Act in 2015? It is also important to note the scope of this study. It would like to flesh out the political factors that affect the formulation of economic reforms in India, after more than two decades have passed since the initiation of reforms in 1991. It uses the political-economy lens and cares less about the economic reasons. Additionally, the study is not concerned about the 'desirability' of economic reforms in India. It does not want to pass any judgement on whether pro-market reforms are beneficial to our society or not. Its objective is to analyze the politics behind the reforms.

According to this study, the answer to the central question are :-

1 There is a lack of political consensus on the issue of neoliberal reforms in India. The position of a party on free market-oriented reforms depends on whether they are in power or in the opposition. For big bang structural reforms to take place in a complex multiparty democracy as India, either there needs to be a situation of crisis (as happened in the Balance of Payment crisis of 1991), or there

should exist a political-elite consensus among major political actors.

2. The market reforms in India could not gain the 'trust' or 'legitimacy' of the masses. We hypothesise that this is due to the unequal fruits of economic reforms enjoyed by different sections of society, resulting in the 'legitimation crisis' of capitalism in India (Bardhan, 2015, 16). The glaring inequality translates into political opposition.

3. A strong government at the centre tends to centralise power in its own hands, discouraging the market to have a free-rein. Likewise, Modi's Government chooses to be the prime actor in the economic realm through centralised schemes, freebies and welfarism, so that the state 'touches' the lives of people directly. (Sengupta, 2019, 3-6) Building on Atul Kohli's (2006) analysis, the Indian state, rather than being pro-market, has been pro-business. (Kohli, 2006,1368) (Bardhan, 2015, 17). This pro-business tilt has been strengthened during the Modi government. Due to this pro-business image and nexus between politicians and few businessmen, those who remained behind due to reforms remain suspicious of any attempt by the state to ram through reforms.

4. There exists a 'populist' bias in our political system. By populist bias, we mean that political parties more often than not resort to 'populism'. This has been well documented by Ninan (2017). The inequality and trust deficit for the market in the masses' psyche eventually leads to political opportunism where political parties "race to the bottom" to be more populist than their competitors. Due to the interplay of these factors, the political cost of ramming through big bang economic reform is too high even for a strong government at the centre. Case in point, the Modi government backtracked on amendments to Land Acquisition Act 2015 just before Bihar Assembly elections and now repealed three farm laws before elections in states of Uttar Pradesh, Punjab, Goa, Uttarakhand, and Manipur.

Methodology used for the study :-

This study uses the following methodology in order to test its hypothesis :-

1. To begin with, it would like to use secondary data to assess the inequality in the country post-1991. We will use three credible inequality indices/studies of Gini Coefficient, Oxfam Wealth Inequality Report of 2020 for India, Income Inequality, India 2000-2020 from World Inequality Database.

2. To test the inherent populism in the political landscape, we study the popular rhetoric on which the last three general elections' (2009, 2014, 2019) campaigns are done through political speeches and campaign promises of two national parties - BJP and Congress. We also depend on literature review and post-poll surveys on how voters actually voted in the election with respect to economic policies.

3. We conduct case studies of two instances where the Modi government back tracked - amendments to Land Acquisition Act 2015 and Farm Laws 2020 to understand the politics behind its opposition and subsequent yielding by the NDA government. We do this through interviews with leaders of major farmer's groups, study their political speeches and demands and conduct structured interviews with government/party insiders to understand the Government's/party's stand on this.

4. To substantiate the point of slow pace of economic reforms under the Modi regime, we have reviewed the extensive study conducted by Centre for Strategic and International Studies (CSIS) which stated that out of 30 economic reforms, the Modi government has completed just 6 of them. (Centre for Strategic and International Studies, 2019).

Sources :-

Secondary sources include Gini coefficient of Inequality in India, Oxfam Wealth Inequality Report of 2020 for India, Income Inequality, India 2000-2020 from World Inequality Database, literature on election agenda of last three general elections, study conducted by CSIS. Primary sources include political leaders' election campaign speeches, official manifestos and poll-promises made, and interviews of urban poor on their opinion on economic reforms, case studies of protests against three farm laws (2020) and amendments to Land Acquisition Act (2015).

CONCLUSION :

The study attempted to understand why market oriented economic reforms in India have progressed at a relatively slow pace rate despite more than three decades having passed since the reform of 1991. It finds that the issue is not economic in nature but also deeply political. The democratic structure of India, the presence of multiple political actors, electoral considerations, and public perceptions all influence the pace and direction of reforms.

The study also suggest that the there is no clear political consensus on economic reforms in India. Political Parties sometimes support and opposed the reform depending on their Political Interest. At the same time, the benefits of reform have not been experienced equally by all sections of society. This has created doubts among many people regarding the intentions and outcomes of market- oriented policies. Therefore, the slow pace of economic reforms in India should be understood as an outcome of the interaction between economic objectives and Democratic Politics. The study concludes that reforms are likely to gain wider acceptance only when they are accompanied by greater public trust broader public support and more inclusive distributions.

REFERENCES :

- Bardhan, P. (2015). "Reflection on Indian Political Economy" . Economic and Political Weekly, 50(18), 16.

- Centre for Strategic and International Studies. (2019). India's Economic Reform Agenda A SCORECARD. India's Economic Reform Agenda: A Scorecard | Centre for Strategic and International Studies. Retrieved May8, 2022 , from https://India reforms.csis.org/
- Corbridge, S. & Harriss, J. (2000). Reinventing India: Liberalization, Hindu Nationalism and Popular Democracy. Polity Press.
- David, M.(1947), Ethiopia The Study Of A Polity 1540-1935, London: Eyre & Spottiswoode.
- Evans, P.B. (1995). Embedded Autonomy: States and Industrial Transformation. Princeton University Press.
- Jenkins, R. (1999). Democratic Politics and Economic Reform in India. Cambridge University Press.
- Kohli, A.(2006). "Politics of Economic Growth in India, 1980-2005 Part II: The 1990s and Beyond". Economic and political Weekly, 41(14), 1361-1370.
- Kumar, S.(2004). "Impact of Economic Reforms on Indian Electorate". Economic and political Weekly, 39(16),1621
- Manor, J.(2020). "India's Far from Neo- liberal Economic Order in the Modi Era". Economic and Political weekly, 55(44), 12.
- Mehta, P. B., & Deo, S. (2020, November 24). "Economic Liberalization Still Has A Long Way To Go In Our Country". Mint.
- Ninan, T. N. (2017). The Turn of the Tortoise: The challenge and promise of India's Future. Penguin Random House India.
- Oxfam India. (2023). Survival of the Richest: India Supplement.
- Rodrik, D. (1996). Understanding Economic Policy Reform. Journal of Economic Literature, 34(1), 9-41.
- Sengupta, H. (2019). "The economic mind of Narendra Modi. Observer Research Foundation, 318, 3-6.
- https://www.orfonline.org/research/economic-mind- narendra-modi-56004
- Sanyal, S. (2018). India in the Age of Ideas: Unlocking a Century of Innovation. Westland Publications.
- Varshney, A.(1998). The Political Economy of India's Economic Reforms. In J. Sachs, A. Varshney & N. Bajpai (Eds.), India in the Era of Economic Reforms. Oxford University Press.
- World Inequality Lab. (2022). World Inequality Report 2022.

Mail- kuldeepsingh01122002@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 98–104

The Role of Jainism in Environmental Sustainability : A Philosophical and Practical Framework for Ecological Conservation

DIVYA KOTHARI

Abstract :

Environmental sustainability has emerged as one of the most pressing concerns of the twenty-first century. Climate change, biodiversity loss, pollution, resource depletion, and ecological degradation threaten the balance of life on Earth. While modern scientific approaches provide technological solutions, there is increasing recognition that environmental crises are fundamentally ethical and philosophical in nature. Religious traditions and indigenous knowledge systems offer valuable perspectives for developing sustainable lifestyles and ecological ethics. Among these traditions, Jainism presents a uniquely comprehensive framework for environmental sustainability through its principles of non-violence (Ahimsa), non-possessiveness (Aparigraha), multiplicity of viewpoints (Anekantavada), and self-restraint (Samyama). This paper examines the role of Jainism in promoting environmental sustainability by analyzing its philosophical foundations, ecological ethics, and practical implications. It argues that Jain principles provide a holistic model for sustainable development by fostering respect for all forms of life, reducing consumerism, encouraging biodiversity conservation, and promoting harmonious coexistence between humans and nature.

Keywords : Jainism, Environmental Sustainability, Ahimsa, Aparigraha, Ecological Ethics, Biodiversity, Sustainable Development.

Introduction :

The global environmental crisis has intensified scholarly discussions regarding the ethical dimensions of sustainability. Rapid industrialization, excessive consumption, urbanization, and exploitation of natural resources have contributed to environmental degradation on an unprecedented scale. Conventional approaches often focus on technological innovations and policy reforms; however, these measures alone may be insufficient without a corresponding transformation in human attitudes

and values.

Religion has historically shaped human relationships with nature. Various religious traditions contain teachings that encourage environmental stewardship, conservation, and ethical responsibility toward living beings. Jainism, one of the oldest religious traditions originating in India, offers a particularly significant ecological perspective. Founded upon principles of compassion, non-violence, and self-discipline, Jainism regards all living beings as possessing intrinsic value and spiritual significance.

Unlike anthropocentric worldviews that place humans at the center of existence, Jain philosophy advocates a biocentric and ecocentric understanding of reality. Every living organism, from microorganisms to plants and animals, is considered worthy of moral consideration. Consequently, Jainism provides a moral framework that aligns closely with contemporary environmental ethics and sustainability discourse.

This paper explores the role of Jainism in environmental sustainability by examining its philosophical foundations, ecological principles, practical applications, and contemporary relevance.

Philosophical Foundations of Jain Environmental Ethics

Ahimsa : The Principle of Non-Violence :

The cornerstone of Jain philosophy is Ahimsa, or non-violence. Unlike ordinary interpretations of non-violence that focus primarily on avoiding physical harm to humans, Jainism extends this principle to all living beings.

According to Jain metaphysics, every living organism possesses a soul (Jiva) and has the capacity to experience pleasure and pain. Therefore, harming any form of life generates negative karmic consequences and disrupts the moral order of the universe. This perspective fosters a profound sense of environmental responsibility.

From an ecological standpoint, Ahimsa promotes :

- Protection of biodiversity
- Conservation of wildlife
- Reduction of animal exploitation
- Ethical treatment of ecosystems
- Sustainable resource utilization

Modern environmental challenges such as deforestation, habitat destruction, and industrial pollution can be interpreted as forms of violence against nature. Jain ethics therefore encourages minimizing ecological harm through conscious and responsible behavior.

Aparigraha : Non-Possessiveness and Sustainable Consumption :

Aparigraha, or non-attachment and non-possessiveness, constitutes another foundational principle of Jainism. It advocates limiting one's material desires and avoiding excessive accumulation of wealth and possessions.

Contemporary environmental problems are closely linked to consumerism and unsustainable consumption patterns. Excessive demand for goods contributes to resource depletion, waste generation, and carbon emissions. Jain teachings address this issue by encouraging simplicity and moderation.

The principle of Aparigraha supports sustainability through :

1. Reduction of material consumption
2. Minimization of waste generation
3. Conservation of natural resources
4. Promotion of sustainable lifestyles
5. Resistance to consumerist culture

In many respects, Aparigraha anticipates modern concepts such as voluntary simplicity, minimalism, and sustainable consumption.

Anekantavada : Pluralism and Ecological Understanding :

Anekantavada, often translated as the doctrine of multiple perspectives, teaches that reality is complex and cannot be fully understood from a single viewpoint.

This principle has significant implications for environmental sustainability. Environmental problems involve interconnected social, economic, political, cultural, and ecological dimensions. Solutions require interdisciplinary cooperation and openness to diverse perspectives.

Anekantavada promotes :

- Intellectual humility
- Inclusive decision-making
- Ecological awareness
- Conflict resolution
- Participatory environmental governance.

By encouraging recognition of multiple truths, Jainism provides a philosophical foundation for collaborative sustainability efforts.

Jain Cosmology and Ecological Consciousness :

Jain cosmology presents a universe characterized by interdependence and interconnectedness. All living and non-living entities are part of a dynamic cosmic system governed by natural laws.

The Jain worldview recognizes six fundamental substances :

1. Soul (Jiva)
2. Matter (Pudgala)
3. Motion (Dharma)
4. Rest (Adharma)
5. Space (Akasha)
6. Time (Kala)

Within this framework, humans are not regarded as masters of nature but as participants in a larger ecological community. Such a perspective challenges anthropocentric assumptions and supports ecological sustainability.

Modern ecological science similarly emphasizes interconnected ecosystems and complex environmental relationships. Thus, Jain cosmology demonstrates remarkable compatibility with contemporary ecological thinking.

Vegetarianism, Veganism, and Environmental Sustainability :

One of the most visible contributions of Jainism to environmental sustainability is its promotion of vegetarianism.

Jains traditionally avoid meat consumption because killing animals violates the principle of Ahimsa. Many Jains also avoid root vegetables to minimize harm to microorganisms and plant life.

Environmental research indicates that plant-based diets contribute significantly to sustainability by reducing :

- Greenhouse gas emissions
- Land degradation
- Water consumption
- Deforestation
- Biodiversity loss

Animal agriculture is a major contributor to environmental degradation. By advocating vegetarianism, Jainism offers a practical model for reducing humanity's ecological footprint.

In recent years, some Jain scholars and practitioners have extended Ahimsa principles to support veganism, recognizing concerns regarding industrial dairy production and animal welfare.

Biodiversity Conservation in Jain Thought :

The preservation of biodiversity is central to contemporary sustainability efforts. Jainism has long emphasized respect for all forms of life, including insects, microorganisms, plants, birds, and animals. Jain scriptures classify living beings according to their sensory capacities and recognize varying forms of consciousness throughout nature. This classification reflects a sophisticated understanding of biological diversity.

Jain ethical practices that support biodiversity conservation include :

- Avoidance of unnecessary killing

- Protection of animal habitats
- Compassion toward wildlife
- Respect for ecological balance
- Conservation-oriented lifestyles

Historically, Jain communities have established animal shelters known as Panjrapoles, which provide care for injured, abandoned, and elderly animals. These institutions represent practical manifestations of ecological compassion.

Self-Discipline and Environmental Responsibility :

Jainism places strong emphasis on self-control and ethical discipline. Environmental sustainability ultimately depends upon individual behavior and collective responsibility.

Practices such as fasting, meditation, and restraint cultivate awareness of one's impact on the environment. Through disciplined living, individuals learn to distinguish genuine needs from excessive desires.

Environmental benefits of Jain self-discipline include :

- Reduced resource consumption
- Lower energy usage
- Waste minimization
- Sustainable living patterns
- Greater ecological awareness

Modern sustainability movements increasingly recognize the importance of behavioral change, an area in which Jainism offers valuable insights.

Jainism and Sustainable Development :

The concept of sustainable development seeks to balance economic growth, social equity, and environmental protection. Jain principles contribute significantly to all three dimensions.

Economic Sustainability :

Aparigraha encourages responsible production and consumption. Economic systems guided by Jain ethics would prioritize long-term well-being over short-term profit maximization.

Social Sustainability :

Ahimsa promotes peace, cooperation, and social justice. Non-violent societies are better equipped to address environmental challenges collectively.

Environmental Sustainability :

Jain respect for all life forms naturally supports conservation, biodiversity protection, and ecological restoration.

Together, these principles create a holistic framework for sustainable development.

Contemporary Relevance of Jain Environmental Ethics :

The relevance of Jain environmental ethics has increased significantly in the context of global ecological crises.

Climate Change :

Climate change results largely from excessive consumption and fossil fuel dependence. Jain teachings on moderation and simplicity offer ethical alternatives to unsustainable lifestyles.

Resource Depletion :

Aparigraha encourages conservation of finite resources and discourages wasteful practices.

Biodiversity Loss :

Ahimsa supports protection of species and ecosystems threatened by human activities.

Environmental Justice :

Anekantavada promotes inclusive dialogue and equitable environmental policies that consider diverse perspectives and interests.

As sustainability scholars increasingly emphasize ethical transformation, Jainism provides a valuable philosophical resource for environmental action.

Critiques and Limitations :

- Despite its strengths, Jain environmental ethics faces certain challenges.
- First, some Jain practices may appear difficult to implement on a global scale due to modern economic and social complexities.
- Second, strict interpretations of non-violence may create practical dilemmas in agriculture, public health, and technological development.
- Third, translating religious principles into public policy requires careful adaptation within pluralistic societies.
- However, these limitations do not diminish the broader significance of Jain ecological values. Instead, they highlight the need for contextual interpretation and interdisciplinary dialogue.

Comparative Perspectives :

Compared with other environmental philosophies, Jainism offers several distinctive contributions.

Unlike utilitarian approaches that evaluate nature based on human benefit, Jainism recognizes the intrinsic value of all life forms.

Unlike purely scientific approaches that focus on technical solutions, Jainism addresses the moral and spiritual roots of environmental problems.

Unlike some anthropocentric traditions, Jainism promotes a deeply biocentric ethic that extends moral concern beyond humanity.

These characteristics make Jainism a unique and valuable contributor to global environmental discourse.

Conclusion :

Jainism offers one of the most comprehensive religious frameworks for environmental sustainability. Through the principles of Ahimsa, Aparigraha, Anekantavada, and self-discipline, it promotes an ethical relationship between humans and nature based on respect, compassion, and restraint.

Its emphasis on non-violence toward all living beings supports biodiversity conservation and ecological protection. Its advocacy of non-possessiveness challenges consumerism and encourages sustainable consumption. Its doctrine of multiple perspectives fosters inclusive approaches to environmental governance. Furthermore, its practical traditions, including vegetarianism and compassionate living, demonstrate tangible pathways toward sustainability.

In an era characterized by climate change, ecological degradation, and resource scarcity, Jain philosophy provides valuable ethical insights for achieving a more sustainable future. While modern environmental challenges require scientific innovation and policy interventions, lasting solutions also depend upon transforming human values and behavior. Jainism's ecological wisdom offers a powerful moral foundation for such transformation and remains highly relevant to contemporary sustainability discourse.

References :

1. Chapple, Christopher Key. Jainism and Ecology: Nonviolence in the Web of Life. Harvard University Press.
2. Dundas, Paul. The Jains. Routledge.
3. Jaini, Padmanabh S. The Jaina Path of Purification. University of California Press.
4. Tobias, Michael. Life Force: The World of Jainism. Asian Humanities Press.
5. Singhvi, L. M. Jainism: A Way of Life. Jain Bhawan.
6. Cort, John E. Jains in the World. Oxford University Press.
7. Palmer, Martin and Victoria Finlay. Faith in Conservation. World Bank Publications.
8. Northcott, Michael S. A Moral Climate: The Ethics of Global Warming. Orbis Books.
9. Taylor, Bron. Encyclopedia of Religion and Nature. Continuum.
10. Naess, Arne. Ecology, Community and Lifestyle. Cambridge University Press.

Name :- Divya Kothari
Father's Name :- Rajendra Kumar kothari
Mother's Name :- Saroj kothari
E- Mail ID :- divs.1kothari@gmail.com
Address :- 185, Raipur, Bhilwara, Rajasthan.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 105–111

एकात्म मानवदर्शन में चतुर्विध योग (कर्म, ज्ञान, भक्ति और राजयोग) की प्रासंगिकता का विवेचन : अंत्योदय के विशेष संदर्भ में

डॉ संदीप ठाकरे, सहायक आचार्य, योग विभाग,
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक–484887 (मध्य प्रदेश)
डॉ. भारत भूषण सिंह, सहायक प्राध्यापक, योग विभाग,
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल उत्तराखंड।

शोध सारांश :

एकात्म मानव दर्शन पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एक मौलिक भारतीय विचारधारा है, जो मानव जीवन को केवल भौतिक या आर्थिक आयामों तक सीमित न मानकर उसे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समन्वित स्वरूप के रूप में देखती है। है।एकात्म मानव दर्शन का मूल विचार 'एकात्मता' है, अर्थात् जीवन के विभिन्न आयामों का परस्पर सामंजस्य। पं दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि हमारा मन ही एक ऐसी युक्ति है जो एक व्यक्ति, विकास और नाश की जड़ है। जब व्यक्ति का मन, बुद्धि, शरीर तथा आत्मा के अनुरुप कार्य करती है तो समाज का, समुदाय का, राष्ट्र का विश्व का विकास होता है। गांधी जी के 'सर्वोदय' की भांति, अंत्योदय का मुख्य लक्ष्य समाज के सबसे वंचित व्यक्ति को सशक्त बनाना है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी अर्थनीति में अन्त्योदय की व्याख्या बहुत ही स्पष्ट हैं। अन्त्योदय का अर्थ 'अन्तिम पंक्ति में बैठे व्यक्ति के सर्वागीण विकास से होता। अंत्योदय को समझने के लिए एकात्म मानववाद को समझना अनिवार्य है। उपाध्याय जी का मानना था कि मनुष्य केवल 'आर्थिक प्राणी' नहीं है। उसकी चार आवश्यकताएं हैं : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अंत्योदय इन चारों की पूर्ति का माध्यम बनता है। यह दर्शन व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को एक–दूसरे का विरोधी नहीं बल्कि एक–दूसरे का पूरक मानता है।

शब्द–कुंजी : एकात्म मानवदर्शन, अंत्योदय, चतुर्विध योग, चिति, निष्काम कर्मयोग, दरिद्र नारायण, स्वदेशी।

प्रस्तावना :

पं. दीनदयाल उपाध्याय भारतीय राजनीति और विचार–जगत के ऐसे चिंतक थे, जिन्होंने राष्ट्र को केवल सत्ता या व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि जीवंत सांस्कृतिक चेतना के रूप में देखा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक दार्शनिक, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ थे। इनके द्वारा प्रस्तुत दर्शन को 'एकात्म मानववाद' कहा

जाता है जिसका उद्देश्य एक ऐसा 'स्वदेशी सामाजिक–आर्थिक मॉडल' प्रस्तुत करना था जिसमें विकास के केंद्र में मानव हो। एकात्म मानव दर्शन पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एक मौलिक भारतीय विचारधारा है, जो मानव जीवन को केवल भौतिक या आर्थिक आयामों तक सीमित न मानकर उसे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समन्वित स्वरूप के रूप में देखती है। एकात्म मानव दर्शन समाज में स्थायी संघर्ष की अवधारणा को अस्वीकार करता है। पं. दीनदयाल मानते थे कि वर्ग–संघर्ष भारतीय संस्कृति का स्वभाव नहीं है, बल्कि सामाजिक विकृति का संकेत है।

भारतीय संस्कृति की विशेषता है– विविधता में एकता। जैसे एक बीज से जड़, तना, शाखा, फूल और फल यह उत्पन्न होते हैं, वैसे ही समाज के विभिन्न रूप एक ही मूल चेतना से जुड़े होते हैं।[1]

एकात्म मानव दर्शन का मूल विचार 'एकात्मता' है, अर्थात् जीवन के विभिन्न आयामों का परस्पर सामंजस्य। पं. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार मानव केवल एक आर्थिक इकाई नहीं है, बल्कि एक जीवंत, संवेदनशील और आध्यात्मिक सत्ता है। इसलिए किसी भी व्यवस्था की सफलता का मापदंड केवल उत्पादन या आय नहीं, बल्कि मानव का समग्र कल्याण होना चाहिए। यह दर्शन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को एक–दूसरे से अलग नहीं करता, बल्कि उन्हें एक सतत इकाई के रूप में देखता है।[2]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने पश्चिमी 'पूंजीवादी व्यक्तिवाद' एवं 'मार्क्सवादी समाजवाद' दोनों का विरोध किया, लेकिन आधुनिक तकनीक एवं पश्चिमी विज्ञान का स्वागत किया। ये पूंजीवाद एवं समाजवाद के मध्य एक ऐसी राह के पक्षधर थे जिसमें दोनों प्रणालियों के गुण तो मौजूद हों लेकिन उनके अतिरेक एवं अलगाव जैसे अवगुण न हो। इनके अनुसार पूंजीवादी एवं समाजवादी विचारधाराएँ केवल मानव के शरीर एवं मन की आवश्यकताओं पर विचार करती है इसलिए वे भौतिकवादी उद्देश्य पर आधारित हैं जबकि मानव के संपूर्ण विकास के लिए इनके साथ–साथ आत्मिक विकास भी आवश्यक है। साथ ही, उन्होंने एक वर्गहीन, जातिहीन और संघर्ष मुक्त सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की थी। एकात्म मानववाद का उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकता को संतुलित करते हुए प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करना है।[3]

दीनदयाल जी ने भारतीय वाड्मय का गहराई से अध्ययन किया था। पुरुषार्थ चतुष्टय का सिद्धांत वेदों, उपनिषदों और पुराणों में वर्णित है। जिसे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के रूप में विभाजित किया गया है। दीनदयाल जी धर्म को उसके व्यापक संदर्भ में परिभाषित किया। पूजा, उपासना पद्धति धर्म का एक भाग अवश्य है पर वही संपूर्ण नहीं। धारणीय कर्तव्य को धर्म कहा गया। जैसे शिक्षक का धर्म पढ़ाना है, ठीक उसी प्रकार मोक्ष को वे लक्ष्य की परम स्थिति मानते थे। जिस प्रकार आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य परम् मुक्ति है उसी प्रकार हमारे कर्म कर्त्तव्य की भी परम स्थिति हमारा लक्ष्य प्राप्त करना है। इस प्रकार उन्होंने व्यक्ति परिवार समाज और राष्ट्र के लिये इन चार पुरुषार्थ के आधार पर एक जीवन दर्शन दिया जिसे एकात्म मानव दर्शन माना गया। जिस प्रकार व्यक्ति का अस्तित्व केवल शरीर नहीं होता, मन, बुद्धि है और आत्मा होती है शरीर में अंग प्रत्यंग होते हैं इनमें से एक की कमी व्यक्ति को विकलांग बना देती है। उसी प्रकार सृष्टि के विराट स्वरूप की पूर्णता ही मानव अस्तित्व की पूर्णता है। सुख की पृथकता से व्यक्ति सुखी नहीं होता, उसे एकात्म सुख चाहिए। वही प्रसन्नता का आधार और आनंद का मार्ग भी।

पं. दीनदयाल जी ने अपने विचारधारा को एकात्म के साथ जोड़कर एक नई दिशा दिया है। भारत में

दर्शन का विकास केवल बुद्धि विलास अथवा बौद्धिक पीपासा की शान्ति हेतु नहीं हुआ बल्कि उसका जन्म एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु हुआ है। जीवन दार्शनिक चिन्तन से प्राप्त ज्ञान को उपयोगी बनाना दार्शनिक ज्ञान को जीवन की समस्याओं को सुलझाने में प्रयुक्त करना। इस कारण भारत में दर्शन पाश्चात्य दर्शन की विचारधारा से भिन्न है। भारतीय समाज में धर्म के साथ दर्शन की सम्बद्धता ने भी दर्शन को जीवन के लिए प्रवृत्त किया। सम्पूर्ण भारतीय दर्शन का विकास दूसरे से मुक्ति दिलाने के लिए हुआ। इसलिए भारत में व्यक्ति के परम लक्ष्य के रूप में मोक्ष को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो कहीं–कहीं निवृत्ति मात्र है तो कहीं सुख प्राप्त की अवस्था है। भारतीय विचारकों ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, बह्मचर्य तथा अपरिग्रह की मानव मात्र का आचरण घोषित किया।

दीनदयाल जी की राष्ट्र अवधारणा :

दीनदयाल जी ने एक स्वाभिमानी राष्ट्र की अवधारणा भी प्रस्तुत की और कहा कि जब कोई मानव समूह किसी लक्ष्य, किसी आदर्श, किसी संकल्प शैली के साथ निवास करता है और भूमि के विशेष हिस्से के प्रति अपनी मातृभूमि का भाव रखता है तो यह एक आदर्श स्थिति होती है और एक राष्ट्र का निर्माण होता है। उन्होने कहा था कि यदि दोनों में से किसी एक मनोभाव में कमी होगी तो आदर्श राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता है। आदर्श राष्ट्र के लिये मातृभूमि के समर्पण का भाव होना आवश्यक है। पं दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि हमारा मन ही एक ऐसी युक्ति है जो एक व्यक्ति, विकास और नाश की जड़ है। जब व्यक्ति का मन, बुद्धि, शरीर तथा आत्मा के अनुरुप कार्य करती है तो समाज का, समुदाय का, राष्ट्र का विश्व का विकास होता है। व्यक्ति की विकास यात्रा श्मनश से प्रारम्भहोती है, जब व्यक्ति का मन स्व की चिन्ता करता है तो वह व्यक्तिगत विकास भाव को जन्म देता है। अर्थात् व्यक्तिवाद पुष्पीत होता है। वहीं पर जब व्यक्ति स्व से बाहर निकलकर मुझे अर्थात समाज, राष्ट्र, देश के हित में विचार करता है तो वहाँ सामुदायिक भाव जन्म लेता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं कि मनुष्य के जो षट्विकार है– काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य और आलस्य यह मनुष्य को असहाय बनाती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के आधार पर शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा का विश्लेषण करते हुए एकात्म मानववाद विचारधारा को सृजित किया। दीनदयाल जी का मानना था कि जिस प्रकार प्राणी के शरीर में एक 'स्व' होता है, यही 'स्व' व्यक्ति का केन्द्रीय भाव है। यह शरीर की केन्द्रीभूत चेतना है यदि यह 'स्व' शरीर का साथ छोड़ दे तो व्यक्ति को मृत मान लिया जाता है। इसी प्रकार किसी राष्ट्र के अपने मौलिक विचार, आदर्श और सिद्धांत होते हैं जो उसकी केन्द्रीभूत चेतना होते हैं। वही उस राष्ट्र की पहचान होते हैं। इसे हम चिति भी कहते हैं। प्रत्येक नागरिक को अपने राष्ट्र के 'स्व' के प्रति समर्पित रहना चाहिए। दीनदयाल जी ने राष्ट्र के इस स्वत्व को चिति का नाम दिया और कहा कि राष्ट्र की चिति का निर्माण सहस्रों वर्षो की यात्रा से होता है और यही यात्रा एक संस्कृति का निर्माण करती है। जिसका संरक्षण करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होना चाहिए।[4]

दीनदयाल जी के आर्थिक विचार :

दीनदयाल जी के एकात्म मानव दर्शन में आर्थिक विचार भी महत्वपूर्ण हैं। उनके अनुसार किसी भी राज्य और समाज के लिए संतुलित और सतत आर्थिक विकास के लिये पूर्ण रोजगार एक प्राथमिकता होना चाहिए। उन्होंने कहा था कि 'हमें सामान्य तौर पर 'हर कामगार को भोजन मिलना चाहिए' पर जोर देने के बजाये इस बात को अपनी अर्थव्यवस्था का आधार बनाना चाहिए कि 'हर व्यक्ति को खाने के साथ काम भी मिलना चाहिए'।[5]

दीनदयाल जी ने अपने एकात्म मानव दर्शन को छह बिन्दुओं में अति संक्षिप्त किया जिनमें[6] :-

1. प्रत्येक व्यक्ति के लिए कम से कम एक सामान्य जीवन स्तर और राष्ट्र की रक्षा के लिए पूरी तैयारी।
2. सामान्य जीवन स्तर में अधिक विस्तार कैसे किया जाये जिससे व्यक्ति और राष्ट्र को अपनी स्थिति के आधार पर प्रगति करने का अवसर मिले।
3. हर नागरिक को ऐसे रोजगार का अवसर प्रदान करना, जिससे वह अपनी पूर्ण क्षमता और प्रतिभा के अनुरूप लक्ष्य प्राप्त कर सके।
4. प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संतुलन के साथ न्यूनतम हो।
5. उत्पादन की उपलब्धता को ध्यान में रखकर भारतीय स्थितियों के अनुकूल यंत्रों का विकास हो।

दीनदयाल जी आयातित प्राद्यौगिकी को हतोत्साहित करना चाहते थे और अधिकतम मानवशक्ति के उपयोग के पक्षधर थे। वे मशीनों को मानवीय प्रतिभा का प्रतिस्पर्धी नहीं अपितु सहयोगी के रूप में स्थापित करना चाहते थे।

दीनदयाल जी स्वदेशी और विकेंद्रीकरण के समर्थक थे। वे व्यापार और सत्ता दोनों का केंद्रीकरण मानव विकास में बाधा मानते थे। उन्होंने कहा था कि 'कुछ सालों में जाने–अनजाने ही सही केंद्रीकरण और एकाधिकार रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बनते जा रहे हैं। योजनाकार इस धारणा के गुलाम बन चुके हैं कि केवल बड़े पैमाने पर और केंद्रीकृत उद्योग ही लाभदायक है, और इसलिए इसके दुष्प्रभावों की चिंता किए बगैर, या जानबूझकर किसी मजबूरी में वे उस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। स्वदेशीकरण का भी यही हाल है। उन्होंने कहा था कि 'स्वदेशी की अवधारणा को पुरानी और प्रतिक्रियावादी मानकर उसका उपहास बनाया जा रहा है। हम विदेशी वस्तु और विचार गर्व से उपयोग करते हैं। सोच, प्रबंधन, पूंजी, उत्पादन का तरीका, प्रौद्योगिकी आदि ही नहीं उपभोग के मानकों और स्वरूप स्तर तक विदेशी सहायता पर निर्भर हो गए हैं। यह रास्ता प्रगति और विकास की ओर नहीं ले जाता। हम अपनी विशेषताएँ भूल जाएंगे और मानसिक रूप से एक बार फिर गुलाम बन जाएंगे। उनका कहना था कि 'स्वदेशी के सकारात्मक पहलू को हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए एक आधारशिला के तौर पर इस्तेमाल किया जाना चाहिए।'[7]

अन्त्योदय :

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद' (Integral Humanism) के माध्यम से एक मध्यमार्गी और भारतीय विचार प्रस्तुत किया। अंत्योदय इसी दर्शन का क्रियात्मक रूप है। गांधी जी के 'सर्वोदय' की भांति, अंत्योदय का मुख्य लक्ष्य समाज के सबसे वंचित व्यक्ति को सशक्त बनाना है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी अर्थनीति में अन्त्योदय की व्याख्या बहुत ही स्पष्ट हैं। अन्त्योदय का अर्थ होता है 'अन्तिम पंक्ति में बैठे व्यक्ति के सर्वागीण विकास से होता है।' जब यदि समाज में रह रहे लोगों के बीच में सबसे छोटे गरीब, किसान अन्य को उसका विकास होने लगे चाहे वे सामाजिक हो. आर्थिक हो, सांस्कृतिक हो, राजनैतिक आदि विभिन्न पहलू हो, से होता है। लाभप्रद हो तो उसे पं. दीनदयाल जी की अन्त्योदय का नाम देते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का अंत्योदय दर्शन एक 'समतामूलक' और 'ममतामूलक' समाज की परिकल्पना है। यह केवल भौतिक प्रगति का मार्ग नहीं है, बल्कि एक सांस्कृतिक चेतना है। आज के समय में, जब वैश्विक स्तर पर आर्थिक विषमता (Inequality) बढ़ रही है, अंत्योदय का 'सर्वोदय' (सबका विकास) के प्रति दृष्टिकोण विश्व को एक

स्थायी और शांतिपूर्ण विकल्प प्रदान करता है।[8]

अंत्योदय को समझने के लिए एकात्म मानववाद को समझना अनिवार्य है। उपाध्याय जी का मानना था कि मनुष्य केवल 'आर्थिक प्राणी' नहीं है। उसकी चार आवश्यकताएं हैं : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अंत्योदय इन चारों की पूर्ति का माध्यम बनता है। यह दर्शन व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को एक–दूसरे का विरोधी नहीं बल्कि एक–दूसरे का पूरक मानता है।

अंत्योदय के आर्थिक आयाम :

उपाध्याय जी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा' में स्पष्ट किया कि आर्थिक योजनाएं आंकड़ों के लिए नहीं, मनुष्यों के लिए होनी चाहिए।

- **पूर्ण रोजगार :** उन्होंने 'हर हाथ को काम' का नारा दिया। उनके अनुसार, जिस देश में श्रम शक्ति अधिक हो, वहां मशीनीकरण के बजाय श्रम–प्रधान तकनीकों का उपयोग होना चाहिए।
- **विकेंद्रीकरण :** उन्होंने सत्ता और संपत्ति के विकेंद्रीकरण की वकालत की ताकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हो सके।
- **उपभोग पर नियंत्रण :** पश्चिमी उपभोक्तावाद के विपरीत, अंत्योदय संयमित उपभोग और प्रकृति के साथ तालमेल बिठाने पर जोर देता है।

अंत्योदय में 'न्याय' की अवधारणा पश्चिमी 'Social Justice' से भिन्न है। यहाँ दरिद्र को 'दरिद्र नारायण' माना गया है। सेवा का उद्देश्य उपकार करना नहीं, बल्कि अपना कर्तव्य निभाना है। यह समाज के वंचित वर्गों को दया का पात्र नहीं, बल्कि राष्ट्र का अभिन्न अंग मानता है। जब तक अंतिम व्यक्ति शिक्षित, स्वस्थ और आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं होता, तब तक राष्ट्र की स्वतंत्रता 'अधूरी' मानी जाती है।

निष्काम कर्मयोग और अंत्योदय :

निष्काम कर्मयोग और अंत्योदय का संबंध बीज और वृक्ष जैसा है। जहाँ श्रीमद्भगवद्गीता का 'निष्काम कर्मयोग' आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है, वहीं पंडित दीनदयाल उपाध्याय का 'अंत्योदय' उसका सामाजिक और व्यावहारिक प्रकटीकरण है। दीनदयाल जी का 'अंत्योदय' (अंतिम व्यक्ति का उत्थान) गीता के निष्काम कर्मयोग का व्यावहारिक रूप है। उन्होंने राजनीति को सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि एक 'साधना' माना। उनके लिए समाज के सबसे गरीब व्यक्ति की सेवा करना 'दरिद्र नारायण' की पूजा थी। यह भक्ति योग और कर्म योग का अद्भुत संगम है।[9]

1. साधना के रूप में सेवा :

निष्काम कर्मयोग का अर्थ है– फल की आसक्ति के बिना अपने नियत कर्म को करना। दीनदयाल जी ने इसी आध्यात्मिक सूत्र को राजनीति और समाज–नीति में उतारा। उनके लिए 'अंत्योदय' कोई चुनावी नारा या सरकारी नीति मात्र नहीं थी, बल्कि एक 'सामाजिक साधना' थी। उन्होंने सिखाया कि समाज के अंतिम व्यक्ति की सेवा करते समय मन में यह भाव नहीं होना चाहिए कि हम उस पर कोई उपकार कर रहे हैं, बल्कि यह भाव होना चाहिए कि हम अपना 'स्वधर्म' निभा रहे हैं। स्वामी विवेकानंद और दीनदयाल उपाध्याय दोनों ने 'दरिद्र नारायण' की अवधारणा को जिया। निष्काम कर्मयोगी के लिए ईश्वर केवल मंदिरों में नहीं, बल्कि भूखे और उपेक्षित व्यक्ति की आँखों में बसता है। आज की दुनिया 'अधिकारों' के टकराव से जूझ रही है। इसके विपरीत,

निष्काम कर्मयोग 'कर्तव्य' (धर्म) की बात करता है। दीनदयाल जी का मानना था कि यदि समाज का समर्थ वर्ग अपने कर्तव्यों का पालन निष्काम भाव से करे, तो किसी के अधिकारों का हनन होगा ही नहीं। अंत्योदय वास्तव में समर्थ वर्ग के 'कर्तव्य–बोध' का परिणाम है। यह एक ऐसा संतुलन है जहाँ ऊपर खड़ा व्यक्ति नीचे खड़े व्यक्ति का हाथ पकड़कर उसे ऊपर खींचता है, इसलिए नहीं कि उसे प्रशंसा चाहिए, बल्कि इसलिए क्योंकि वह खुद को उस व्यक्ति के साथ 'एकात्म' अनुभव करता है। निष्काम कर्मयोग व्यक्ति को अहंकार मुक्त बनाता है।[10]

दीनदयाल जी ने जिस समाज की कल्पना की थी, वह 'प्रतियोगिता' पर नहीं बल्कि 'सहयोग' पर आधारित था। उन्होंने कहा कि विकास की दौड़ में जो सबसे पीछे रह गया है, उसे अतिरिक्त सहारा देना समाज का नैसर्गिक धर्म है। यही वह स्थान है जहाँ गीता की अनासक्ति और अंत्योदय की करुणा एक हो जाती हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन स्वयं एक निष्काम कर्मयोगी का जीवन था। उन्होंने 'स्व' को 'समष्टि' (समाज) में विलीन कर दिया था। उनका अंत्योदय दर्शन हमें सिखाता है कि जब तक पंक्ति का अंतिम व्यक्ति अभावों में है, तब तक हमारा योग, हमारी साधना और हमारा विकास अधूरा है। 'जिस दिन हम निष्काम भाव से अंतिम व्यक्ति के आँसू पोंछने को ही अपना पुरुषार्थ मान लेंगे, उसी दिन अंत्योदय सार्थक होगा और राष्ट्र का वास्तविक उदय होगा।'

ज्ञानयोग और अन्त्योदय :

भारतीय चिंतन में दुःख का कारण 'अविद्या' (अज्ञान) माना गया है। ज्ञानयोग द्वारा अज्ञान के आवरण को हटाकर सत्य को प्रकट करता है। वही अंत्योदय की संकल्पना में समाज में गरीबी, छुआछूत और शोषण 'सामाजिक अज्ञान' के परिणाम हैं। दीनदयाल जी के अनुसार, विकास का अर्थ केवल धन का वितरण नहीं, बल्कि अंतिम व्यक्ति के भीतर के 'अज्ञान' को मिटाकर उसे उसकी दिव्य शक्ति और क्षमता का बोध कराना है। ज्ञानयोग व्यक्ति को 'दृष्टि' देता है, और अंत्योदय उस दृष्टि को 'सृष्टि' (समाज) पर लागू करता है। एक सच्चा ज्ञानयोगी कभी भी समाज में व्याप्त विषमता को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि वह हर 'नर' में 'नारायण' देखता है।

भक्तियोग और अन्त्योदय :

भक्तियोग में 'अहंकार' का त्याग (शरणागति) अनिवार्य है। जब तक मनुष्य के भीतर 'मैं' और 'मेरा' का भाव रहता है, वह सच्चा भक्त नहीं बन सकता। एक अंत्योदयी कार्यकर्ता वही हो सकता है जिसके मन में अहंकार न हो। जब हम किसी गरीब की मदद करते हैं, तो वह 'दान' नहीं बल्कि 'अर्पण' होना चाहिए। दीनदयाल जी ने सिखाया कि सेवा करते समय यह भाव रहे कि यह अवसर मुझे ईश्वर (समाज) ने अपनी शुद्धि के लिए दिया है। दीनदयाल उपाध्याय के लिए भक्ति कोई पलायनवादी रास्ता नहीं था। उनके लिए भक्ति का अर्थ था – समाज के प्रति अटूट श्रद्धा। जब एक भक्त का हृदय दया से भरता है, तो वह अंत्योदय की ओर बढ़ता है। और जब एक अंत्योदयी कार्यकर्ता श्रद्धा के साथ सेवा करता है, तो उसका कर्म ही भक्तियोग बन जाता है। दीनदयाल जी ने ऐसे समाज की कल्पना की जो 'ममतामूलक' हो। जैसे एक माँ अपने सबसे कमजोर बच्चे का सबसे ज्यादा ध्यान रखती है, वैसे ही समाज को अपने सबसे पिछड़े अंग (अंत्य) का ध्यान रखना चाहिए। यह 'ममता' ही भक्तियोग का सामाजिक विस्तार है।

राजयोग और अन्त्योदय :

सामान्यतः राजयोग को चित्त की वृत्तियों के निरोध और अष्टांग साधन से जोड़ा जाता है, लेकिन दीनदयाल जी ने इसे 'राष्ट्र–साधना' और 'शासन–पद्धति' के रूप में व्याख्यायित किया। राजयोग का प्रारंभ 'यम' और 'नियम' (आत्म–अनुशासन) से होता है। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर –प्रणिधान) को कर्म शुद्धि के साथ–साथ चित्त शुद्धि का भी साधन मन गया है। बिना इंद्रिय निग्रह और नैतिक अनुशासन के कोई व्यक्ति योगी नहीं बन सकता। पंडित दीनदयाल जी का मानना था कि एक 'धर्म राज्य' का शासक तभी अंत्योदय कर सकता है जब वह स्वयं राजयोगी की भांति निष्काम और अनुशासित हो। राजयोगी राजा (जैसे जनक) की भांति शासन का उद्देश्य केवल व्यवस्था चलाना नहीं, बल्कि समाज के अंतिम व्यक्ति को 'मोक्ष' (अभावों से मुक्ति) की ओर ले जाना है। यदि सत्ता में बैठे लोग 'अपरिग्रह' (संग्रह न करना) के सिद्धांत को अपनाएँ, तो समाज के संसाधनों का प्रवाह स्वतः अंतिम व्यक्ति की ओर मुड़ जाएगा।

निष्कर्ष :

अंत्योदय की पूर्णता के लिए ज्ञान, कर्म, भक्त और राजयोग का चतुर्दिक समन्वय अनिवार्य है। यही समन्वय भारत को एक जीवंत राष्ट्र के रूप में पुनः स्थापित करने का सामर्थ्य रखता है। निष्काम कर्मयोग 'श्रम की प्रतिष्ठा' को पुर्नस्थापित करता है। राजयोग के सिद्धांतों का अनुप्रयोग शासन को 'नैतिक नेतृत्व' प्रदान करता है। 'यम' और 'नियम' (विशेषकर अपरिग्रह और अस्तेय) का पालन करने वाला नेतृत्व ही संसाधनों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित कर सकता है। जिस दिन हम निष्काम भाव से अंतिम व्यक्ति के आँसू पोंछने को ही अपना पुरुषार्थ मान लेंगे, उसी दिन 'अंत्योदय' सार्थक होगा और 'चिति' (राष्ट्र की आत्मा) पूर्णतः जागृत होगी।

संदर्भ-सूची :

1. उपाध्याय, डी. (2015). भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा. सुरुचि प्रकाशन.
2. दत्त, डी. (2002). दीनदयाल उपाध्याय : एक दृष्टा. भारतीय विचार संस्थान.
3. देशमुख, एन. (2002). अंत्योदय से ग्रामोदय तक. दीनदयाल शोध संस्थान (DRI).
4. भारद्वाज, ए. (2017). दीनदयाल उपाध्याय : एकात्म मानव दर्शन और प्रासंगिकता. नेशनल बुक ट्रस्ट.
5. गोयल, एस. आर. (2004). दीनदयाल उपाध्याय : एक विराट व्यक्तित्व. प्रभात प्रकाशन.
6. सिंघल, एम. (2013). पंडित दीनदयाल उपाध्याय : जीवन और दर्शन. प्रभात प्रकाशन.
7. शर्मा, एम. पी. (2016). पं. दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचार. प्रभात प्रकाशन.
8. गोविंद आचार्य, के. एन. (2014). एकात्म मानवदर्शन की प्रासंगिकता. सुरुचि प्रकाशन.
9. भारद्वाज, ए. (2017). दीनदयाल उपाध्याय : एकात्म मानव दर्शन और प्रासंगिकता. नेशनल बुक ट्रस्ट.
10. संपादक– बसंत राज पंडित (2013) : वैकल्पिक मार्ग– एकात्म मानव दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, चित्रकूट।

Email:sandeepganpatrao@gmail.com, Mob: 9325580874

Email: yogwithbhushan@gmail.com, Mob: 9868347615

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 112–119

संत कबीर की साधना–पद्धति का त्रिआयामी स्वरूप : कर्म, ज्ञान और भक्ति के विशेष संदर्भ में

प्रीति रानी
शोधार्थी, योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड।

शोध सारांश :

संत कबीर भारतीय संत परम्परा के ऐसे युगद्रष्टा चिंतक हैं जिन्होंने कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वित स्वरूप के माध्यम से एक समग्र साधना–पद्धति का प्रतिपादन किया। कबीर का चिंतन किसी एक धार्मिक अथवा दार्शनिक परम्परा तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें उपनिषदों के अद्वैतवाद, योग–दर्शन, सूफी प्रेम–साधना तथा निर्गुण भक्ति की विविध धाराओं का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में कबीर की साधना–पद्धति के त्रिआयामी स्वरूप 'कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग' का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

कर्मयोग के अंतर्गत कबीर द्वारा प्रतिपादित निष्काम कर्म, अनासक्ति, सेवा–भाव तथा ईश्वर–समर्पण की अवधारणा का विवेचन किया गया है। ज्ञानयोग के संदर्भ में ब्रह्म और आत्मा की एकता, आत्मज्ञान, अद्वैत दृष्टि, माया–विमर्श तथा सामाजिक रूढ़ियों के विरोध को रेखांकित किया गया है। भक्तियोग के अंतर्गत प्रेम, नाम–स्मरण, गुरु–महिमा, आत्मसमर्पण तथा ईश्वर के साथ आत्मिक एकत्व की भावना का अध्ययन किया गया है। कबीर के अनुसार ज्ञान के बिना भक्ति अंधविश्वास में परिवर्तित हो सकती है, कर्म के बिना ज्ञान निष्प्रभावी हो जाता है तथा भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार उनकी साधना–पद्धति मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक आयामों को एक सूत्र में बाँधती है।

शब्द–कुंजी : साधना–पद्धति, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, निष्काम कर्म, आत्मज्ञान, निर्गुण भक्ति, गुरु–तत्त्व।

प्रस्तावना :

संत कबीर का सम्पूर्ण चिंतन कर्म, ज्ञान और भक्ति के त्रिवेणी–संगम पर आधारित है। उनके दर्शन में ज्ञान आत्मबोध का साधन है, कर्म जीवन की नैतिक एवं सामाजिक सक्रियता का आधार है तथा भक्ति ईश्वर से आत्मिक एकत्व की अनुभूति का माध्यम है। कबीर ने इन तीनों तत्त्वों को परस्पर पूरक मानते हुए मानव जीवन की समग्रता को स्थापित किया। संत कबीर मध्यकालीन भारतीय भक्ति आन्दोलन के उन विशिष्ट संत–चिन्तकों में अग्रगण्य हैं, जिन्होंने भारतीय समाज, धर्म और संस्कृति के पुनर्संरचनात्मक विमर्श को एक नवीन दिशा प्रदान की। वे निर्गुण भक्ति परम्परा के प्रमुख प्रवर्तक एवं सामाजिक चेतना के सशक्त संवाहक थे। कबीर का उद्भव ऐसे ऐतिहासिक कालखंड में हुआ, जब भारतीय समाज धार्मिक रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, जातिगत विभेदों तथा

सांप्रदायिक वैमनस्य से ग्रस्त था। ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने अपने विचारों एवं काव्य–सृजन के माध्यम से सामाजिक समता, आध्यात्मिक स्वातंर्त्य तथा मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। कबीर की वैचारिक दृष्टि किसी एक धार्मिक परम्परा तक सीमित नहीं थी, अपितु उसमें भारतीय आध्यात्मिक परम्परा, नाथ–सिद्ध परम्परा, सूफी चिन्तन तथा वैष्णव भक्ति के विविध तत्त्वों का समन्वित स्वरूप परिलक्षित होता है। उन्होंने ईश्वर को निर्गुण, निराकार एवं सर्वव्यापी सत्ता के रूप में स्वीकार करते हुए बाह्याडम्बरों, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्डों तथा धार्मिक पाखण्डों का तार्किक खण्डन किया। उनके अनुसार आध्यात्मिक उन्नयन का वास्तविक आधार आत्मानुभूति, प्रेम, साधना तथा गुरु–कृपा है।

साहित्यिक दृष्टि से कबीर की वाणी हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। उनकी साखियाँ, सबद एवं रमैनियाँ न केवल काव्यगत सौन्दर्य से सम्पन्न हैं, बल्कि उनमें तत्कालीन समाज की विसंगतियों का गहन विश्लेषण तथा मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रबल आग्रह भी निहित है। कबीर की भाषा लोकजीवन से संपृक्त, सरल, संप्रेषणीय एवं प्रभावोत्पादक है, जिसने उनकी वाणी को जनसामान्य तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रकार संत कबीर एक युगद्रष्टा समाज–सुधारक, मौलिक चिन्तक तथा भारतीय सांस्कृतिक समन्वय के प्रतिनिधि व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी शिक्षाएँ आज भी सामाजिक सद्भाव, धार्मिक सहिष्णुता, मानवतावाद तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए अत्यन्त प्रासंगिक एवं प्रेरणास्पद हैं। कबीर के चिंतन की विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने ज्ञान, कर्म एवं भक्ति को पृथक–पृथक साधना–पद्धतियों के रूप में न देखकर एक–दूसरे के पूरक तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार ज्ञान के बिना भक्ति अंधविश्वास में परिवर्तित हो सकती है, कर्म के बिना ज्ञान निष्प्रभावी हो जाता है तथा भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते। अतः कबीर का जीवन–दर्शन इन तीनों के समन्वित स्वरूप पर आधारित एक व्यापक मानवीय एवं आध्यात्मिक दृष्टि प्रस्तुत करता है।

संत कबीर की साधना पद्धति एवं उसका दार्शनिक आधार :

कबीर की साधना पद्धति भारतीय आध्यात्मिक परम्परा का एक अद्वितीय और समन्वयवादी स्वरूप है। इसमें उपनिषदों के अद्वैतवाद, योगदर्शन की अंतर्मुखी साधना, भक्ति आन्दोलन की प्रेम–भावना तथा सूफी मत की ईश्वरानुरक्ति का सुंदर संगम दिखाई देता है। कबीर ने धर्म को कर्मकाण्डों और रूढ़ियों से मुक्त कर उसे आत्मानुभूति, प्रेम और मानवता से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी साधना का दार्शनिक आधार निर्गुण ब्रह्म, अद्वैतवाद, अनुभववाद तथा सामाजिक समता पर आधारित है।

कर्मयोग की साधना :

संत कबीर की साधना–पद्धति में कर्मयोग का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कर्म–साधना केवल आध्यात्मिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि वह उनके जीवन–दर्शन का अभिन्न अंग बनकर सामने आती है। कबीर ने आदर्श जीवन का अनुसरण करते हुए कर्म को साधना का माध्यम माना। वे संतोषपूर्वक अपने कार्य का निर्वाह करते हुए जीवन व्यतीत करने के पक्षधर थे। उनके जीवन में कर्म और साधना का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कबीर के कर्मयोग में मुख्यतः तीन तत्त्व निहित हैं– सेवा–परायणता, अनासक्ति तथा ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण।

कबीर का कर्म निष्काम है। वे केवल वर्तमान में किए जा रहे कर्म को ही नहीं स्वीकारते, बल्कि संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों की भी चर्चा करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य के जीवन में कर्म का प्रभाव व्यापक है तथा मोक्ष की प्राप्ति का एकमात्र उपाय ईश्वर का अनुसरण करते हुए कर्म करना है। यदि कर्म में ईश्वर–भाव का अभाव हो, तो वह सहज कर्मयोग नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ईश्वर से रहित कर्म स्थायी आध्यात्मिक फल प्रदान नहीं कर सकता। कबीर का विश्वास है कि प्रत्येक कर्म के पीछे कोई न कोई प्रेरणा अवश्य होती है। सामान्यतः मनुष्य सकाम भाव से कर्म करता है, जिसके कारण उसमें कर्तापन और फलासक्ति उत्पन्न होती हैय किन्तु कर्मयोग का मार्ग इन बन्धनों से मुक्त होकर कर्म करने की प्रेरणा देता है।

कबीर कर्म–त्याग के समर्थक नहीं हैं। वे जीवन में कर्म की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं और कर्म करते हुए ही आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग खोजते हैं। स्वयं जुलाहा होते हुए उन्होंने अपने व्यवसाय को साधना का माध्यम बनाया। उनके लिए करघा केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभव का प्रतीक था। वे कहते हैं –

धरनि अकास की करगह बनाई, चंद सूरज दुइ साथ चलाई।[1]
पाई जोरि बात इक कीनी, तह ताती मन माना।।
जोलाहे घर अपना चीना, घट ही राम पछाना।
कहत कबीर कारगाह तोरी, सूतै सूत मिलाये कोरी।।

इन पंक्तियों में कबीर ने सम्पूर्ण सृष्टि को एक विराट करघे के रूप में चित्रित किया है और यह बताया है कि साधक अपने दैनिक कर्मों के माध्यम से भी ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है।

कबीर के अनुसार संसार में रहते हुए भी निष्काम कर्म किया जा सकता है। उनका स्पष्ट मत है कि कोई भी मनुष्य कर्म किए बिना नहीं रह सकता। जीवन का प्रत्येक क्षण किसी न किसी कर्म से जुड़ा हुआ है। कर्म से ही मनुष्य का विकास होता है और कर्म के द्वारा ही आत्मशुद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। कबीर कहते हैं–

कबीर जे धंधै तौ धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं।[2]
तै नर बिनठे भूलि, जिनि धंधै में ध्याया नहीं।।

अर्थात् कर्म करने से मनुष्य का पतन नहीं होता, बल्कि वह कर्म विनाशकारी है जिसमें ईश्वर का स्मरण और आध्यात्मिक चेतना का अभाव हो।

कबीर का यह दृष्टिकोण भारतीय कर्मयोग की उस परम्परा से जुड़ा हुआ है जिसका सर्वाधिक सुस्पष्ट प्रतिपादन भगवद्गीता में मिलता है। गीता में कहा गया है कि कर्म–संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग श्रेष्ठ है। कर्मयोगी व्यक्ति आसक्ति का त्याग करके शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा केवल अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करता है –

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।[3]
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽत्मशुद्धये।।

कबीर भी इसी भाव को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार कर्मों का पूर्ण त्याग सम्भव नहीं है, वास्तविक त्याग कर्मफल की आसक्ति का त्याग है। जब मनुष्य राग–द्वेष से मुक्त होकर कर्म करता है, तभी वह कर्मयोग की अवस्था को प्राप्त करता है। वे कहते हैं –

जैसे सती तजै श्रृंगार, ऐसे जियरा करम निवार।[4]
राग-दोष दहूँ में एक न भाषी, कदाचित उपजै चिता न राशी।।

कबीर की दृष्टि में कर्म की व्यापकता सर्वत्र विद्यमान है। वे उस कर्म को श्रेष्ठ मानते हैं जो ईश्वर के प्रति समर्पित होकर किया जाए। इसके विपरीत फलासक्ति से प्रेरित कर्म को वे अधम और बन्धनकारी बताते हैं। ऐसे कर्म को वे 'कूरी बनजी' अथवा 'खारी बनजी' कहकर उसकी निन्दा करते हैं –

तब काहू भूलौ बनजारे, अब आयौ चाहे संगि हमारे।[5]
जब हम बनजी लौंग सुपारी, तब तुम्ह काहे बनजी खारी।।
जब हम बनजी परमल कस्तूरी, तब तू काहे बनजी कूरी।
अमृत छोड़ि हलाहल खाया, लाभ-लाभ करि मूल गँवाया।।
कहै कबीर हँस बनजिया सोई, जाँथै आवागमन न होई।।

इन पंक्तियों में कबीर ने सांसारिक लाभ–हानि में उलझे मनुष्य की तुलना ऐसे व्यापारी से की है जो अमृत छोड़कर विष का चयन करता है। सच्चा व्यापारी अर्थात् सच्चा साधक वही है जो ऐसे कर्म करे जिससे जन्म–मरण के बन्धन समाप्त हो जाएँ।

निष्काम कर्म भारतीय चिंतन की प्राचीन और महान धरोहर है। इसका विकास उपनिषदों में हुआ तथा भगवद्गीता में इसे सुव्यवस्थित दार्शनिक आधार प्राप्त हुआ। कबीर ने इसी निष्काम कर्म की भावना को अपने जीवन–दर्शन में आत्मसात करते हुए उसे ईश्वरार्पण कर्मयोग के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके अनुसार कर्म करते समय अहंकार और स्वामित्व–बोध का त्याग आवश्यक है। वे कहते हैं –

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।[6]
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै मेरा।।

इस पद में कबीर के कर्मयोग का चरम स्वरूप व्यक्त हुआ है। यहाँ साधक अपने समस्त कर्मों, उपलब्धियों और अस्तित्व को ईश्वर को समर्पित कर देता है। जब 'मैं' और 'मेरा' का भाव समाप्त हो जाता है, तभी निष्काम कर्म की वास्तविक सिद्धि होती है। इस प्रकार कबीर का कर्मयोग भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में प्रतिपादित निष्काम कर्म सिद्धान्त का लोकानुभव से समृद्ध स्वरूप है। इसमें कर्म, भक्ति और ज्ञान का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कबीर के लिए कर्म केवल सांसारिक उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि आत्मोन्नति, ईश्वर–साक्षात्कार और मोक्ष की प्राप्ति का सशक्त साधन है। यही उनकी कर्म–साधना की विशिष्टता और दार्शनिक महत्ता है।

ज्ञानयोग की साधना :

1. ब्रह्म और आत्मा का ज्ञान -

कबीर के ज्ञानमार्ग का मूल आधार ब्रह्म और आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। उनके अनुसार ब्रह्म निराकार, अनन्त और सर्वव्यापी है, जिसका अनुभव बाह्य कर्मकाण्डों से नहीं, बल्कि आत्मज्ञान के माध्यम से किया जा सकता है। कबीर मानते हैं कि मनुष्य के भीतर ही परमात्मा का निवास है, इसलिए उसे बाहर खोजने के स्थान पर अपने अंतर्मन में खोजा जाना चाहिए। मन की चंचलता और अज्ञान ही आत्मबोध में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। अतः मन को नियंत्रित कर आत्मचिंतन करना ज्ञानमार्ग की पहली आवश्यकता है। इस प्रकार कबीर के अनुसार आत्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव ही वास्तविक ज्ञान है।

2. द्वैत और अद्वैत का समन्वय –

कबीर के दर्शन में अद्वैत भावना प्रमुख है, किन्तु उन्होंने इसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया। वे आत्मा और परमात्मा को मूलतः एक ही सत्ता मानते हैं। उनके अनुसार जीव और ब्रह्म के बीच जो भेद दिखाई देता है, वह अज्ञान का परिणाम है। जब ज्ञान का प्रकाश होता है, तब यह भेद समाप्त हो जाता है और साधक अपने भीतर परमात्मा का अनुभव करता है। इस प्रकार कबीर का अद्वैतवाद केवल दार्शनिक सिद्धान्त न होकर आत्मानुभूति पर आधारित जीवन–दृष्टि है।

3. आडम्बर, जातिवाद और धार्मिक पाखण्ड का विरोध –

कबीर ने ज्ञानमार्ग के संदर्भ में धार्मिक आडम्बर, जातिगत भेदभाव तथा कर्मकाण्डों का तीव्र विरोध किया। उनका मानना था कि ईश्वर की प्राप्ति किसी विशेष जाति, सम्प्रदाय या बाह्य पूजा–पद्धति से नहीं होती। सच्चा धर्म मानवता, सत्य और आत्मज्ञान में निहित है। इसलिए उन्होंने सामाजिक भेदभाव और धार्मिक पाखण्ड का खण्डन करते हुए ज्ञान और सदाचार को अधिक महत्व दिया।

4. मानवता, प्रेम और करूणा का महत्व –

कबीर के अनुसार ज्ञान का अंतिम लक्ष्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि मानवता, प्रेम और करुणा का विकास है। उन्होंने प्रेम को ईश्वर तक पहुँचने का सर्वोत्तम साधन माना। उनके विचार में ज्ञान और भक्ति तभी सार्थक हैं जब उनमें प्रेम और सहानुभूति का समावेश हो। इसलिए कबीर का ज्ञानमार्ग मानव कल्याण, समता और विश्वबंधुत्व की भावना से ओत–प्रोत है।

5. कबीर की रचनाओं में ज्ञानमार्ग का स्वरूप –

कबीर की रचनाएँ 'साखी, रमैनी और बीजक' ज्ञानमार्ग के सिद्धान्तों का सरल और प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण करती हैं। इन रचनाओं में आत्मज्ञान, ब्रह्म की अनुभूति, सामाजिक सुधार तथा मानवता के आदर्शों का समन्वित चित्रण मिलता है।

- **साखी में ज्ञानमार्ग :**

कबीर की साखियों में ज्ञानमार्ग के मूल सिद्धान्त अत्यन्त सरल भाषा में व्यक्त हुए हैं। इनमें आत्मा और परमात्मा की एकता, आत्मचिन्तन तथा ब्रह्मज्ञान का महत्व प्रतिपादित किया गया है। साखियाँ साधक को बाह्य आडम्बरों से हटाकर आत्मबोध की ओर प्रेरित करती हैं।

- **रमैनी में ज्ञानमार्ग :**

रमैनी में कबीर ने जीवन की नश्वरता, आत्मा के रहस्य तथा सद्गुरु के महत्व का वर्णन किया है। यहाँ ज्ञान को जीवन की वास्तविकता को समझने और आत्मिक उन्नति का साधन बताया गया है। रमैनी मनुष्य को अपने भीतर स्थित सत्य की खोज करने का संदेश देती है।

- **बीजक में ज्ञानमार्ग :**

बीजक कबीर के दार्शनिक चिंतन का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसमें ज्ञानमार्ग का गहन और गंभीर विवेचन मिलता है। कबीर ने स्पष्ट किया है कि सच्चा ज्ञान केवल पुस्तकों के अध्ययन से प्राप्त नहीं होता, बल्कि आत्मानुभूति और साधना से प्राप्त होता है। बीजक में ज्ञान को मुक्ति तथा ब्रह्म–साक्षात्कार का सर्वोत्तम साधन बताया गया है।[10] इस प्रकार कबीर का ज्ञानमार्ग आत्मज्ञान, प्रेम, मानवता और ब्रह्मानुभूति पर

आधारित है। उनकी समस्त वाणी मनुष्य को अज्ञान, पाखण्ड और भेदभाव से मुक्त होकर सत्य और आत्मबोध की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है।

भक्तियोग की साधना :

कबीर के भक्तियोग का आधार प्रेम है। वे मानते हैं कि ईश्वर तक पहुँचने का सबसे सरल और प्रभावी मार्ग प्रेम–भक्ति है। उनके अनुसार जिस हृदय में प्रेम नहीं है, वहाँ न भक्ति संभव है और न ही ईश्वर का साक्षात्कार। इसी कारण वे कहते हैं –

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।[7]
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

कबीर की भक्ति में दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य भावों का सुंदर समन्वय मिलता है। वे कभी स्वयं को ईश्वर का दास मानते हैं, कभी मित्र और कभी विरहिणी नायिका के रूप में परमात्मा से मिलन की आकांक्षा व्यक्त करते हैं। उनकी भक्ति का प्रमुख स्वर प्रेम और विरह है। विरह की पीड़ा को वे आत्मा और परमात्मा के मिलन की साधना का आवश्यक अंग मानते हैं।

कबीर ने भक्तियोग में गुरु को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके अनुसार गुरु ही वह माध्यम है जो साधक को ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाता है। गुरु की कृपा के बिना न तो ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न ही सच्ची भक्ति। इसलिए वे कहते हैं –

गुरू गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूँ पाय।[8]
बलिहारी गुरू आपने, गोविन्द दियो बताय।।

कबीर की भक्ति आडम्बर–विरोधी है। उन्होंने मूर्तिपूजा, बाह्य कर्मकाण्ड, जाति–पाँति और धार्मिक पाखण्ड का विरोध करते हुए हृदय की पवित्रता को भक्ति का आधार माना। उनके अनुसार ईश्वर मंदिर, मस्जिद या तीर्थों में नहीं, बल्कि प्रत्येक जीव के हृदय में निवास करता है–

मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।[9]

कबीर के भक्तियोग में नाम–स्मरण का विशेष महत्व है। वे मानते हैं कि राम–नाम का निरन्तर स्मरण साधक को ईश्वर के निकट ले जाता है और उसके मन को निर्मल बनाता है। यह नाम केवल शब्द नहीं, बल्कि परम सत्य का प्रतीक है।

परमात्मा के साथ एकात्मभाव की अभिव्यक्ति के लिए कबीर ने अपने आराध्य के साथ वात्सल्य भाव के सम्बन्ध स्थापित किये हैं। वे अपने आराध्य को कभी बाप कहकर सम्बोधित करते हैं, तो कभी ममतामयी जननी मान कर उसकी शरण में चले जाते हैं। इस प्रकार स्वयं को पुत्र बताने पर जीव और ब्रह्म के बीच द्वैत भाव का आ जाना स्वाभाविक है। किन्तु कबीर द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों की वर्णन शैली में अद्वैत की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। आत्मा एक पुत्र के रूप में स्वाभाविक प्रेम के कारण परमात्मा पिता से मिलना चाहती है, किन्तु बीच में माया का व्यवधान पड़ जाने के कारण मिलन नहीं हो पाता, इस भाव की कबीर ने बड़े सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्ति की है, कि आत्मा रूपी पुत्र, प्रभु रूपी पिता के प्रेम के कारण उसके साथ दौड़ पड़ा, किन्तु वह पिता लोभ की मिठाई पुत्र के हाथ में देकर स्वयं को छिया गया,

पूत पियारो पिता कौं, गौंहनि लागा धाइ।[10]

लोभ मिठाई हाथि दै, आपुन गया भुलाइ।।

लोभ रूपी मिठाई की सारहीनता जानने पर आत्मा रूपी पुत्र ने उसे फैंक दिया। उसे अपने कृत्य पर आक्रोश हुआ कि तुच्छ मिठाई के कारण उसने अपने पिता को छोड़ दिया। इस वियोग में वह पुत्र (आत्मा) वेदना का अनुभव कर रोने लगा और रोते रोते अपने प्रिय पिता (परमात्मा) तक जा पहुँचा –

डारी खाँड पटकि करि, अतरि रोस उपाइ।[11]

रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ।।

कबीर का प्रेम सगुण भक्त जैसा होने पर भी सगुण उपासना पद्धति से भिन्न है। क्योंकि मूलतः कबीर निर्गुणी साधक एवं चिन्तक थे। कबीर काव्य में प्राप्त कुछ पदों के आधार पर कबीर को एक सच्चा रहस्यवादी साधक सिद्ध किया जा सकता है। वे तात्त्विक रूप से आत्मा और परमात्मा को अभिन्न मानते हैं। उन्होने सच्चे रहस्यवादी साधक की तरह भक्तियोग साधना द्वारा अपने मन का पूर्ण परिष्कार करके उसमें परमसत्य परमात्मा का प्रेम प्रकाशित किया, जिससे उसका संशय मिट गया तथा परमप्रिय से सान्निध्य होने पर परमानन्द की उपलब्धि हुई।

निष्कर्ष :

संत कबीर की साधना–पद्धति भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की एक समन्वयवादी और जीवनोपयोगी परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने कर्म, ज्ञान और भक्ति को साधना के तीन पृथक मार्गों के रूप में न देखकर एक–दूसरे के पूरक एवं परस्पर आश्रित तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया। कबीर के अनुसार निष्काम कर्म मनुष्य को सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिकता का बोध कराता है, ज्ञान उसे आत्मबोध तथा सत्य के साक्षात्कार की ओर अग्रसर करता है, जबकि भक्ति उसके हृदय को प्रेम, समर्पण और ईश्वरानुभूति से आलोकित करती है। इन तीनों के समन्वय से ही मानव जीवन की पूर्णता संभव है। इस प्रकार कबीर की त्रिआयामी साधना–पद्धति 'कर्म, ज्ञान और भक्ति' भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर तथा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का एक आदर्श प्रतिमान है।

संदर्भ – सूची :

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2019). कबीर. राजकमल प्रकाशन।
2. चतुर्वेदी, परशुराम. (2016). कबीर साहित्य की परख. लोकभारती प्रकाशन।
3. दास, श्यामसुन्दर. (Ed.). (2018). कबीर ग्रंथावली. नागरी प्रचारिणी सभा।
4. बीजक. (2017). कबीर चौरा मठ प्रकाशन।
5. वर्मा, रामकुमार. (2015). कबीर का रहस्यवाद. साहित्य भवन।
6. सिंह, रामचन्द्र. (2014). संत कबीर और उनका दर्शन. विश्वविद्यालय प्रकाशन।
7. पाण्डेय, रामखेलावन. (2012). निर्गुण काव्यधारा और कबीर. लोकभारती प्रकाशन।
8. शुक्ल, रामचन्द्र. (2018). हिन्दी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन।
9. चतुर्वेदी, सीताराम. (2013). कबीर और कबीर पंथ. हिन्दी साहित्य सम्मेलन।
10. दास, अभिलाष (2008). कबीर का जीवन और दर्शन। कबीर पारख संस्थान।
11. दास, अभिलाष (2006). कबीर पर शुक्ल की और मेरी दृष्टि। कबीर पारख संस्थान।

Email: scientficyoga.preeti@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 119–123

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित राष्ट्रीय कवि दिनकर : एक अध्ययन

डॉ. अमलपुरे सूर्यकांत विश्वनाथ
सहयोगी प्राध्यापक तथा हिंदी विभागाध्यक्ष,
डॉ. श्री. नानासाहेब धर्माधिकारी महाविद्यालय गोवे –कोलाड, ता–रोहा, जिला – रायगड (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना :

ज्ञानपीठ पुरस्कार भारतीय ज्ञानपीठ न्यास द्वारा भारतीय साहित्य के लिए दिया जाने वाला सर्वोच्च पुरस्कार है। भारत का कोई भी नागरिक जो आठवीं अनुसूची में बताई गई २२ भाषाओं में से किसी भाषा में लिखता हो इस पुरस्कार के योग्य है। पुरस्कार में ग्यारह लाख रुपये की धनराशि, प्रशस्तिपत्र और वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा दी जाती है। १९६५ में १ लाख रुपये की पुरस्कार राशि से प्रारंभ हुए इस पुरस्कार को २००५ में ७ लाख रुपए कर दिया गया जो वर्तमान में ग्यारह लाख रुपये हो चुका है। २००५ के लिए चुने गये हिन्दी साहित्यकार कुंवर नारायण पहले व्यक्ति थे जिन्हें ७ लाख रुपए का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार १९६५ में मलयालम लेखक जी शंकर कुरुप को प्रदान किया गया था। उस समय पुरस्कार की धनराशि १ लाख रुपए थी। १९८२ तक यह पुरस्कार लेखक की एकल कृति के लिये दिया जाता था। लेकिन इसके बाद से यह लेखक के भारतीय साहित्य में संपूर्ण योगदान के लिये दिया जाने लगा। अब तक हिन्दी तथा कन्नड़ भाषा के लेखक सबसे अधिक सात बार यह पुरस्कार पा चुके हैं। यह पुरस्कार बांग्ला को ५ बार, मलयालम को ४ बार, उड़िया, उर्दू और गुजराती को तीन–तीन बार, असमिया, मराठी, तेलुगू, पंजाबी और तमिल को दो–दो बार मिल चुका है। प्रख्यात मलयाली कवि अक्कीतम अच्युतन नंबूदिरी को 55वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जाएगा। ज्ञानपीठ चयन बोर्ड ने उनका चयन वर्ष 2019 के ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिये किया है।

राष्ट्रीय कवि दिनकर : एक अध्ययन :

उनके काव्य में राष्ट्रबोध या राष्ट्रीय भावना तो इतनी एकरस है कि उसके सरोकार से ही दिनकर राष्ट्रीय कवि या राष्ट्र के कवि के रूप में स्वयं सिद्ध है। किन्तु उस राष्ट्रीयता का स्वरूप इतना बहुआयामी है कि, जिसे अलग–अलग बिन्दुओं से विश्लेषित करना, परखना और प्रस्तुत करना अति आवश्यक है। राष्ट्रीयता कोई एक भौगोलिक परिवृत्त नहीं है, वह एक गतिशील प्रवाह है जो उस भौगोलिक परिवृत्त को अर्थवान बनाता है। वह एक चेतन समूह का कमाया हुआ रस है जो जड़ तत्वों को एक सार्थक व्यत्तित्व देता है। साहित्यकार राष्ट्रीयता को इसी रूप में स्वीकार करता है। इसके लिए विशेषतः भाषा एक महत्वपूर्ण उपादान है क्योंकि, वह सामाजिक एवं

राजनीतिक संघर्ष का प्रमुख माध्यम है और सबसे बढ़कर वह सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन, विज्ञान तथा लोक साहित्य के उदात्त रूपों का भौतिक आधार होती है। अतः यह निर्विवाद है कि, जहाँ ये सभी साधन समुपस्थित हो और अपनी पूरी जागरूकता या प्रगति के पथ पर अग्रसर हो तो वह राष्ट्र सभी क्षेत्रों में एवं प्रत्येक अर्थों में प्रगतिशील तथा शिखरस्थ होता है। इसलिए राष्ट्र के प्रति बौद्धिक चिन्तन एवं रागात्मक वृति को ही हम दिनकर की राष्ट्रीयता के स्वरूप में संकलित करते हैं। संस्कारगत रूप में देखें तो भारत में प्राचीन काल से ही राष्ट्र भावना के दर्शन होते हैं। वैदिक सूक्तों में राष्ट्र भावना के सशक्त स्वर और उनकी अनुगूँज सुनाई देती है। यही स्वरुप पाणिनि के व्याकरण में भी उद्घाटित हुआ है। हमारे देश में भिन्न–भिन्न भाषाएँ, और अलग–अलग धर्म सम्प्रदाय हैं फिर भी देश समय–समय पर सभी क्षितिजों को आवृत करता हुआ एक महाकाश बन रहा है। कवि दिनकर जी राष्ट्रीय चेतना के बारे में अपने काव्य में कहते हैं – 'संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किंतु मन मेरा भी चाहता था कि गर्जन–तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएँ लिखूँ जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो और सुःख तो मुझे हुंकार से ही मिला, किंतु आत्मा मेरी अब भी रसवंती' में बसती है। राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी उसने बाहर से मुझे आक्रांत किया। राष्ट्रीय काव्य की प्रेरणा में देश–प्रेम की भावना होती है। अर्थात मातृभूमि के प्रति प्रेम राष्ट्रीय तत्वों में से एक प्रमुख तत्व है।'

दिनकर जी ने भी मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना अपनी कविताओं में व्यक्त की है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले संघर्ष से जुड़े हुए नेताओं के प्रति दिनकर जी के मन में बड़ी आस्था थी। इसीलिए 'प्रण–भंग' और 'रेणुका' की अनेक कविताओं में दिनकर जी की काव्य–चेतना देशप्रेम से अनुप्राणित होकर अतीत की प्रेरक एवं महत्वपूर्ण घटनाओं के विश्व में रमी है। मातृभूमि के हिमकिरीट हिमालय को एक तपलीन यति के रूप में कल्पित करके उसका वर्णन उन्होंने 'हिमालय' शीर्षक कविता में किया है। कवि हिमालय को जगाकर स्वातंर्त्य–यज्ञ में सहभागी होने के लिए अनुरोध करते हैं –

'मेरे नगपतिमेरे विशाल। साकार, दिव्य, गौरव विराट।
पौरूष के पूँजीभूत ज्वाल। मेरी जननी के हिम-किरीट।
मेरे भारत के दिव्य भाल। मेरे नगपति मेरे विशाला।'–[१]

'नील कुसुम' में संग्रहित 'किसको नमन करूं' नामक कविता में कवि ने भारत माता को वंदन करते हुए उसके माध्यम से भारत की प्राकृतिक सुषमा का एक दिव्य एवं भव्य चित्र हमारे सम्मुख रखा है।

जैसे – **'तुझको या तेरे नदीश, गिरी, वन को नमन करूँ मैं?**
मेरे प्यारे देश। देह या मन को नमन करूं मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत। किसको नमन करू मै।'–[२]

इस प्रकार कवि ने मातृभूमि के उदगार अंकित किए हैं, किंतु इस कविता में मातृभूमि की व वंदना अभिप्रेत नहीं है, उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति देखकर कवि के मन में जो आक्रोश उत्पन्न हुआ उसी का संकेत दिया है।

'ध्वजा वंदना' नामक कविता में कवि ने राष्ट्रीय ध्वज के प्रति अपनी श्रद्धा के फूल अर्पित करते हुए अपने देश–प्रेम को अभिव्यक्त किया है – **जन-जन की आँखों का तारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।**

इस तरह राष्ट्रकवि अपने देश की धरती और जनता से प्रेम करता है, उसके हदय में देश के प्रति अपना सब कुछ अर्पित करने वाले जननायकों के प्रति अप्रतिम श्रद्धा होती है। कवि दिनकर कहते है कि – हर युग में ऐसे कवि तो होते ही हैं जिनका रुझान राष्ट्रीय भावनाओं की ओर होता है। किन्तु विशेष परिस्थितियों में इस प्रकार का काव्य सृजन बढ़ जाता है। दिनकर के इस क्रांति सूचक आह्वान में केवल राष्ट्रीयता नहीं बल्कि राष्ट्रीयता की ऐसी मुद्रा की प्राप्ति होती है, जिसमें साम्यवाद प्रेरित क्रान्ति के स्वर घुले मिले हैं।' दिनकर की राष्ट्रीयता का यही प्रगतिशील रूप है जो 'दिगम्बरी' और 'विपगाथा' बनकर कवि की राष्ट्रीयता में प्रत्यक्ष होती है। भारतीय संस्कृति में संस्कारिता को जानने के लिए भी पौरानिक मिथकों का सहारा लेते हैं और तपस्वी की मुद्रा में आसीन बरफीले हिमालय को भी हिलाने की प्रार्थना करते हैं।

'हाहाकार' नामक हुंकार कविता में कवि ने जो भारत के भविष्य या शिशुओं का तथा उनकी माताओं का शोषित करूण चित्र अंकित किया है। इससे लगता है कि कवि नौनिहालों के सूखे होठ अपनी आँखों से नहीं देख पाता, आर्थिक असमानता का इतना करूण और क्रान्तिकारी दृश्य सचमुच अन्यत्र दुर्लभ है। लगता है मुँह में जीभ नहीं रही, भुजाओं में शक्ति नहीं रही और जीवन में तो सुख का नाम निशान ही नहीं, फिर रोटी, कपड़ा और मकान की तो बात ही क्या? माँ का दूध भी मुहाल है और बाहर तो पी–दूध की नदियाँ बहती थीं–यहीं भी सपना भी लगता है। अतः कवि गंगा से भी कहता है कि पानी को दूध में बदल दे और देवताओं से भी कहता है कि आसमान से पानी न सही दूध की कुछ बूंदे ही टपका दें–

'मुख में जीभ, शक्ति भुज में, जीवन में सुख का नाम नहीं है,
बसन कहाँ? सूखी रोटी भई मिलती दोनों शाम नहीं है।'– [३]

इस तरह से कवि ने शोषित करूण चित्र अंकित किया है। निःसन्देह रामधारी सिंह दिनकर के बन्धुत्वादी संस्कार बडे तीव्र और प्रबल है, चाहे वह राष्ट्रीय जीवन को भ्रष्टाचार से मुक्त करने की बात हो या राष्ट्रीय सुरक्षा और सम्मान से प्रेरित होकर देश को शक्तिशाली बनाने की बात हो, सर्वत्र ही कवि का बंधुभाव सक्रिय रहा है। दिनकरजी के लिए देश–प्रेम देश में रहने वाले कोटि–कोटि बन्धुओं का ही पर्याय है। डॉ. मधुबाला इस संदर्भ में कहती है – 'परशुराम की प्रतीक्षा' कविता जिसकी मूल संवेदना राष्ट्रीय है, वहाँ भी कवि बान्धव–भाव के राष्ट्रीय क्षितिज को अतिक्रमण कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज की ओर उन्मुख हुई थी, 'परशुराम की प्रतिक्षा' में भी अपनी ऊर्ध्वगामी गति बनाये रखी है।' राष्ट्रीय एकता में जातीय एकता का विशेष महत्व है। म. गाँधी जी ने इसलिए जातिगत विषमता का निर्मूलन करने के लिए एक मार्ग के रूप में मागास जातियों के उत्थान का प्रयास किया है। उन्होंने दलितों के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाकर उन्हें समाज का एक अभिन्न अंग बनाना चाहते थे। दिनकर जी ने भी युगधर्म निभाते हुए, देशवासियों को जातिगत वैषम्य के कारण अनेक बार सांप्रदायिक दंगो का विस्फोट हुआ था। जातियों के बीच के वैमनस्य को दिनकर जी स्वतंत्रता प्राप्ति के मार्ग में बाधक समझाते थे। ऐसी घटनाओं से भावुक हृदय दिनकर जी ने भयचकित और लज्जित हो गए और उन्होंने अपनी ग्लानि इन शब्दों में व्यक्त की – 'ओ बदनसीब। इस ज्वाला में, आदर्श तुम्हारा जलता है, समझायें कैसे तुम्हें कि, भारतवर्ष तुम्हारा जलता है।'

राष्ट्रीयता के लिए बलिदान की भावना दिनकरजी के काव्यकृतियों में उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। देश भर में स्वाधीनता का आंदोलन जैसे–जैसे जोर पकड़ता गया, वैसे ही अंग्रेजो का दमनचक्र भी जोर–शोर से चलने लगा

और शासन का दण्ड भी प्रतिदिन कठोर बनता गया। आंदोलनकारियों को उनके कार्यों से परावृत्त करने के लिए सरकार की ओर से तरह–तरह की यातनाएँ दी जाने लगी। किंतु सत्याग्रही देशभक्त अपने प्रण से रंचमात्र भी नहीं हटे, बल्कि स्वातंर्त्य–यज्ञ में आहुति चढ़ाने के लिए एक से बढ़कर वीर देश–सेवक सामने आने लगे। आत्म बलिदान की यह बेजोड़ उमंग तत्कालीन राष्ट्रीय कवियों की कविताओं में प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक था। इस काल के लगभग सभी कवियों की राष्ट्रीय रचनाओं में हमें बलिदान की भावना के दर्शन होते हैं। दिनकर जी की काव्यकृतियों में बलिदान की चेतना अत्यधिक तीव्रता एवं प्रखरता के साथ अवतीर्ण हुई है। भारत माता की प्रतिष्ठा के रक्षार्थ आत्मार्पण के लिए सन्नद्ध अनेक वीरों के बलिदान को दिनकर जी ने अपनी कविताओं में अमर बना दिया है। मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए त्यागपूर्वक देश की बलिवेदी पर मर मिटने का महान संदेश कवि ने देशवासियों को दिया है– 'सिर की कीमत का भान हुआ, तब त्याग कहाँ, बलिदान कहाँ? गरदन इज्जत पर दिये फिरो, तब मजा यहाँ जीने का है।'

दिनकर जी ने अपनी कतिपय कविताओं में शहीदों के चरणों में अपने श्रद्धा फूल चढ़ाए हैं। उनके हृदय में शहीदों के बलिदान के प्रति सदैव आदर की भावना रही है। शहीदों का बलिदान कवि के लिए राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से सदा ही प्रेरणाप्रद रहा है। देश के स्वातंर्त्य यज्ञ में अगणित ज्ञात–अज्ञात बोरों ने अपनी प्राणाहुति दे दी थी। इनसे स्फूर्ति लेकर देश पर सब कुछ न्योछावर करने का संदेश दिनकर जी ने देशवासियों को अपनी अनेक कविताओं के माध्यम से दिया है। कवि ने महान बलिदानियों का स्मरण कर देशवासियों को राष्ट्रीय एकता के लिए प्रेरित किया है– 'रणभेरी बज चुकी, कौन बलि के हित ललचाते हैं? बाट जोहती माँ देखे, कितने यतीन आते हैं। इस तरह से जान हथेली पर लेकर देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले भारत जननी के वीर पुत्रों की स्मृतियों को अपनी कविताओं मे अक्ति करके दिनकर जी ने नौजवानों को स्वतंत्रता की बलिवेदी पर आत्माहुति देने के लिए प्रोत्साहित किया है।

हिंदी साहित्य में दिनकर जी की पहचान राष्ट्र कवि के रूप में है। उनका साहित्य राष्ट्रीय जागरण का जीता जागता प्रमाण है। दिनकर जी के द्वारा रचित कई रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना उभर कर सामने आती है, जैसे 'हुंकार', 'रेणुका', 'इतिहास के आंसू' जैसे कविता में दिनकर जी ने विद्रोह और विप्लव के स्वर को उभारा है। यह सब तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति के लिए अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ। उनका अधिकांश साहित्य राष्ट्रीय चेतना से भरा है, जब चीन से उन दिनों हमारे भारत देश का युद्ध चल रता था, तब दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' कविता अत्यंत प्रसिद्ध हुई इस कविता में देश के सैनिकों को अहिंसा, त्याग कर पौरुष बनने का आह्वान किया गया। सन १९६२ में भारत–चीन युद्ध के दौरान कवि दिनकर जी ने 'परशुराम की प्रतीक्षा' कविता में देश नौजवान पुरुषों को जागृत करते हुए सिंह गर्जना की थी –

'वैराग्य छोड बाहों की विभा संभालो।
चट्टानों की छाती से दूध निकालो।
ही रूकी जहां धार शिलाएं तोड़ो।
पीयूष चंद्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।
चढ़ तुम शैल शिखरों पर सोम पियारे।
योगिया नहीं विजयी सदृश्य जियो रे।'–[४]

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन के अनुरूप हम निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि, दिनकर जी असमानता पर आधारित उस सामाजिक व्यथा पर भी चोट करते हैं। जिसमें लाख परिश्रम करने पर उनकी सूरत नहीं बदलती कभी कहते हैं, कितना अच्छा होता कि, सभी लोग कर्मशील होते और सभी का जीवन खुशहाल होता की, दलित, गरीब और किसानों के प्रति संवेदनशीलता उनकी राष्ट्रीय भावना की महत्वपूर्ण विशेषता है। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों के खिलाफ दिनकर का काव्य मानवता का प्रतीक बनकर सामने आया है। इस प्रकार की अनीति अमानवीयता, मानवीयता अन्याय के खिलाफ उनकी कविता विद्रोह करती है। वस्तुतः दिनकर संवेदनशील कवि है। उनका अधिकांश साहित्य राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है। उन्होंने सामाजिक उत्थान–पतन और आंदोलन से प्रभावित होकर काव्य सृजन किया है। देश पर जब–जब संकट के बादल गिरते हैं, मानव जीवन संघर्ष में जूझने लगता है। तब तक दिनकर की कविता जनमानस में ऊर्जा का संचार करती है। उनकी कविता देश के संस्कृति, सभ्यता, भाषा, परंपरा और आदर्श आदि की अनूठी एकता की आधारभूमि प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

१. दिनकर –हिमालय, पृ. ३४

२. दिनकर – किसको नमन करूँ, पृ. ५२

३. दिनकर – हुंकार, पृ. ५०

४. दिनकर –परशुराम की प्रतीक्षा, पृ. ४४

मो –9766731470

Email : sureshamalpure05@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 124–129

तमिल संगम : एक सांस्कृतिक अध्ययन

सृष्टि झा
एम. ए. नेट (इतिहास)
इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी, दिल्ली।

शोध का सार :

संगम युग की अवधि तय करना मुश्किल कार्य है परन्तु अधिकांश विद्वान 300 ई0 पू0 से 300 ई0 के काल पर सहमत हुए हैं। यह प्राचीन दक्षिण भारत के इतिहास की विस्तृत जानकारी देने वाला एकमात्र स्त्रोत है जिससे हमें चोल, चेर, पांड्य राजवंशों एवं उनकी राजनैतिक तथा सैन्य संरचना और सामाजिक जीवन की जानकारी प्राप्त होती है जो भारत के गौरवशाली अतीत का एक महत्वपूर्ण भाग है।

प्रस्तावना :

प्रायद्वीपीय भारत का दक्षिणतम भाग जिसे तमिलकम् प्रदेश कहा जाता था, कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियाँ के मध्य अवस्थित था। तक का तमिल क्षेत्र वर्त्तमान तमिल क्षेत्र से अधिक वृहद था जो कि वर्त्तमान में प्राकृतिक कारणों से समुद्र विलीन है। सर्वप्रथम अशोक के अभिलेख संख्या दो एवं तेरह में चोल, चेर (सथियपुत) एवं पाण्ड्य का स्वतंत्र राज्यों के रूप में वर्णन है, उसके अभिलेखों में इन राज्यों को दक्षिण बाह्य सीमावर्ती राज्यों की संज्ञा दी गई है। मेगास्थनीज एवं कौटिल्य ने भी इन राज्यों का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में दक्षिणापथ एवं व्यापारिक मार्गो तथा ताम्रपर्णी नदी का उल्लेख किया है परन्तु उपरोक्त सारे साक्ष्य संगम काल की पर्याप्त जानकारी देने में असमर्थ हैं। संगम शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग नयनार संत अप्पार (तिरूना) ने किया था। तमिल साहित्य शिल्पादिकारम से हमें श्रीलंका शासक गजबाहु प्रथम के चेर शासक शेनगुट्टवन द्वारा कन्नगी मंदिर निर्माण समारोह में सम्मिलित होने का वर्णन प्राप्त होता है।

संगम का अर्थ तमिल कवियों की सभा से है, यह काल साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रूप से काफी समृद्ध था। इस समय संगम राज्य आर्थिक रूप से एवं विदेशी व्यापार के मामले में चरम पर था।

यह काल समृद्ध इतिहास, उन्नत संस्कृति, कला एवं सामाजिक जीवन तथा अंतर्राष्ट्रीय संपर्क को समझने का मुख्य आधार है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. संगम काल में रचित ग्रंथों के महत्व का अध्ययन करना।
2. संगम काल में विदेशी व्यापार एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
3. इस काल की कृषि एवं अनुसंधान का वर्णन करना।

4. समाज में महिलाओं की दशा एवं शासन तथा आर्थिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी का मूल्यांकन।
5. संगम काल की सैन्य संरचना का अध्ययन करना।
6. इस समय की सामाजिक संरचना का अध्ययन करना।

ऐतिहासिकता :

सुदूर दक्षिण भारत में माहापाषाण काल के अंतिम चरणों में चोल, चेर एवं पाण्ड्य जैसे राजवंश अस्तित्व में आये जिसे चम्पक लक्ष्मी ने संभ्रांत राजतंत्र बताया।

इस तमिल साहित्य में पल्लवों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है क्योंकि पल्लव राजवंश इसके काफी बाद स्थापित हुआ।

तीनों संगमों का प्राचीनतम उल्लेख आठवीं सदी के अगपोरूल के भाष्य में मिलता है। प्राचीन तमिलनाडु का क्षेत्र वर्त्तमान तमिल क्षेत्र से ज्यादा वृहद था, प्राकृतिक कारणों से इसका बहुत बड़ा हिस्सा अब समुद्र विलीन है।

संगम काल के पूर्व का कोई भी ग्रंथ हमें अभी तक प्राप्त नही हुआ है जिस आधार पर कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत की ऐतिहासिकता की जानकारी देने वाला यह एकमात्र ग्रन्थ उपलब्ध है। संगम का अर्थ परिषद् अथवा गोष्ठी होता है जिसमें प्रत्येक कवि अथवा लेखक अपनी रचनाओं को सगंम के समक्ष प्रस्तुत करता था एवं रचना की स्वीकृति करता था एवं रचना की स्वीकृति प्राप्त होने के बाद ही उसका प्रकाशन संभव था। पांड्य राजाओं के संरक्षण में कुल तीन संगम हुए एवं इनमें प्रकाशित साहित्य को ही सम्मिलित रूप से संगम साहित्य कहा गया।

संगम काल के कवियों की भूमिका आम जनमानस के जीवन में महत्वपूर्ण थी, उन्होंने अपनी रचना के माध्यम से तब के समाज का चित्रण करने का पूर्ण प्रयास किया, ये तमिल रचनाएं उस समय के दक्षिण भारतीय समाज, संस्कृति एवं आम जीवन का विस्तृत विवरण प्रदान करते हैं। दक्षिण में आर्य संस्कृति के प्रचार–प्रसार का श्रेय अगस्त्य ऋषि एवं कौडिण्य ऋषि को दिया जाता है, अतः हमें उत्तर भारतीय (आर्य) एवं दक्षिण भारतीय (द्रविड़) सभ्यता का समन्वय भी यहां देखने को मिलता है। शिलप्पादीकारम चेर, चोल एवं पाण्ड्य राज्यों का उल्लेख करने के साथ–साथ उरैयूर, मदुरई तथा वांजी जैसे प्राचीन नगरों के बारे में भी बताया है। चूँकि मणिमेख्लै के रचनाकार सीलैसतनार बौद्ध थे अतः हमें इस ग्रंथ पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है एवं जीवकचिंतामणि की रचना जैन भिक्षु तिरूतक्कदेवर द्वारा की गई अतः इस जैन प्रभाव स्पष्ट है। संगम ग्रंथों में हिन्दू, जैन तथा बैद्ध धर्म एवं उनके सिद्धांतों का भी उल्लेख किया गया है।

सामाजिक जीवन :

संगम काल में तमिल सामाजिक जीवन की स्थिति अच्छी थी। स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी एवं हमें स्त्री पुरूष भेदभाव के प्रमाण प्राप्त नहीं होते वरन् संगम साहित्य में हमें कई कवयित्रियों का योगदान देखने को मिलता है। जैसे अवैयार, नच्चैलेयार, पोनमुडियार। इन्होंने युद्ध एवं वीरता पर आधारित काव्य लिखे जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार था एवं समाज में विदुषी स्त्रियों का अच्छा खासा प्रभाव था। तिरूवल्लुवर मलाई में अवैयार का स्पष्ट उल्लेख है जो उस काल की सबसे सम्मानित कवयित्री थी। नर्रीनई से हमें प्राचीन तमिलनाडु में प्रचलित अलग–अलग प्रकार के वाद्य, संगीत यंत्रों की जानकारी प्राप्त होती है,

पेरूनान्नूपादै में चोल शासक करिकाल को संगीत के सप्तस्वरों का विशेषज्ञ बताया गया है जिस आधार पर कहा जा सकता है कि लोागों में संगीत के प्रति रूझान था।

प्रेम विवाह इस समाज में आम बात थी एवं सभी को अपना वर/वधु चुनने की स्वतंत्रता थी। स्त्रियाँ स्वतंत्र रूप से कला एव साहित्य में हिस्सा लेती थीं एवं उन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था। हालांकि सती प्रथा के भी साक्ष्य मिले है। जो कि मणिमेखलई से प्राप्त होते हैं। शिलप्पादीकारम में भी उल्लेख है कि निर्दोष कोवलन को मृत्युदंड मिलने के बाद उसकी पत्नी कन्नगी ने दुःख एवं क्रोध से अपने सतीत्व के बल पर संपूर्ण मदुरई नगर को अपने श्राप से भस्म कर दिया तथा इसके उपरांत वह सती हो गई। परंतु सती होना किसी भी प्रकार से बाध्य नहीं किया जाता था तथा यह आम जनमानस के बीच होने वाली अनिवार्य तथा प्रचलित क्रिया नहीं थी, यह पूर्णतः स्वैच्छिक था। कन्नगी को तमिल संस्कृति में देवी माना जाता है एवं चेर शासक शेंनगुटुवन ने उसके सम्मान में पतिनी पूजा प्रारम्भ करवाई इससे इससे ज्ञात होता है कि सती होना समाज में सम्मानजनक था।

समाज में बाल विवाह प्रचलित नहीं थें, विवाह व्यस्क होने के उपरांत ही किया जाता था। विधवाओं की दशा दयनीय थी, उनके लिए कठोर सामाजिक नियम थे जिनका पालन करने के लिए उन्हें बाध्य किया जाता था, उनका आगे का जीवन एकाकी होता था एवं समाज में उन्हें अपशकुन के रूप में भी देखा जाता था। इस समय स्त्रियों को संपत्ति में भी कुछ अधिकार प्राप्त था, स्त्रीधन पर उनका पूर्णतः अधिकार माना जाता था। पट्टीनप्पालै एवं मदुरैकांजी ग्रंथ स्त्रियों की आर्थिक गतिविधियों की जानकारी देते हैं जिसमें वे सक्रिय दिखती हैं। कवयित्री अवैयार ने राजाओं को राजनैतिक सलाह दी परंतु किसी भी प्रशासनिक पद पर किसी स्त्री का उल्लेख नहीं मिलता है, समाज मुख्यतः पितृसतात्मक था जीवकचिंतामणि में उल्लेख है कि नायक को जब सांसारिक जीवन से विरक्ति होती है तब वह अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन का त्याग कर वन में चला जाता है। इस आधार पर हम कह सकते है कि पिता का उत्तराधिकारी पुत्र ही होता था, प्रशासनिक कार्यों में स्त्रियों की भूमिका स्पष्ट रूप से देखने को नहीं मिलती है। हालांकि मेगास्थनीज ने पांड्य राज्य पर हेराक्लिज की पुत्री का शासक कह कर उसे मातृसतात्मक बताया है। समाज के कठोर वर्ण व्यवस्था लागू नही थी परंतु अपने उत्तरदायित्व के आधार पर समाज को कुछ वर्गो में बांटा गया था, इन सामाजिक वर्गो के ब्राह्मण को सबसे प्रतिशत माना जाता था, वस्तुतः तमिल प्रदेश में ब्राह्मणों का उदय सर्वप्रथम इसी काल में हुआ। इस समय ब्राह्मणों को खुश रखना राजा का कर्त्तव्य माना जाता था, इनकी अलग बस्ती होती थी एवं ये वेद अध्ययन में लिप्त रहने के साथ साथ ही सुरा पान भी करते थे जिसे समाज में हेय दृष्टि से नही देखा जाता था। इसके बाद हमु वेल्लार (धनाढ्य किसान) का उल्लेख मिलता है, ब्राह्मणों के बाद समाज का यही वर्ग प्रतिष्ठित माना जाता था, ये युद्ध में भी भाग लेते थे एवं प्रशासन में भी इनका हस्तक्षेप होता था। संगम ग्रंथो से हमें शिकारियों की एनियर नामक जाति का वर्णन भी मिलता है। पट्टिनप्पालै से हमें पुहार (कावेरीपट्टनम) बंदरगाह पर व्यापारिक वस्तुओं से चुंगी वसूले जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। इस समय तक कुछ विदेशी, जैसे–हिंद–यवन, अरब बंदरगाह के समीप आकर बस गए थे।

सैन्य व्यवस्था :

कल्लीवेली नामक ग्रंथ में इस काल की सैन्य जानकारी प्राप्त होती है। शिलप्पादीकारम में सेनापति हेतु

तलैवन एवं तानेत शब्द का उल्लेख है। मारवा नामक जाति की संख्या सेना में अधिक थी। युद्ध में हाथियों का विशेष महत्व था। इस काल की सैन्य व्यवस्था सुद्धढ़ थी एवं सैन्य प्रमुख राजा होता था। यह अपने आवास की रक्षा हेतु सशस्त्र महिलाओं की नियुक्ति करता था। सैनिको के आह्वाहन हेतु नगाड़ा एवं शंख का प्रयोग किया जाता था एवं विजित प्रदेश की जनता के साथ विजेता राजा एवं उनके सैनिक अत्यंत क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते थे। पुरनानूरू में युद्धभूमि में मृत वीरों की स्मृति में नडुकल जैसा सम्मान देने के साक्ष्य मिले है।

शौर्य प्रदर्शन इस समय एक महत्वपूर्ण भाग था, पतिरूप्पतु से विशेष रूप से चेर राजाओं के युद्ध वृतांत एवं सैन्य संगठन का वर्णन प्राप्त होता है। इस समय तक नौसेना का भी विकास हो चुका था, पुरनानूरू से हमें चेर, चोल तथा पांड्य राज्यों की नौसैनिक शक्ति का विवरण प्राप्त होता है। पट्टिनप्पालै में चोल बंदरगाह पुहार का वर्णन विस्तार से किया गया है। चोल करीकालन के समय नौसैनिक शक्ति सुद्धढ़ हुई तथा इसका विकास समुद्री डाकुओं के दमन एवं व्यापारिक मार्गो की सुरक्षा एवं नियंत्रण हेतु किया गया था।

के0 ए0 नीलकंठ शास्त्री दक्षिण भारतीय इतिहासकारों में प्रतिष्ठित इतिहासकारों में से एक माने जाते हैं, उनका मत है कि संगम युग के चेर, चोल एवं पाण्ड्य राज्य समुद्री व्यापार से समृद्ध थे और उन्होंने समुद्री मार्गों तथा बंदरगाहों पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित किया था। वे संगम साहित्य में वर्णित समुद्री गतिविधियों को एक विकसित समुद्री परंपरा का प्रमाण मानते हैं।

के0 जी0 शेष अय्यर चेर शासक नेड्डुम चेरलाथन के समुद्री अभियानों को चेरों की नौसैनिक क्षमता का प्रमाण माना है।

कृषि एवं अर्थव्यवस्था :

संगम काल में अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि थी, धनी किसान (वेल्लार) को समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था एवं प्रशासन में भी उनकी भागीदारी थी। इन किसानों के वैवाहिक संबंध राजधरानों में स्थापित किए जाते थे । धान प्रमुख फसल थी, वस्त्र निर्माण हेतु कपास भी उगाया जाता था, संगम साहित्य में अनेक प्रकार की फसलों का उल्लेख है जैसे—दाल, गन्ना, बाजरा, मोटे अनाज एवं तिलहन आदि।

कृषि हेतु सर्वाधिक उपर्युक्त क्षेत्र को मरूतम कहा गया है, यह भूमि सबसे अधिक उपजाऊ हुआ करती थी। समाज के निम्न वर्ग की महिलाओं द्वारा खेती का कार्य किया जाता था जिन्हें कडैसिवर कहते थे। कृषि हेतु सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी, एक जगह हमें उल्लेख मिलता है कि करिकाल ने कावेरी नदी के मुहाने पर बांध बनवाया तथा उसके जल का उपयोग करने हेतु सिंचाई के लिए नहरों का भी निर्माण करवाया। लौह उपकरणों का भी प्रयोग होता था जो कि अपने आप में क्रांतिकारी परिवर्तन था।

कृषि मुख्यतः नदियों एवं वर्षा पर निर्भर थी लेकिन कहीं हमें तालाब के उपयोग का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सिंचाई पर कर का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं मिलता परन्तु राजाओं द्वारा जलाशयों का विशेष ध्यान रखा जाता था। पूरनानुरू एवं अकनानुरू में कृषकों, खेतों और कृषि समृद्धि का वर्णन मिलता है। कृषि उत्पादन पर भूमि कर लिया जाता था।

इस समय विदेशी व्यापार भी अत्याधिक विकसित था, संगम साहित्यों में माल से लदे यवन जहाजों का यहाँ पहुँचने का चित्रण किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से तमिल लोगो को भारी मात्रा में सोना प्राप्त होता था जो उनकी अपार समृद्धि का कारण बना। पांड्य राज्य का बंदरगाह कोरकई मोती ढूंढने का एक प्रमुख

पतन था। संगम साहित्य में वर्णित है किस प्रकार यवन व्यापारी अपने जहाजों में सोना लेकर मुशीरी बंदरगाह आते थे एवं बदले में 'यवनप्रिय' काली मिर्च एवं रत्न लेकर जाते थे।

यहाँ एक अन्य महत्वपूर्ण अरिकमेडु का उल्लेख करना आवश्यक होगा क्योंकि यह उस समय भारतीय रोमन व्यापार का महत्वपूर्ण स्थल था, यह कोरोमंडल समुद्रतट पर पांडिचेरी से तीन किलोमीटर दक्षिण में स्थित है, वर्ष 1945 में यहां खुदाई की गई एवं यहां विशाल रोमन बस्ती के साक्ष्य मिले जो कि एक व्यापारिक केंन्द्र था। आर चम्पकलक्ष्मी संगम अर्थव्यवस्था को केवल कृषि आधिारित न मानकर व्यापारिक शहरीकरण से जोड़ती हैं। के ए नीलकंठ शास्त्री के अनुसार कावेरी डेल्टा की कृषि समृद्धि एवं रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार ने इन तमिल राज्यों को आर्थिक शक्ति प्रदान की। पेरीप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी में मुजिरिस को इस काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बंदरगाह बताया गया है। इस समय आंतरिक व्यापार की दशा भी अच्छी थी। आंतरिक व्यापार वस्तु विनिमय के माध्यम से किया जाता था। साहित्यों में नमक व्यापारियों का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। रजत एवं ताम्र धातुओं के आहत सिक्के तो थे परन्तु इनका उपयोग आम जनमानस द्वारा बड़े पैमाने पर होता होगा यह कहना मुश्किल है। ये आहत मुद्राएँ चेर शासकों द्वारा प्रचलित करवाई गई थी।

निष्कर्ष :

संगम काल (300 ई0 पू0 से 300 ई0) दक्षिण भारतीय इतिहास का स्वर्णिम युग है। इस काल में रचित संगम ग्रन्थ तोलकाप्पियम अहनानुरू, पुरनानुरू, पट्टिनपालै आदि से हमें इस काल की जानकारी मिलती है। कुछ विदेशी स्त्रोत भी इस समय की जानकारी उपलब्ध कराते हैं जैसे–रोमन सिक्के।

संगम काल का सामाजिक जीवन अच्छा था, स्त्रियों की दशा इससे पूर्व के कालों की तुलना में बेहतर थी। अवैयार जैसी कवयित्री की प्रसिद्धधि इस ओर संकेत करती है कि स्त्रियों को समाज में यथोचित सम्मान प्राप्त था। उन्हें शिक्षा का अधिकार था एवं आर्थिक क्रियाकलापों में भी उनकी भागीदारी थी। परंतु वहीं विधवाओं हेतु कठोर सामाजिक नियम थे, उनका सर मुंडवा दिया जाता था एवं उन्हें केवल सादा भोजन करने की अनुमति थी।

हालांकि संगम कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था देखने को नहीं मिलती लेकिन यहां भी समाज अलग अलग वर्गो में विभाजित था, जहां राजा, ब्राह्मण, वेल्लार समाज का सम्मानित तबका था वही हमें कडैसिवर का भी उल्लेख मिलता है जिनकी स्थिति दासों के सम्मान थी।

इस काल में दास प्रथा के प्रमाण नहीं मिलते, व्यभिचार को अपराध की दृष्टि से देखा जाता था। दंड विधान अत्यंत कठोर था एवं राजा निष्पक्ष होकर अपने राजधर्म पर आधारित निर्णय देता था।

आर्थिक दृष्टि से भी संगम काल उन्नत था, संभवतः इस समय उच्च कोटि के वस्त्रों का निर्यात हुआ करता था जो तमिल राज्यों की उन्नति के कारणों में से एक है। इस काल में कावेरी नदी का डेल्टा बहुत उपजाऊ था जिसके बारे में एक कहावत प्रचलित थी "जितनी भूमि एक हाथी बैठने पर घेरता है उतने में सात व्यक्तियों हेतु अनाज उत्पन्न किया जा सकता है।"

धान प्रमुख फसल थी एवं विदेशी व्यापार मुख्य व्यापार के रूप से रोमन साम्राज्य के साथ होते थे। इस समय के राजा युद्ध प्रेमी होते थे एवं उनमें चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा होती थी। संगम काल की सेना के चार अंग होते थे जो कि कल्लीवेली नामक पुस्तक में इस प्रकार वर्णित है–

1. पैदल सेना
2. हस्ती सेना
3. अश्व सेना
4. रथ सेना

संगम कालीन रथों को घोड़ों द्वारा नहीं बल्कि बैलों द्वारा खींचा जाता था। चोल शासक करिकाल ने श्रीलंका से बारह हजार युद्ध बंदियों को लाकर पुहार बंदरगाह निर्माण में लगा दिया। इससे पता चलता है कि इस काल में नौसैनिक शक्ति में वृद्धि एवं तटीय नियंत्रण की संरचना का निर्माण हुआ। संगम साहित्य के अध्ययन से हमें दक्षिण भारतीय समाज एवं सभ्यता की वृहद जानकारी प्राप्त होती है, इन ग्रंथों में जितना विवरण हमें प्राप्त होता हैं वह अभी तक अन्यत्र कहीं प्राप्त नही हो पाया हैं। इनके आधार पर हम कह सकते हैं कि संगम काल केवल साहित्यिक उपलब्धियों का युग नही था, इस समय राजनैतिक संरचना, सामाजिक संगठन, व्यापार, सैन्य, कृषि एवं समुद्री संपर्क में भी उन्नति हुई। यह दक्षिण भारतीय इतिहास के स्वर्णिम अध्यायों में से एक है जो उस काल के उन्नत आर्थिक विकास एवं सास्कृतिक उत्कर्ष को दर्शाता है।

संदर्भ :

1. के ए नीलकंठ शास्त्री, अ हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया।
2. के ए नीलकंठ शास्त्री, द चोलाज।
3. आर चम्पकलक्ष्मी, ट्रेड, ऑडियोलॉजी एंड अर्बनाइजेशन : साउथ इंडिया 300 बीसी टू एडी 1300
4. बर्टन स्टीन, पीजेंट्स स्टेट एंड सोसायटी इन मिडेवल साउथ इंडिया।
5. नोबोरू कराशिमा, साउथ इंडियन हिस्ट्री एंड सोसायटी।
6. वाई सुब्बूरायलु, साउथ इंडिया अंडर द चोलाज।
7. नोबोरू कराशिमा, अ कॉनसाइज हिस्ट्री एंड सोसायटी।
8. जॉर्ज एल हार्ट, द पोएम्स ऑफ तमिल्स।
9. पी टी श्रीनिवास आयंगर, हिस्ट्री ऑफ द तमिल्स।
10. के सी श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 130–136

दलित विमर्श और समकालीन हिंदी गजल

राजश्री सिंह, शोधार्थी,
डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

शोध सार :

समकालीन हिंदी गजल ने रूमानी विधा से आगे बढ़कर समाज के हर पहलू, विशेषकर दलित सरोकारों और जनजीवन के संघर्षों का अत्यंत मार्मिक, निष्पक्ष एवं संवेदनशील चित्रण प्रस्तुत किया है। यह विमर्श सदियों पुराने जातिवाद, छुआछूत और शास्त्रों की स्वार्थी व रूढ़ व्याख्याओं से उपजे भेदभाव के विरुद्ध एक वैचारिक आंदोलन है। अदम गोंडवी, मलखान सिंह और जहीर कुरैशी जैसे समकालीन गजलकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित समाज की पीड़ा, उपेक्षा, भूख और श्रम के शोषण को स्वर देते हुए तीखे प्रतिरोध एवं आत्मसम्मान को मुखरित किया है। यह साहित्य किसी बदले की मानसिकता से अनुप्रेरित नहीं है, बल्कि स्थापित परंपराओं से हटकर मानवता और समता–मूलक मूल्यों पर आधारित एक नए विषमता रहित आधुनिक समाज की संरचना पर बल देता है । अंततः, समकालीन हिंदी गजल ने दलित विमर्श के सामाजिक यथार्थ, प्रतिरोध और इतिहास–निर्माण की चेतना को सशक्त रूप से रेखांकित कर अपने साहित्यिक व मानवीय धर्म का निर्वाह किया है।

बीज शब्द :

दलित विमर्श, समकालीन हिंदी गजल, जातिवाद एवं छुआछूत, दलित चेतना, सामाजिक यथार्थ, प्रतिरोध और आत्मसम्मान, समता–मूलक समाज, मानवीय संवेदना।

समकालीन हिन्दी गजल की यह खासियत है कि उसने समाज के हर पहलू का चित्र प्रस्तुत किया है। समाज का कोई भी वर्ग, उसका कोई भी पक्ष अछूता नहीं रह पाया है। समकालीन हिंदी गजल ने न केवल इनका वर्णन किया है, बल्कि इनके हर पहलू पर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है। इसके द्वारा प्रस्तुत चित्र मार्मिक, निष्पक्ष एवं संवेदनशील हैं। ऐसे ही चित्रणों में दलित सरोकार का चित्रण एक है।

भारतीय समाज जातिवाद एवं छुआछूत में सदियों तक जकड़ा हुआ था। आधुनिक विचारधारा के फलस्वरूप छुआछूत और जातिवाद का बंधन थोड़ा ढीला पड़ने लगा। उत्तर–आधुनिक दौर में आकर दलित चेतना का विकास एक विमर्श के रूप में हुआ। देशभर में दलित चेतना के नवोन्मेष से जाति–वाद के विरुद्ध एक आंदोलन का जन्म हुआ। परंतु अभी भी जातिवाद समाज से पूर्ण रूपेण खत्म नहीं हुआ है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी गजल में दलित चेतना के विभिन्न स्वर दिखाई पड़ते हैं।

जाति व्यवस्था का सम्बंध धर्म से जोड़कर देखा जाता है। ऋग्वेद के एक सूक्त में ब्राह्मण का जन्म ब्रह्मा जी के मुख से और शुद्र का जन्म उनके पैर से बताया गया है। क्षत्रिय की उत्पत्ति उनके बाहू और उदर से वैश्य का जन्म बताया गया है। इस सूत्र की एक गलत व्याख्या के चलते समाज व्यवस्था में जातिवाद का बंधन पनपा था। तर्कपूर्ण ढंग से सोच कर देखा जाए तो शरीर के इन अंगों में से किसे सबसे कम महत्वपूर्ण माना जाएगा? बांह को या पैर को? पेट को या मुख को? इसकी गलत व्याख्या से समाज लम्बे समय तक आपस में भेदभाव का शिकार हुआ। बाद में भी विद्वानों ने इसकी व्याख्या को ठीक नहीं किया। और किया भी गया तो पूर्वाग्रहों के कारण स्वीकार नहीं किया गया। वैदिक ज्ञान जब कुछ स्वार्थी लोगों के हवाले था, उन्होंने व्याख्याओं का दुर्भाष्य तैयार किया और शास्त्रों की गलत समझ अब इतनी रूढ़ हो चुकी है कि उसका तार्किक व्याख्या भी दोनों पक्षों द्वारा नहीं स्वीकार की जाती। परिणामस्वरूप जातिवाद की समस्या स्थिर समस्या बन गई है। उदाहरण स्वरूप हम रैदास जी की एक बात ले सकते हैं। शास्त्रों में और वेदों में ब्राह्मण उसे कहा गया है जिसने ब्रह्म में प्रवेश प्राप्त कर लिया है। अर्थात् ब्रह्मज्ञानी को ब्राह्मण कहा गया–

'ऊँचे कुल के कारणे, ब्राह्मण कोय न होय।
जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, रैदास कहि ब्राह्मण सोय।।'[1]

मगर शास्त्र की इस व्याख्या को कोई नहीं स्वीकारता उल्टे उसे ही दोषी ठहराता है। देशभर में जितने ब्रह्मज्ञानी संत हुए, चाहे कबीर हो, रैदास हो, तुलसीदास हो या परमहंस दयाल अद्वैतानंद जी हो या रामकृष्ण परमहंस हों, ब्रह्मविदों की व्याख्याओं को यदि समाज ने मान लिया होता तो भारतीय समाज कब का इस समस्या से उबर गया होता।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी गजल में प्रचलित समझ के अनुसार ही जातिवाद के लिए वेदों एवं शास्त्रों को भी कहीं–कहीं दोषी ठहराया गया है। अदम गोंडवी कहते हैं –

'वेद में जिनका हवाला हाशिए पर भी नहीं
वे अभागे आस्था-विश्वास लेकर क्या करें
लोकरंजन हो जहाँ शंबूक वध की आड़ में
उस व्यवस्था का घृणित इतिहास लेकर क्या करें।'[2]

जातिवाद का संत्रास एक लम्बे समय तक दलित झेलते रहे हैं। उन्हें तरह–तरह के तर्क–कुतर्क गढ़ कर समाज में अछूत बनाया गया है। उनपर अनगिनत अत्याचार किए गए हैं। ऐसे में समाज और देश से उनका सवाल जायज है –

'अंत्यज - कोरी पासी हैं हम।
क्यूँ कर भारतवासी है हम।।
अपने को क्यूँ वेद में खोजें।
क्या दर्पण - विश्वासी हैं हम।।
छाया भी छूना गर्हित है।
ऐसे सत्यानाशी हैं हम।।
धर्म के ठेकेदार बताएँ।

किस ग्रह के अधिवासी हैं हम।'[3] – अदम गोंडवी

वैदिक काल में शूद्रों की स्थिति बहुत दयनीय थी। डॉ. आनंद वास्कर लिखते हैं – ''प्राचीन काल में शुद्र की स्थिति नगण्य एवं उसका जीवन निरर्थक था। उस समय शूद्रों का कर्तव्य था कि वे दास्य भाव से ब्राह्मणों की सेवा–शुश्रूषा करते रहें। इस शुश्रूषा कार्य में बाधा न हो तभी शुद्र अन्य काम करके अपनी आजीविका प्राप्त कर सकते थें।''[4]

एक आदमी जब दूसरे आदमी को अपने से नीचा समझता था, अपने पावदान के बराबर समझता है, तब इन्सानियत शर्मसार होती है –

'वो तो ऊँचे मकान है साहिब,
हाथ ही बस पावदान हैं साहब।'[5] – डॉ. उर्मिलेश

दलित विमर्श के बहाने समाज में आम आदमी को प्रतिष्ठित करने की लड़ाई है। रमणिका गुप्ता लिखती हैं – ''**दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई है।...दलित साहित्य पूर्ण समानता के लिए संघर्षरत है।**''[6] सदियों से आम आदमी उपेक्षित रहा है। तथाकथित सवर्ण समुदाय तरह–तरह की ज्यादतियां उनके साथ करता रहा है। '**वर्ण व्यवस्था के अमानवीय बंधनों ने शताब्दियों से दलितों के भीतर हीनता भाव को पुख्ता किया है।**'[7] अदम गोंडवी की गजलों में ऐसे अनेकों चित्रों को मुखरित किया गया है –

'सदियों से जो रहे उपेक्षित
श्रीमंतों के हरम सजाकर।
उन दलितों की करूण कहानी,
मुद्रा से रैदास लिखेंगे।'[8] – अदम गोंडवी

दलित अपनी तमाम बेबसी में जीवन जी नहीं रहे होते हैं, बल्कि उसे घसीट रहे होते हैं। राजेश रेड्डी की गजलों में यह करुण – कथा इस प्रकार उभरी है –

'रोज घिसटते जाते हैं,
बस दिन काटते जाते हैं।
पढ़ता कौन है जीवन को,
वरक पलटते जाते हैं।'[9] – राजेश रेड्डी

यह हिंदी गजल की विशिष्ट उपलब्धि है कि उसने अपने आयाम और विस्तार में दलित विमर्श को भी समेट लिया है। इस ओर इशारा करते हुए ज्ञान प्रकाश विवेक लिखते हैं – ''**गजल जैसी विधा जिसे सिर्फ रूमानी विधा कहकर खघरिज कर दिया जाता था, हिन्दी में आकर इस विधा ने न सिर्फ विस्तार हासिल किया है बल्कि बेहद सामाजिक होकर, समाज के पिछड़े दलित, आदिवासी वंचितों को अपने अश्आर का मुख्य पात्र बनाकर, उनके जीवन के कष्टों और उपेक्षा के दंशों को तहरीर किया है।**''[10]

समकालीन हिंदी गजलों में जो दलित चित्रण है उससे दलित समुदाय का इतिहास उभरकर सामने आता है। यह इतिहास जब तक नहीं जाना जायेगा तब तक उनके साथ न्याय कर पाना संभव नहीं है। इसी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं – ''हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श की जरूरत उसके

संघर्ष, यातना और सपनों को जानने के लिए जरूरी है। दलित विमर्श करके ही हम उनसे कुछ निचोड़ सकते हैं। जब किसी मुद्दे पर विमर्श नहीं होगा तो फिर उसकी कमियों और अच्छाइयों का पता कैसे चलेगा?''[11] और इस इतिहास को बदलने की प्रक्रिया अंबेडकर से ही आरम्भ हो गयी थी। समकालीन हिंदी गजलकार इस प्रक्रिया से जुड़कर दलितों की वस्तुस्थिति को बदलने का आह्वान करते हैं –

'अंबेडकर की जिंदगी जीने की शर्त है
तुझको हजार हादसे मरना पड़ेगा यार।'[12] – राम मेश्राम

दलितों की वस्तुस्थिति बदलने के लिए जिस स्तर पर काम होना चाहिए उस स्तर पर काम नहीं हो रहा है। इसका प्रमाण यह है कि राज पर राज और सरकार पर सरकार बदलती रही है परन्तु आज भी दलितों की स्थिति में वाजिब परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। इस ओर ध्यान खींचते हुए बाबूराव बागुल कहते हैं – ''**स्त्री, शूद्र–अस्पृश्यों को सिर्फ राजनीतिक परिवर्तन पर्याप्त नहीं दिखता। उदाहरण के लिए, बरतानवी राज गया और स्वराज आया– प्रजातंत्र आया। फिर भी अस्पृश्यता है। और है आर्थिक तथा मानसिक विषमता।**''[13]

दलित विमर्श ऐसा नहीं है कि सदियों पहले अपने ऊपर हुए अत्याचारों का बदला लेना चाहता है बल्कि वह भेदभाव रहित मानवीय समाज की संरचना पर बल देता है। इसी बात को रेखांकित करते हुए बी. आर. विप्लवी लिखते हैं – ''**आज जिस दलित प्रतिरोध की बात की जा रही है वह स्थापित परम्पराओं से हट कर मानवता की परिभाषाओं पर आधारित मूल्यों को अपनी कसौटी बनाता है।**''[14] इसीलिए दलित वैदिक जमाने की बात छोड़कर नए समाज के गठन पर बल देता है –

'अपने को क्यूँ वेद में खोजें।
क्या दर्पण विश्वासी हैं हम।।
छाया भी छूना गर्हित है।
ऐसे सत्यानासी हैं हम।।'[15] – अदम गोंडवी

हिंदी साहित्य का इतिहास सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना की निरंतर खोज का इतिहास है। आधुनिक हिंदी गजल ने इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लिया, जहाँ प्रेम और रोमांस से आगे बढ़कर यह जनजीवन के संघर्ष, विषमता, अन्याय और दलित चेतना की आवाज बन गई। दलित गजलें केवल अधिकार की नहीं, बल्कि प्रतिरोध और आत्मसम्मान की भी अभिव्यक्ति करती हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गजल के अनेक रचनाकारों ने अपने शब्दों से दलित समाज की पीड़ा, संघर्ष और स्वाभिमान को सशक्त स्वर दिया है। इनकी रचनाओं में दलित जीवन की त्रासदी, भूख, श्रम, अन्याय और मानवीय गरिमा की खोज एक साथ मुखर होती है।

समकालीन हिंदी गजलकारों ने दलित और श्रमिक वर्ग की अस्मिता को अपनी गजलों में गहराई से व्यक्त किया है। मलखान सिंह कहते हैं :

'हमारे पसीने से आती है तुम्हें बू,
फिर ऐसा करो एक दिन,
अपनी जनानी को हमारी जनानी के साथ मैला कमाने भेजो।'[16]

यहाँ रचनाकार समाज के उच्च वर्ग से सीधी टक्कर लेता है। वह श्रम की गरिमा को स्थापित करते हुए

यह बताता है कि वास्तविक उत्पादन शक्ति उन्हीं के श्रम से आती है जिन्हें समाज 'निम्न' समझता है। यह शेर सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक तीखा व्यंग्य है और 'परिश्रम के गौरव' की उद्घोषणा भी।

कुछ गजलकारों ने दलित जीवन की दोहरी यातना – भूख और संघर्ष को अपनी गजलों में केंद्र में रखा है :–

'हमारा नरक-सा जीवन बुरा यूँ भी है और यूँ भी,
मरे भूखे, मरें लड़कर सजा यूँ भी है और यूँ भी।'[17] – बलि सिंह चीमा

यह शेर दलित जनजीवन के उस द्वंद्व को सामने लाता है जहाँ व्यक्ति को न केवल आर्थिक विषमता से जूझना पड़ता है, बल्कि सामाजिक अपमान से भी। यहाँ कवि की भाषा व्यथा को नहीं, बल्कि प्रतिकार को जन्म देती है। यह गजल दलित चेतना की 'जागृति' का सशक्त उदाहरण है।

जहीर कुरैशी ने दलित समाज के भीतर के आत्मसंघर्ष को रूपायित किया है। वे लिखते हैं –

'अपने कद की लड़ाई लड़ी एक पर्वत से राई लड़ी।'[18]

यह शेर दलित समाज की आत्मप्रतिष्ठा और जिजीविषा का प्रतीक है। यह केवल संघर्ष का चित्रण नहीं, बल्कि आत्मगौरव की उद्घोषणा है। यहाँ 'राई' का पर्वत से लड़ना असंभव प्रतीत होता है, परंतु यही 'असंभव' गजलकार के आत्मविश्वास में 'संभव' बनता है। यह आत्मविश्वास दलित चेतना की मूल धारा है।

अदम गोंडवी ने हिंदी गजल में 'दलित यथार्थ' को समाजशास्त्रीय दृष्टि दी है। वे मानवता के इतिहास को दलित चेतना से जोड़कर देखते हुए उसे फिर से लिखे जाने की बात कहते हैं–

'मानवता का दर्द लिखेंगे, माटी की बू-बास लिखेंगे,
हम अपने इस कालखंड का एक नया इतिहास लिखेंगे।'[19]

अदम गोंडवी का यह कथन एक घोषणापत्र है – जो केवल पीड़ा का बयान नहीं, बल्कि इतिहास लेखन का संकल्प है। यहाँ लेखक दलितों की वेदना के साथ–साथ आत्मसम्मान और इतिहास–निर्माण की चेतना को भी रेखांकित करता है। अदम गोंडवी की तरह ही शिवनाथ चौधरी आलम भी दलित चेतना के नवीन इतिहास की बात करते हैं। इस इतिहास की जरूरत इसलिए भी है कि इस वर्ग के गम की कहानी अपने मूल रूप में बयां नहीं हुई है। इसके कई पहलू और कई सन्दर्भों का इतिहास अभी बाकी है –

'मेरे एहसास का ये मजमुआ
मेरे गम की इक कहानी है।
जिसने फूलों की आरजू लेकर
हर बयाबां की खाक छानी है।'[20] – शिवनाथ चौधरी आलम

अदम गोंडवी और शिवनाथ चौधरी आलम की दृष्टि में दलित केवल उत्पीड़न का प्रतीक नहीं, बल्कि परिवर्तन का वाहक है। इसीलिए उनकी गजलों में 'सह–अस्तित्व' और 'मानवता' की अवधारणा गहराई से अभिव्यक्त होती है –

'हमारी जात है इंसान,
और मजहब मुहब्बत है,
अगर हम ये समझ जाएं,

तो इस धरती पे जन्नत है।'[21] – शिवनाथ चौधरी आलम

समकालीन हिंदी गजलकारों की गजलों में दलित चेतना तीन स्तरों पर प्रकट होती है। सामाजिक यथार्थ को उद्‌घाटित करते हुए दलित जीवन के यथार्थ को बिना किसी आडंबर के वे प्रस्तुत करते हैं। आत्मसम्मान और प्रतिरोध की भावना को व्यक्त करते हुए वे दलित चेतना को प्रतिरोध की भाषा देती हैं। नए इतिहास और मूल्यबोध का आग्रह करते हुए ये गजलकार दलित अनुभव को 'इतिहास लेखन' की प्रक्रिया में शामिल करते हैं, जो साहित्यिक क्रांति का संकेत है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी गजल ने दलित विमर्श के विभिन्न पहलुओं को समेटते हुए उसे आगे बढ़ाया है। उसके मानवीय पक्ष को समाज के सामने प्रस्तुत करते हुए उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार की पुरजोर वकालत की है । इस वकालत में उन्होंने अपना साहित्यिक धर्म निभाते हुए मानवीय धर्म का भी पालन किया है और इन सब से आगे बढ़कर एक विषमता रहित समाज के निर्माण पर बल दिया है। विषमता रहित समाज का निर्माण दलित साहित्य के केंद्र में रहा है। अपने ऊपर हुए अन्यायों का प्रतीकार्थ या बदले की मानसिकता से दलित साहित्य की चेतना अनुप्रेरित नहीं है। उनकी अनुप्रेरणा तो यह है कि आधुनिक समाज समता–मूलक हो, जात–पात की भावना से रहित हो। इस अर्थ में दलित साहित्य और उसकी चेतना एक सच्चे अर्थों में आधुनिक समाज के निर्माण पर बल देती है और इसमें समसामयिक हिंदी गजल की भूमिका पुरजोर है। इसी कारण दलित साहित्य की अर्थवत्ता और प्रासंगिकता अक्षुण्ण है।

संदर्भ :–

1. https://www.hindwi.org/dohe/unche-kul-ke-karanai-raidas-dohe
2. https://www.hindwi.org/ghazals/ved-men-jinka-havaala-haashie-par-bhii-nahiin-adam-gondvi-ghazals
3. सिंह, एन, 'दलित साहित्य की प्रतिमान', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2012, पृष्ठ–54
4. सिंह, एन, 'दलित साहित्य की प्रतिमान', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2012, पृष्ठ–54
5. उर्मिलेश, 'फैसला वो भी गलत था', मंजुल प्रकाशन, बदायूँ (उत्तर प्रदेश), संस्करण : 2004, पृष्ठ–44
6. गुप्ता, रमणिका (संपा.), 'युद्धरत आम आदमी', अंक 41–42, संस्करण : 1998, पृष्ठ–ix
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृष्ठ–26
8. गोंडवी, अदम, 'समय से मुठभेड़', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृष्ठ–27
9. रेड्डी, राजेश, 'आसमान से आगे', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2009, पृष्ठ–29
10. ज्ञानप्रकाश, विवेक, 'हिंदी गजल : व्यापकता और विस्तार', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2025, पृष्ठ–222
11. भारद्वाज, प्रेम (संपा.), 'पाखी', मई 2010, नोएडा, संपादकीय से उद्धृत।
12. ज्ञानप्रकाश, विवेक, 'हिंदी गजल : व्यापकता और विस्तार', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2025, पृष्ठ–238

13. सिंह, पुन्नीय प्रसाद, कमलाय शर्मा, राजेन्द्र (संपा.), 'भारतीय दलित साहित्यः परिप्रेक्ष्य', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2017, पृष्ठ–25
14. विप्लवी, बी. आर., 'दलित दर्शन की वैचारिकी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2016, पृष्ठ–59
15. गोंडवी, अदम, 'समय से मुठभेड़', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृष्ठ–39
16. सिंह, मलखान, 'ज्वालामुखी के मुहाने', रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण : 2019, पृष्ठ–108
17. https%//gadyakosh.org/gk/समकालीन_हिंदी_गजल_के_बढ़ते_आयाम_/_भावना।
18. कुरेशी, जहीर, 'भीड़ में सबसे अलग', मेधा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2003, पृष्ठ–36
19. http%//kavitakosh.org/kk/मानवता_का_दर्द_लिखेंगे,_माटी_की_बू–बास_लिखेंगे_/_अदम_गोंडवी,
20. https://www.forwardpress.in/2023/09/dalit-literature-ghazals-by-vishvnath-chaudhary/
21. https://www.forwardpress.in/2023/09/dalit-literature-ghazals-by-vishvnath-chaudhary/

ईमेल – rajshreesingh26@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 137-142

पर्यावरण चेतना एवं विनोद कुमार शुक्ल का कथा साहित्य

नीरज कुमार चौधरी, शोधार्थी,
डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

पर्यावरण लेखकों की एक मुख्य चिंता रही है। विशेषकर बढ़ते औद्योगीकरण के कारण जिस तेजी से पर्यावरण पर संकट गहराता जा रहा है, लेखकों की चिंता और बेचौनी भी बढ़ती जा रही है। खासकर भारतीय संदर्भ में पर्यावरण और प्रकृति जीवन से भिन्न नहीं हैं। भारतीय जीवन का अधिकांश पर्यावरण पर निर्भर है, मशीन पर नहीं। अभी भी भारत के एक बड़े भूभाग पर कृषि पर्यावरण पर ही आधारित है। आदिवासियों के जीवन की तो कल्पना ही जंगल के बिना संभव नहीं। प्रकृति और पर्यावरण यहाँ की रोजमर्रा के जीवन में शामिल हैं, वे रोजमर्रा की जरूरत में शामिल हैं। जीवन की अधिकांश खुशी यहां इस पर आधारित है। यही कारण है कि 1950 के बाद प्रकाशित होने वाले उपन्यासों में प्रकृति और पर्यावरण जिन अधिकांश लेखक के लिए महत्वपूर्ण हो गए हैं उनमें विनोद कुमार शुक्ल का नाम विशेष तौर से उल्लेखनीय है।

विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में प्रकृति और पर्यावरण अपनी संपूर्ण हरितिमा में उपस्थित हैं। उनके औपन्यासिक संसार में प्रकृति के कुछ ऐसे मोहक चित्र मिलते हैं, जो आधुनिक महानगरीय जीवन से अब विलुप्त होते जा रहे हैं। 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास में एक सुबह रघुवर प्रसाद, सोनसी से कहते हैं – ''सुबह सबसे पहले छोटी–छोटी चिड़िघ्यों की चहचहाहट होती है। उसके बाद कोयल के बोलने की आवाज आती है।''[1]

आज चिड़ियों की चहचहाहट गायब है, क्योंकि पेड़ गायब हैं। महानगरीय क्षेत्रों में निर्मित हो रही ऊँची–ऊँची हाइटेक बिल्डिंगों वाले कॉम्प्लेक्सों के दृश्यों में यह साफ देखा जा सकता है कि यहाँ स्वीमिंग पूल तो है, पर तालाब एवं नदी गायब हैं। हरियाली के नाम पर छोटे–छोटे गमले में फूल हैं – पेड़ों के शव की शोभायात्रा की तरह। ये कीमत बड़े–बड़े पेड़ों को काटकर, वहां की हरी–भरी प्रकृति को उजाड़कर पायी गई है। यही कारण है कि इन कॉम्प्लेक्सों के लोगों की सुबह अब चिड़ियों की चहचहाहट के साथ नहीं हो पाती। प्रकृति जीवन में एक खुशी की तरह हैय अतः प्रकृति के बेरंग होने का मतलब है हमारे जीवन का बेरंग होना। इस दृष्टि से विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास प्रकृति के प्रति एक गहरी पारिस्थितिक संवेदना उत्पन्न करते हैं, जहाँ प्रकृति महज एक मूक गवाह नहीं, बल्कि साक्षात जीवन की तरह स्पंदित होती है।

पर्यावरण संकट आज विश्व का एक सबसे बड़ा संकट है। पर्यावरण और प्रकृति विनोद कुमार शुक्ल के प्रायः सभी उपन्यासों में पूरी जीवंतता के साथ चित्रित हुआ है। जैसे पन्त को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता

है, वैसे ही विनोद कुमार शुक्ल के प्रकृति लगाव को देखते हुए उन्हें प्रकृति का जीवंत कथाकार कहा जा सकता है।

इनके उपन्यासों में प्रकृति कई रूपों में आती है। विनोद कुमार शुक्ल के यहाँ प्रकृति चित्रण प्रकृति से मानव का रिश्ता क्यों, कितना और किस रूप में जरूरी है, केवल यह समझने भर के लिए नहीं है, बल्कि प्रकृति के साथ जीवन कितना मधुर और संगीतमय है, यह दिखाने के लिए भी है। प्रकृति इनके यहाँ मानव की सहचरी बनकर सामने आती है। इनके बाल उपन्यास 'यासि रासा त' में जंगल का नाम 'अकेला जंगल' है जहाँ हर पेड़ अकेले थे। जब अकेला जंगल में कैद लड़की को बचाने जाती 'लोरमी' को धारा के विपरीत नाव खेने में कठिनाई होती है तब वह धारा से साथ देने का आग्रह करती है। 'चुग्गा' को बचाने के अभियान में धारा भी लोरमी का साथ देने लगती है। इस उपन्यास में प्रकृति का व्यापक तौर पर मानवीकरण हुआ है, कदम–कदम पर प्रकृति मानव का साथ देते हुए दिखाई पड़ती है।

प्रकृति का बहुरंगी चित्र उनके उपन्यास 'हरि घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़' में देखने को मिलता है। बजरंग महाराज का बेटा भैरा बताता है कि उनके होटल का पहला और दूसरा ग्राहक क्रमशः गिलहरी और हाथी थे। दोनों चाय पीने आये थे। यहां भी प्रकृति का मानवीकरण देखने को मिलता है। इस उपन्यास में प्रकृति की सुंदरता का एक तिलस्म है जिसका चित्रण जादुई यथार्थवाद की शैली में हुआ है। परंतु इसमें छुपे प्रकृति के यथार्थ को पहचानना कठिन नहीं है – ''हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी की छप्पर बरसों से हरी–भरी थी। कभी सूखती नहीं थी। भरी गरमी में भी नहीं। घास बहुत ऊंची हो गयी थी। जब जोर की हवा चलती तो छप्पर की घास झुकती और आसपास की झोपड़ी को ढांप लेती है।''[2] ऐसे प्राकृतिक घरों में वातानुकूलन (एसी) की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। प्रकृति से हम जितना दूर गए हैं, उतना ही अधिक कृत्रिमता की चपेट में जीवन फँसता गया है। प्रकृति के साथ जीवन सहज और सस्ता था, कृत्रिमता ने जीवन को महँगा और जटिल दोनो बनाया है। लेखक के यदि इशारे को हम समझें तो कह सकते हैं कि यदि हमें सस्ता और सहज जीवन चाहिए तो प्रकृति का अधिक से अधिक साहचर्य प्राप्त करना होगा।

प्रकृति मानव जीवन और परिवेश को सुंदर बनाती है। जीवन को सुंदर बनाने में प्रकृति का बहुत बड़ा योगदान होता है। 'बोलू' जिस झोपड़ी में रहता है, उस पर जमी हरियाली की आड़ से चन्द्रमा निकलता है, मानों चन्द्रमा का वही पता हो। इस बस्ती में एक सुंदर सरोवर है, सरोवर किनारे माता का एक सुंदर मंदिर है। बगल में एक अखाड़ा है। पहले कई गाँव में ऐसे दृश्य होते थे। बड़ी तेजी से यह सब कुछ गायब होता जा रहा है। मानो, हमारा समय हमसे जो सुंदर है, वह छीनता जा रहा है।

इस उपन्यास में तरह–तरह के पक्षियों और उनके मनोविज्ञान की जानकारी है। आज हम लोग पक्षियों के नाम भले रट लें, मगर सामने से उसे पहचान नहीं सकते। जंगल काट कर ऊंचे मकानों में इंसानों को बसाया जा रहा है, मगर बेघर हुए पक्षियों को बसाने की कोई योजना जंगल काटने वालों के पास नहीं है। हमारा संबंध पशु–पक्षियों एवं जंगलों से कटकर और अधिक संवेदनहीन होता जा रहा है। जंगल को बचाने का अभियान सिर्फ जंगल बचाने का अभियान नहीं है, वह मानवीय संवेदना के कई रंगों को बचाने का भी अभियान है। इस अर्थ में विनोद कुमार शुक्ल के कथा साहित्य में चित्रित जंगल और प्रकृति के मूक वजहों को समझना होगा।

जंगल का बहुत सुंदर दृश्य उनकी कहानी 'सभ्यता का एक शब्द हीरा' में भी है। जंगल में एक गाँव

ऐसा है जिसके बारे में लेखक बताता है ''दिन में एक झोपड़ी से दूसरी झोपड़ी तक जाना आसान नहीं था। रात में जलता दिया दिखने से दिखता कि झोपड़ी वह है। तब भी छै झोपड़ी का फैला गाँव बिल्कुल पड़ोस था। जंगल के सभी पेड़ भी एक–दूसरे को छूते हुए थे। एक पेड़ को छुआ तो पूरा जंगल छुआ जाता था।''[3] जंगल काटने और नष्ट करने का अर्थ उसमें बसे जीवन को नष्ट करना भी है। चाहे वह मनुष्य का हो या पशु–पक्षियों का।

एक दृश्य 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' का है। सोनसी जब खाने जा रही होती है तब सामने एक बूढ़ी गाय आ जाती है। वह गाय को खाना देती है, तब तक हाथी आ जाता है। हाथी को डाल और पत्तें देती है। तब खाने बैठती है। सोनसी का जीवन अभावग्रस्त है, फिर भी उसमें एक उदारता है, क्योंकि वह प्रेम पर आधारित है। प्रेम में दया, करुणा, न्याय सब कुछ समाहित होता है। सोनसी की अपेक्षा आज लोगों का जीवन ज्यादा समृद्ध है, किंतु उनके जीवन से मूल्य गायब हैं। खाते वक्त उन्हें भूखे पशु–पक्षी दिख रहे होते हैं, परंतु वे देख के भी देख नहीं रहे होते, समझ के भी समझ नहीं रहे होते। क्योंकि उनका जीवन प्रेम पर नहीं पैसे पर आधारित है। उनका खाना कचड़े में फेंका जाता है। गाय को लोग पंडित जी के कहने से पहली रोटी लेकर खोज रहे हैं, घास लेकर नहीं। लोग भूल गए हैं कि दूध का गहरा संबंध घास से है। खाना फेंकते समय लोगों को भूखे पशु याद नहीं आते। पहले का मनुष्य ज्यादा गरीब था, परंतु उसका एक सुंदर सह–अस्तित्व था सबके साथ विशेषकर प्रकृति और पशु–पक्षियों से। आज का जीवन ज्यादा समृद्ध है, परन्तु पशु–पक्षी भूखे घूम रहे हैं क्योंकि उनके साथ हमारा सह–अस्तित्व अब संभव नहीं रह गया, क्योंकि हमारे समृद्ध जीवन की बुनियाद जंगल और प्रकृति को नुकसान पहुंचा कर रखी गई है। जंगल और प्रकृति उनका घर है। उनका घर उजाड़कर उनके साथ सह–अस्तित्व भला कैसे कायम हो सकता है, विनोद कुमार शुक्ल के कथा साहित्य की इन तमाम अंर्तध्वनियों को हमें पर्यावरण संकट के संदर्भ में समझना एवं विश्लेषित करना होगा।

प्रकृति और पर्यावरण जीवन के उल्लास को दुगुना करते हैं। वे जीवन में और अधिक प्रेम का संचार करते हैं तथा उस प्रेम और उल्लास को एक प्राकृतिक आनंद में ढाल देते हैं। प्रकृति के साहचर्य में जीवन का जो आनंद मिलता है, वह मशीनों के साहचर्य से मिलने वाले आनंद से बिल्कुल अलग होता है। यह सहज आनंद मानवीय अस्तित्व को और अधिक जीवंत तथा उल्लासमय बनाता है। इसके विपरीत, मशीनों के साहचर्य वाला यांत्रिक जीवन अंततः निराशा और एकाकीपन को जन्म देता है तथा जीवन के उल्लास को नीरस बना देता है। मानवीय जीवन के इन आत्मीय और रागात्मक क्षणों को प्रकृति और पर्यावरण कितना मोहक बना देते हैं, इसे रघुवर और सोनसी के प्रणय–संबंध के एक दृश्य से भली–भाँति समझा जा सकता है – ''उड़ते हुए बाल और उड़ता हुआ आँचल पंख की तरह पत्नी को सचमुच उड़ा न ले जाएं, सोचकर रघुवर प्रसाद ने पत्नी का हाथ जोर से पकड़ लिया। हवा इतनी अच्छी और तेज चल रही थी कि धूल नहीं उड़ रही थी। परंतु कहीं गोबर से लीपी जगह पर अठारह बिन्दी डालकर चौक पूरा गया होगा। वह सुंदर मांगलिक, आकृति हवा के द्वारा जस की तस उठा ली गई थी। वह आकृति पतंग की तरह उड़ रही थी। फिर और भी छोटे–छोटे आटे से पूरी गई आकृतियां इधर से उधर उड़ते दिखाईं दीं। हवा उनके स्वरूप को बिगाड़ नहीं रही थी। तभी रघुवर प्रसाद के हाथ से सोनसी का हाथ छूट गया। ... रघुवर प्रसाद पेड़ों के बीच से जा रहे थे, वे सोनसी–सोनसी की आवाज लगा रहे थे। आगे रघुवर प्रसाद को क्षणभर के लिए सोनसी दिखी। सोनसी की साड़ी लगता है हवा उड़ा ले गई थी, पर वह नग्न नहीं थी। हवा में उड़कर जाती हुई रंगोली ने उसे ढाँक लिया था। ... हवा जब थम गई

तो पेड़ों, फूलों, दूबों की गंध जो फैल गई थी वह पेड़ों, फूलों, दूबों के आसपास सिमटने लगी। यह सिमटना इस तरह का था कि पेड़ों के पास फूलों की गंध सिमट गई। दूबी के पास पेड़ों की गंध थी। एक पेड़ के पास जो बरगद का पेड़ था वहाँ तीज–त्योहारों के दिन की पूजा स्थल की सुगंध थी। उसी के पास एक पेड़ का तना एकदम काला चिकना था, यह शिवलिंग की तरह पेड़ था। गोबर से लिपी–पुती जगह पर उस पेड़ के नीचे आँख मूँदे सोनसी लेटी हुई थी। सोनसी को जान–बूझकर रघुवर प्रसाद का पास आना मालूम नहीं पड़ रहा था।. .. सोनसी का जानबूझकर रघुवर प्रसाद का कुछ भी करना मालूम नहीं पड़ रहा था।... तभी सोनसी की बाईं बाँह पर टांय–टांय करता एक पक्षी आकर बैठा।

''देखो तो मेरे कंधे पर कोई पक्षी बैठा है।'' पत्नी ने पूछा। ...

''हाँ एक सुंदर हरा तोता है। पहाड़ीकरन। इसका कंठ फूट गया है।''

''तोता गहरी साँस और फुसफुसाहट को याद कर लेगा।'' सोनसी ने गहरी साँस लेकर फुसफुसाकर कहा।

''मैं उसे बता दूंगा कि हम पति पत्नी हैं'' रघुवर प्रसाद ने कहा।''[4]

दांपत्य प्रेम के इन क्षणों में शामिल यह प्रकृति न केवल प्रणय के आनंद को बढ़ाती है, बल्कि जीवन को और अधिक जीवंत बनाती है। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिए उपन्यास से एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है – ''तालाब के किनारे पत्थर पर सोनसी बैठी थी। रघुवर प्रसाद नहाने के लिए चिकनी मिट्टी का ढेला लकड़ी से खोद कर ले आए थे। तालाब से डुबकी लगाकर दोनों निकले और अपने–अपने शरीर में और फिर एक–दूसरे के शरीर में मिट्टी को मला। दोनों तालाब में पैर डालकर कुछ देर बैठे रहे।....

एकदम सुबह का सूर्य बाईं तरफ तालाब में था। सूर्य के बाद तालाब में रघुवर प्रसाद थे, फिर सोनसी थी। सोनसी डुबकी से निकलते ही बालों को पीछे झटकारती तो एक अर्धचक्र बनाती बूँदें बालों से उड़ती तब रघुवर प्रसाद को उन बूँदों की तरफ इंद्रधनुष दिखाई देता।''[5]

मिट्टी और तालाब का यह साहचर्य दर्शाता है कि विनोद कुमार शुक्ल के यहाँ प्रेम बंद कमरों की कृत्रिमता में नहीं, बल्कि प्रकृति के खुले अंचल में ही अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। प्रणय की यह जीवंतता और मोहकता क्या तालाब के बिना संभव है? उत्तर–आधुनिकता के ज्वार में तप रही दुनिया में युगल जोड़ों के पास प्रेम का ऐसा अनूठा दृश्य कहाँ संभव है! दरअसल, तालाबों को भरकर कंक्रीट की इमारतों में कृत्रिम सुख खरीदने वाले आधुनिक लोग इस दृश्य की जीवंतता के मर्म को शायद ठीक–ठीक न समझ पाएँ। स्वीमिंग पूल की यांत्रिकता से यह प्राकृतिक आनंद एकदम भिन्न है। इस आत्मीय साहचर्य में प्रकृति और पर्यावरण की उपस्थिति जीवन को कितना मोहक और सरस बना देती है, इसे हम रघुवर और सोनसी के प्रणय–संबंध से भली–भाँति समझ सकते हैं।

धरती–आसमान से लेकर पेड़–पौधों तक, पक्षियों से गिलहरी और तालाब तक – फैला यह विस्तृत चित्रण लेखक यूँ ही नहीं करता। लगता है कि वह प्रकृति के इन तमाम दृश्यों को पन्नों में समेट लेना चाहता हो कि क्या पता औद्योगीकरण का नरपिशाच कहीं इन्हें लील न जाए? इतनी सुंदर, इतने मोहक दृश्यों से दिन–पर–दिन वंचित होती जा रही पीढ़ियों को पढ़कर कभी तो लगे कि हमने ऊंची–ऊंची छायाहीन इमारतों के नाम पर कितना कुछ मूल्यवान खोया है। कभी तो उनको भी 'पर्यावरण–संवेदना' थोड़ा झकझोरे। ''अंधी

औद्योगीकरण के कारण पशु ही नहीं पेड़–पौधों और छोटे–छोटे जीव–जंतुओं की भी कई प्रजातियाँ लुप्त होती चली जा रही है। आधुनिकता ने 'मनुष्य' को भले ही केंद्र में ला दिया हो, 'मनुष्यता' को उसने हाशिये पर ठेलने का ही काम किया है। यह अच्छी बात है कि 'उत्तर–आधुनिकता' हाशिये की कमजोर आवाजों पर जोर देने की कोशिश कर रही है। कल तक जो पर्यावरण हाशिये पर था, वह अब केंद्र में हैं।''[6] महावीर अग्रवाल से एक बातचीत में विनोद कुमार शुक्ल कहते हैं – ''प्रकृति को जस का तस छोड़ देना चाहिए। प्रकृति को नष्ट करने का समय तत्काल समाप्त होना चाहिए। और उसे जितना प्राकृतिक बनाया जा सके, बनाया जाना चाहिए। विकास की जो अवधारणा है, उसमें मनुष्य की प्रजाति का नष्ट होना अंतिम परिणाम है। एक पत्थर का टुकड़ा भी नष्ट न हो। घास का तिनका भी। हरी घास की पत्ती भी। इसी से मनुष्य का जीवन और समाज बेहतर होंगे।''[7]

विनोद कुमार शुक्ल का यह कथन उनकी गहरी पर्यावरणीय चेतना और मनुष्य–प्रकृति संबंध की वैकल्पिक दृष्टि को सामने लाता है। यह कथन केवल प्रकृति–संरक्षण की अपील नहीं है, बल्कि आधुनिक सभ्यता की विकास–केंद्रित मानसिकता पर एक मौन किंतु तीखा प्रतिवाद भी है। विनोद कुमार शुक्ल का आग्रह है कि प्रकृति को किसी प्रयोगशाला या परियोजना की तरह नहीं, बल्कि अपने स्वाभाविक रूप में जीवित रहने दिया जाए। यहाँ 'जस का तस' का अर्थ निष्क्रियता नहीं, बल्कि अहस्तक्षेप है। आधुनिक मनुष्य प्रकृति को सुधारने के नाम पर उसे बदलता है–नदियों को बाँधता है, पहाड़ काटता है, जंगलों को 'उपयोगी भूमि' में बदलता है। शुक्ल इस प्रवृत्ति को ही संकट का मूल मानते हैं। लेखक ये मानते हैं कि विकास की वर्तमान रेखा मनुष्य को नष्ट करने वाली है – 'विकास की जो अवधारणा है, उसमें मनुष्य की प्रजाति का नष्ट होना अंतिम परिणाम है।' – यह कथन आधुनिक विकास–मॉडल की आत्मघाती प्रकृति को उजागर करता है। औद्योगीकरण, शहरीकरण और अंधाधुंध उपभोग जिस दिशा में बढ़ रहे हैं, वहाँ पर्यावरणीय संतुलन टूट रहा है– जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का क्षय और प्राकृतिक आपदाएँ इसी के परिणाम हैं। विनोद कुमार शुक्ल का विकास–विरोध नहीं, बल्कि विकास की पुर्नव्याख्या का प्रस्ताव है– ऐसा विकास जो प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व में हो।

शुक्ल जी की रचनात्मक दृष्टि का मूल यही चिंताधारा है। उनकी पर्यावरण–संवेदना सूक्ष्म, मौन और करुणामय है। वे प्रकृति को विशाल संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि सूक्ष्म जीवन–कणों के समुच्चय के रूप में देखते हैं। यह दृष्टि जैन और बौद्ध अहिंसा की परंपरा से भी जुड़ती है, जहाँ जीवन के प्रत्येक रूप के प्रति सम्मान आवश्यक माना गया है। प्रकृति–मैत्री जीवन से ही संतुलित समाज और मानवीय संबंधों की गरिमा संभव है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि विनोद कुमार शुक्ल के कथासाहित्य में प्रकृति केवल एक पृष्ठभूमि बनकर नहीं आती, बल्कि वह इंसान के सुख–दुख को साझा करने वाली एक सच्ची और जीवित सहचर है। उनके सृजन लोक में बच्चे, बूढ़े, पेड़, हरी घास, पहाड़ और मूक पशु–पक्षी एक ही जीवन–लय में साँस लेते दिखाई देते हैं। शुक्ल जी का यह गहरा प्रकृति–लगाव आधुनिक सभ्यता की अंधी दौड़ और उपभोक्तावादी सोच के खिलाफ एक शांत पर बहुत ही मारक प्रतिरोध दर्ज कराता है। विनोद कुमार शुक्ल के कथा साहित्य में प्रकृति चित्रण पर्यावरणीय संवेदना का काव्यात्मक घोषणा पत्र तो है ही साथ ही वह पृथ्वी के भविष्य को बचाने का एक क्रांतिकारी उपक्रम भी है। यह उपक्रम हमें सिखाता है कि प्रकृति को बचाना कोई बाहरी नैतिक कर्तव्य या

अतिरिक्त कार्य नहीं, बल्कि यह खुद मनुष्य के अपने अस्तित्व को बचाये रखने की पहली शर्त है। उनके लिए पर्यावरण संरक्षण शोरगुल वाला आंदोलन नहीं, बल्कि धीमे, विनम्र और करुण हस्तक्षेप–विहीन जीवन–दृष्टि है– जहाँ घास की एक पत्ती भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना मनुष्य स्वयं।

सन्दर्भ :

1. शुक्ल, विनोद कुमार, 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण : 2000, पृष्ठ – 35
2. शुक्ल, विनोद कुमार, 'हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला पुस्तकालय संस्करण : 2011, पहला पेपर बैक्स संस्करण : 2018, पृष्ठ – 20
3. हरिनारायण (संपादक) – कथादेश, विनोद कुमार शुक्ल की तीन कहानियाँ, दिल्ली, अंक – 11, जनवरी 2023, पृष्ठ – 41
4. शुक्ल, विनोद कुमार, 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण : 2000, पृष्ठ –57–58
5. शुक्ल, विनोद कुमार, 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण : 2000, पृष्ठ – 58
6. तिवारी, योगेश, 'विनोद कुमार शुक्ल : खिड़की के अंदर और बाहर', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2013, पृष्ठ संख्या – 50
7. अग्रवाल, महावीर (संपा.), 'सापेक्ष', अंक – 51, जुलाई, 2009–जून, 2010, छत्तीसगढ़, पृष्ठ संख्या – 692

ईमेल – choudharyniraj12@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 143–147

Artificial Intelligence & ITS Applications

Dr. Ankit Godara
SBS College, Raisinghnagar, Sri Ganganagar (Raj.)

Introduction :

It is the science and engineering of making intelligent machines, especially intelligent computer programs. It is related to the similar task of using computers to understand human intelligence, but AI does not have to confine itself to methods that are biologically observable. While no consensual definition of Artificial Intelligence (AI) exists, AI is broadly characterized as the study of computations that allow for perception, reason and action. Today, the amount of data that is generated, by both humans and machines, far outpaces humans' ability to absorb, interpret, and make complex decisions based on that data. Artificial intelligence forms the basis for all computer learning and is the future of all complex decision making. This paper examines features of artificial Intelligence, introduction, definitions of AI, history, applications, growth and achievements.

Artificial Intelligence (AI) is the branch of computer science which deals with intelligence of machines where an intelligent agent is a system that takes actions which maximize its chances of success. It is the study of ideas which enable computers to do the things that make people seem intelligent. The central principles of AI include such as reasoning, knowledge, planning, learning, communication, perception and the ability to move and manipulate objects. It is the science and engineering of making intelligent machines, especially intelligent computer programs.

Artificial Intelligence Methods :

Artificial Intelligence (AI) methods are techniques that enable machines to perform tasks requiring human intelligence. These methods include Machine Learning, Deep Learning, Neural Networks, Expert Systems, Natural Language Processing, and Computer Vision. AI methods help computers learn from data, recognize patterns, make decisions, solve problems, and improve performance automatically.

* **Machine Learning :**

Machine Learning (ML) is a branch of Artificial Intelligence that enables computers to learn

from data and improve their performance without being explicitly programmed. It uses algorithms to identify patterns, make predictions, and support decision-making. Machine Learning is widely applied in healthcare, education, finance, e-commerce, and cybersecurity. Common types include supervised learning, unsupervised learning, and reinforcement learning, making systems more accurate, efficient, and intelligent over time.

* **Deep Learning :**

Deep Learning is an advanced branch of Machine Learning that uses artificial neural networks with multiple layers to process and analyze large amounts of data. It enables computers to recognize complex patterns, understand speech, identify images, and perform natural language processing. Deep Learning powers technologies such as virtual assistants, self-driving vehicles, facial recognition, and medical diagnosis systems. Its ability to learn automatically from vast datasets makes it highly effective for solving complex real-world problems.

* **Neural Networks :**

Neural Networks are computational models inspired by the structure and functioning of the human brain. They consist of interconnected nodes, called neurons, organized in input, hidden, and output layers. These networks process information, learn from data, and recognize complex patterns. Neural Networks are widely used in image recognition, speech processing, language translation, healthcare, and financial forecasting. Their ability to adapt and improve through training makes them a fundamental technology in Artificial Intelligence and Deep Learning.

* **Expert Systems :**

Expert Systems are Artificial Intelligence programs designed to mimic the decision-making ability of human experts in specific fields. They use a knowledge base and inference rules to analyze information and provide solutions, recommendations, or diagnoses. Expert Systems are widely used in healthcare, education, engineering, agriculture, and business management. They help improve accuracy, consistency, and efficiency in problem-solving by offering expert-level guidance, even when a human specialist is not readily available.

* **Natural Language Processing (NLP) :**

Natural Language Processing (NLP) is a branch of Artificial Intelligence that enables computers to understand, interpret, and generate human language. It combines linguistics, computer science, and machine learning to process text and speech data. NLP is used in applications such as chatbots, virtual assistants, language translation, sentiment analysis, and speech recognition. By improving human-computer interaction, NLP helps machines communicate more naturally and effectively, making technology more accessible and user-friendly.

* **Computer Vision :**

Computer Vision is a branch of Artificial Intelligence that enables computers to interpret, analyze, and understand visual information from images and videos. It uses machine learning and deep learning techniques to recognize objects, detect patterns, and make decisions based on visual data. Computer Vision is widely used in facial recognition, medical imaging, autonomous vehicles, security systems, and quality inspection. This technology helps machines perceive and interact with the visual world in an intelligent manner.

Applications of Artificial Intelligence (AI) :

Artificial Intelligence (AI) is widely used in healthcare, education, finance, agriculture, transportation, and business. It supports medical diagnosis, personalized learning, fraud detection, smart farming, autonomous vehicles, and customer service through chatbots. AI improves efficiency, accuracy, and decision-making, helping organizations solve complex problems and enhance productivity.

* **AI used in Healthcare :**

Artificial Intelligence (AI) is transforming healthcare by assisting in disease diagnosis, medical imaging analysis, drug discovery, and patient monitoring. AI-powered systems help doctors make accurate decisions, predict health risks, and provide personalized treatments. It improves efficiency, reduces errors, and enhances the quality of healthcare services for patients.

* **AI used in Education :**

Artificial Intelligence (AI) enhances education by providing personalized learning experiences, intelligent tutoring systems, and automated assessment tools. It helps teachers track student progress, identify learning gaps, and deliver customized content. AI-powered educational platforms improve engagement, accessibility, and learning outcomes, making education more effective and efficient.

* **AI used in Finance :**

Artificial Intelligence (AI) plays a vital role in the finance sector by enabling fraud detection, risk assessment, algorithmic trading, and customer service automation. AI analyzes large volumes of financial data to identify patterns, predict market trends, and support investment decisions. It improves accuracy, efficiency, security, and decision-making in banking and financial management.

* **AI used in Agriculture :**

Artificial Intelligence (AI) is improving agriculture through smart farming techniques, crop monitoring, pest detection, and yield prediction. AI-powered systems analyze soil conditions, weather patterns, and crop health to support better farming decisions. It helps farmers increase productivity, reduce costs, optimize resource use, and promote sustainable agricultural practices.

*	**AI used in Transportation :**

Artificial Intelligence (AI) is transforming transportation by enabling autonomous vehicles, traffic management systems, route optimization, and predictive maintenance. AI analyzes real-time data to improve road safety, reduce congestion, and enhance travel efficiency. It helps transportation companies save time, lower costs, and provide faster, safer, and more reliable services.

*	**AI used in Business :**

Artificial Intelligence (AI) helps businesses improve efficiency, productivity, and decision-making. It is used for customer service, data analysis, sales forecasting, marketing automation, and process optimization. AI-powered tools analyze large amounts of data, identify trends, and provide valuable insights, enabling organizations to reduce costs, enhance customer satisfaction, and achieve business growth.

*	**AI used in Telecommunications :**

Artificial Intelligence (AI) is widely used in telecommunications to improve network management, optimize bandwidth, and enhance customer support. AI-powered systems monitor network performance, predict faults, and automate maintenance tasks. It helps service providers deliver reliable connectivity, reduce operational costs, improve security, and provide personalized services to customers.

*	**AI used in Automation and Robotics :**

Automation and Robotics are important applications of Artificial Intelligence that enable machines to perform tasks with minimal human intervention. Automation focuses on using technology to streamline processes and increase efficiency, while robotics involves the design and operation of intelligent machines. These technologies are widely used in manufacturing, healthcare, agriculture, logistics, and service industries. They help improve productivity, reduce errors, lower operational costs, and enhance safety. As technology advances, automation and robotics continue to transform industries and improve the quality of life.

*	**AI used in Data Security :**

Artificial Intelligence (AI) enhances data security by detecting cyber threats, identifying suspicious activities, and preventing unauthorized access. AI-powered security systems analyze large amounts of data in real time to recognize patterns and predict potential attacks. This helps organizations protect sensitive information, improve cybersecurity, and reduce security risks effectively.

*	**AI used in Social Media :**

Artificial Intelligence (AI) plays a significant role in social media by personalizing content, recommending posts, and improving user engagement. AI analyzes user behavior, interests, and

interactions to deliver relevant content. It is also used for targeted advertising, sentiment analysis, spam detection, and content moderation, enhancing the overall user experience.

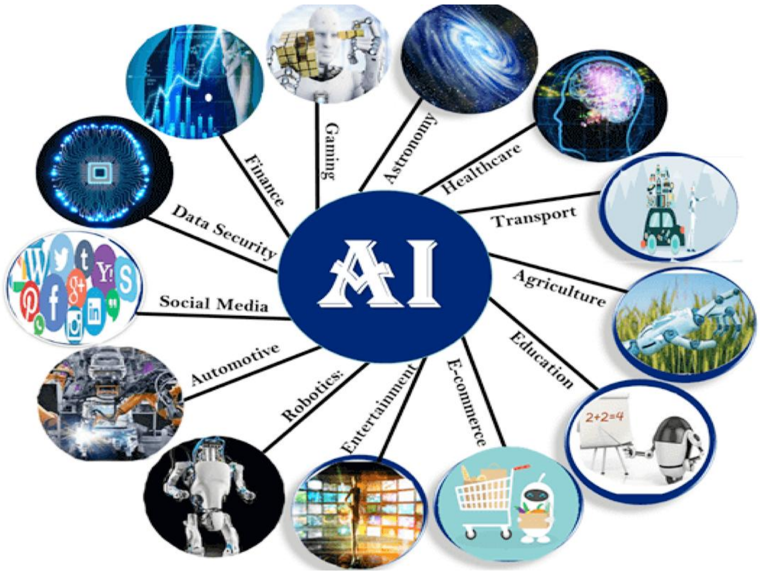

Future of Artificial Intelligence (AI) :

The future of Artificial Intelligence (AI) is highly promising and transformative. AI is expected to play a significant role in healthcare, education, agriculture, transportation, business, and scientific research. Advanced AI systems will improve automation, decision-making, and problem-solving capabilities, making processes faster and more efficient. AI-powered technologies such as autonomous vehicles, smart assistants, and intelligent robots will become more common in everyday life. In education, AI will support personalized learning, while in healthcare it will enhance diagnosis and treatment. As AI continues to evolve, ethical considerations, data privacy, and responsible development will remain essential for ensuring its beneficial impact on society.

Bibliography :

1. Russell, S., & Norvig, P. (2021). Artificial Intelligence: A Modern Approach (4th ed.). Pearson Education.
2. Nilsson, N. J. (2022). The Quest for Artificial Intelligence: A History of Ideas and Achievements. Cambridge University Press.
3. Rich, E., Knight, K., & Nair, S. B. (2019). Artificial Intelligence (3rd ed.). McGraw-Hill Education.
4. Kapoor, A., & Sharma, R. (2023). Artificial Intelligence and Machine Learning Applications. BPB Publications.
5. Goodfellow, I., Bengio, Y., & Courville, A. (2016). Deep Learning. MIT Press.

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 148–152

सिन्धु घाटी सभ्यता एक परिचय

भूमिका पारीक
लेखिका

भारत का इतिहास सिंधु घाटी सभ्यता से प्रारंभ होता है जिसे हम हड़प्पा सभ्यता के नाम से भी जानते हैं।

यह सभ्यता लगभग 2500 ईस्वी पूर्व दक्षिण एशिया के पश्चिमी भाग मैं फैली हुई थी, जो कि वर्तमान में पाकिस्तान तथा पश्चिमी भारत के नाम से जाना जाता है।

सिंधु घाटी सभ्यता मिस्र, मेसोपोटामिया, भारत और चीन की चार सबसे बड़ी प्राचीन नगरीय सभ्यताओं से भी अधिक उन्नत थी।

1920 में, भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा किये गए सिंधु घाटी के उत्खनन से प्राप्त अवशेषों से हड़प्पा तथा मोहनजोदडो जैसे दो प्राचीन नगरों की खोज हुई।

भारतीय पुरातत्त्व विभाग के तत्कालीन डायरेक्टर जनरल जॉन मार्शल ने सन 1924 में सिंधु घाटी में एक नई सभ्यता की खोज की घोषणा की।

हड़प्पा सभ्यता के महत्त्वपूर्ण स्थल –

स्थल	खोजकर्ता	अवस्थिति	महत्त्वपूर्ण खोज
हड़प्पा	दयाराम साहनी		

(1921) पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में मोंटगोमरी जिले में रावी नदी के तट पर स्थित है।

मनुष्य के शरीर की बलुआ पत्थर की बनी मूर्तियाँ :

- अन्नागार
- बैलगाड़ी
- मोहनजोदड़ो
- (मृतकों का टीला) राखलदास बनर्जी

(1922) पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के लरकाना जिले में सिंधु नदी के तट पर स्थित है।

विशाल स्नानागर :

- अन्नागार
- कांस्य की नर्तकी की मूर्ति
- पशुपति महादेव की मुहर

- दाढ़ी वाले मनुष्य की पत्थर की मूर्ति
- बुने हुए कपडे।

सुत्कान्गेडोर स्टीन (1929) पाकिस्तान के दक्षिण–पश्चिमी राज्य बलूचिस्तान में दाश्त नदी के किनारे पर स्थित है।

हड़प्पा और बेबीलोन के बीच व्यापार का केंद्र बिंदु था।

चन्हुदड़ो एन .जी. मजूमदार

(1931) सिंधु नदी के तट पर सिंध प्रांत में।

मनके बनाने की दुकानें

बिल्ली का पीछा करते हुए कुत्ते के पदचिन्ह

आमरी एन. जी. मजूमदार (1935) सिंधु नदी के तट पर।

हिरन के साक्ष्य

कालीबंगन घोष

(1953) राजस्थान में घग्गर नदी के किनारे।

अग्नि वेदिकाएँ :

- ऊंट की हड्डियाँ
- लकड़ी का हल
- लोथल आर. राव

(1953) गुजरात में कैम्बे की कड़ी के नजदीक भोगवा नदी के किनारे पर स्थित।

मानव निर्मित बंदरगाह :

- गोदीवाडा
- चावल की भूसी
- अग्नि वेदिकाएं
- शतरंज का खेल
- सुरकोतदा जे.पी. जोशी

(1964) गुजरात।

घोड़े की हड्डियाँ :

- मनके
- बनावली आर.एस. विष्ट

(1974) हरियाणा के हिसार जिले में स्थित।

मनके :

- जौ

हड़प्पा पूर्व और हड़प्पा संस्कृतियों के साक्ष्य :

धौलावीरा आर.एस.विष्ट

(1985) गुजरात में कच्छ के रण में स्थित।

जल निकासी प्रबंधन :

- जल कुंड
- सिंधु घाटी सभ्यता के चरण

सिंधु घाटी सभ्यता के तीन चरण हैं–

प्रारंभिक हड़प्पाई सभ्यता (3300 ई. पू.–2600 ई. पू. तक) परिपक्व हड़प्पाई सभ्यता (2600 ई. पू–1900 ई.पू. तक) उत्तर हड़प्पाई सभ्यता (1900 ई. पू.–1300 ई. पू. तक)

प्रारंभिक हड़प्पाई चरण 'हाकरा चरण' से संबंधित है, जिसे घग्गर–हाकरा नदी घाटी में चिह्नित किया गया है।

हड़प्पाई लिपि का प्रथम उदाहरण लगभग 3000 ई.पू के समय का मिलता है।

इस चरण की विशेषताएं एक केंद्रीय इकाई का होना तथा बढते हुए नगरीय गुण थे।

व्यापार क्षेत्र विकसित हो चुका था और खेती के साक्ष्य भी मिले हैं। उस समय मटर, तिल, खजूर, रुई आदि की खेती होती थी।

कोटदीजी नामक स्थान परिपक्व हड़प्पाई सभ्यता के चरण को प्रदर्शित करता है।

2600 ई.पू. तक सिंधु घाटी सभ्यता अपनी परिपक्व अवस्था में प्रवेश कर चुकी थी।

परिपक्व हड़प्पाई सभ्यता के आने तक प्रारंभिक हड़प्पाई सभ्यता बड़े–बड़े नगरीय केंद्रों में परिवर्तित हो चुकी थी। जैसे– हड़प्पा और मोहनजोदड़ो वर्तमान पाकिस्तान में तथा लोथल जो कि वर्तमान में भारत के गुजरात राज्य में स्थित है।

सिंधु घाटी सभ्यता के क्रमिक पतन का आरंभ 1800 ई.पू. से माना जाता है,1700 ई.पू. तक आते–आते हड़प्पा सभ्यता के कई शहर समाप्त हो चुके थे।

परंतु प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता के बाद की संस्कृतियों में भी इसके तत्व देखे जा सकते हैं। कुछ पुरातात्त्विक आँकड़ों के अनुसार उत्तर हड़प्पा काल का अंतिम समय 1000 ई.पू. – 900 ई. पू. तक बताया गया है।

नगरीय योजना और विन्यास –

- हड़प्पाई सभ्यता अपनी नगरीय योजना प्रणाली के लिये जानी जाती है।
- मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के नगरों में अपने–अपने दुर्ग थे जो नगर से कुछ ऊँचाई पर स्थित होते थे जिसमें अनुमानतः उच्च वर्ग के लोग निवास करते थे।
- दुर्ग से नीचे सामान्यतः ईंटों से निर्मित नगर होते थे, जिनमें सामान्य लोग निवास करते थे।
- हड़प्पा सभ्यता की एक ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि इस सभ्यता में ग्रिड प्रणाली मौजूद थी जिसके अंतर्गत सडकें एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं।
- अन्न भंडारों का निर्माण हड़प्पा सभ्यता के नगरों की प्रमुख विशेषता थी।
- जली हुई ईंटों का प्रयोग हड़प्पा सभ्यता की एक प्रमुख विशेषता थी क्योंकि समकालीन मिस्र में मकानों के निर्माण के लिये शुष्क ईंटों का प्रयोग होता था।

- हड़प्पा सभ्यता में जल निकासी प्रणाली बहुत प्रभावी थी।
- हर छोटे और बड़े घर के अंदर स्वंय का स्नानघर और आँगन होता था।
- कालीबंगा के बहुत से घरों में कुएँ नही पाए जाते थे।
- कुछ स्थान जैसे लोथल और धौलावीरा में संपूर्ण विन्यास मजबूत और नगर दीवारों द्वारा भागों में विभाजित थे।

कृषि :–

- हड़प्पाई गाँव मुख्यतः प्लावन मैदानों के पास स्थित थे, जो पर्याप्त मात्रा में अनाज का उत्पादन करते थे।
- गेहूँ, जौ, सरसों, तिल, मसूर आदि का उत्पादन होता था। गुजरात के कुछ स्थानों से बाजरा उत्पादन के संकेत भी मिले हैं,जबकि यहाँ चावल के प्रयोग के संकेत तुलनात्मक रूप से बहुत ही दुर्लभ मिलते हैं।
- सिंधु सभ्यता के मनुष्यों ने सर्वप्रथम कपास की खेती प्रारंभ की थी।
- वास्तविक कृषि परंपराओं को पुनर्निर्मित करना कठिन होता है क्योंकि कृषि की प्रधानता का मापन इसके अनाज उत्पादन क्षमता के आधार पर किया जाता है।
- मुहरों और टेराकोटा की मूर्तियों पर सांड के चित्र मिले हैं तथा पुरातात्त्विक खुदाई से बैलों से जुते हुए खेत के साक्ष्य मिले हैं।
- हड़प्पा सभ्यता के अधिकतम स्थान अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में मिले हैं, जहाँ खेती के लिये सिंचाई की आवश्यकता होती है।
- नहरों के अवशेष हड़प्पाई स्थल शोर्तुगई अफगानिस्तान में पाए गए हैं, लेकिन पंजाब और सिंध में नहीं।
- हड़प्पाई लोग कृषि के साथ–साथ बड़े पैमाने पर पशुपालन भी करते थे।
- घोड़े के साक्ष्य सूक्ष्म रूप में मोहनजोदड़ो और लोथल की एक संशययुक्त टेराकोटा की मूर्ति से मिले हैं। हड़प्पाई संस्कृति किसी भी स्थिति में अश्व केंद्रित नहीं थी।

अर्थव्यवस्था :–

- अनगिनत संख्या में मिली मुहरें, एक समान लिपि, वजन और मापन की विधियों से सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों के जीवन में व्यापार के महत्त्व के बारे में पता चलता है।
- हड़प्पाई लोग पत्थर, धातुओं, सीप या शंख का व्यापर करते थे।
- धातु मुद्रा का प्रयोग नहीं होता था। व्यापार की वस्तु विनिमय प्रणाली मौजूद थी।
- अरब सागर के तट पर उनके पास कुशल नौवहन प्रणाली भी मौजूद थी।
- उन्होंने उत्तरी अफगानिस्तान में अपनी व्यापारिक बस्तियाँ स्थापित की थीं जहाँ से प्रमाणिक रूप से मध य एशिया से सुगम व्यापार होता था।
- दजला –फरात नदियों की भूमि वाले क्षेत्र से हड़प्पा वासियों के वाणिज्यिक संबंध थे।
- हड़प्पाई प्राचीन 'लैपिस लाजुली' मार्ग से व्यापार करते थे जो संभवतः उच्च लोगों की सामाजिक पृष्ठभूमि से संबधित था।

शिल्पकला :–

- हड़प्पाई कांस्य की वस्तुएँ निर्मित करने की विधि, उसके उपयोग से भली भाँति परिचित थे।
- तांबा राजस्थान की खेतड़ी खान से प्राप्त किया जाता था और टिन अनुमानतः अफगानिस्तान से लाया जाता था।
- बुनाई उद्योग में प्रयोग किये जाने वाले ठप्पे बहुत सी वस्तुओं पर पाए गए हैं।
- बड़ी–बड़ी ईंट निर्मित संरचनाओं से राजगीरी जैसे महत्त्वपूर्ण शिल्प के साथ साथ राजमिस्त्री वर्ग के अस्तित्व का पता चलता है।
- हड़प्पाई नाव बनाने की विधि, मनका बनाने की विधि, मुहरें बनाने की विधि से भली–भाँति परिचित थे। टेराकोटा की मूर्तियों का निर्माण हड़प्पा सभ्यता की महत्त्वपूर्ण शिल्प विशेषता थी।
- जौहरी वर्ग सोने, चांदी और कीमती पत्थरों से आभूषणों का निर्माण करते थे।
- मिट्टी के बर्तन बनाने की विधि पूर्णतः प्रचलन में थी, हड़प्पा वासियों की स्वयं की विशेष बर्तन बनाने की विधियाँ थीं, हड़प्पाई लोग चमकदार बर्तनों का निर्माण करते थे।

संस्थाएँ :–

सिंधु घाटी सभ्यता से बहुत कम मात्रा में लिखित साक्ष्य मिले हैं, जिन्हें अभी तक पुरातत्त्वविदों तथा शोधार्थियों द्वारा पढ़ा नहीं जा सका है।

एक परिणाम के अनुसार, सिंधु घाटी सभ्यता में राज्य और संस्थाओं की प्रकृति समझना काफी कठिनाई का कार्य है।

हड़प्पाई स्थलों पर किसी मंदिर के प्रमाण नहीं मिले हैं। अतः हड़प्पा सभ्यता में पुजारियों के प्रुभुत्व या विद्यमानता को नकारा जा सकता है।

हड़प्पा सभ्यता अनुमानतः व्यापारी वर्ग द्वारा शासित थी।

अगर हम हड़प्पा सभ्यता में शक्तियों के केंद्रण की बात करें तो पुरातत्त्वीय अभिलेखों द्वारा कोई ठोस जानकारी नहीं मिलती है।

कुछ पुरातत्त्वविदों की राय में हड़प्पा सभ्यता में कोई शासक वर्ग नहीं था तथा समाज के हर व्यक्ति को समान दर्जा प्राप्त था।

कुछ पुरातत्त्वविदों की राय में हड़प्पा सभ्यता में कई शासक वर्ग मौजूद थे ,जो विभिन्न हड़प्पाई शहरों में शासन करते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. रामशरण शर्मा।
   पुस्तक :– प्रारम्भिक भारत का परिचय।
2. मुहरे।
3. दयाराम साहनी।
4. इलेक्ट्रेक लन्दन न्युज।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 153–158

सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी 'बंद होठों का चीत्कार' में स्त्री जीवन

बी. श्रीहरि (पीएच.डी, शोधार्थी)
डॉ. बी. संतोषी कुमारी (शोध निर्देशक)
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास चेन्नई–600017

भारतीय कथा साहित्य में स्त्री जीवन सदैव एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। विभिन्न साहित्यकारों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसकी पीड़ा, संघर्ष और आत्मनिर्भरता को चित्रित किया है। आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में सुरेश्वर त्रिपाठी का विशेष स्थान है, जिन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ को गहराई से उकेरा है। उनकी कहानी "बंद होठों का चीत्कार" विशेष रूप से स्त्री जीवन की जटिलताओं को उजागर करती है। यह कहानी केवल एक कथा नहीं बल्कि स्त्री जीवन की एक सशक्त अभिव्यक्ति है, जिसमें स्त्री की मौन पीड़ा और उसके भीतर छिपे विद्रोह को दर्शाया गया है। शीर्षक ही अपने आप में अत्यंत प्रतीकात्मक है, जो यह संकेत देता है कि स्त्री का मौन भी एक चीख के समान है, जिसे समाज सुनने में असमर्थ रहता है। भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक संरचना स्त्री को अक्सर सीमाओं में बाँध देती है। उसे घर, परिवार और समाज की मर्यादाओं के भीतर ही रहकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में उसकी व्यक्तिगत इच्छाएँ, भावनाएँ और सपने कहीं दबकर रह जाते हैं। "बंद होठों का चीत्कार" इसी दबे हुए अस्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है। कहानी में स्त्री पात्र का जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। वह अपने अधिकारों और आत्म–सम्मान के लिए भीतर ही भीतर संघर्ष करती है, परंतु बाहरी दुनिया के सामने मौन रहती है। यह मौन उसकी कमजोरी नहीं बल्कि उसकी मजबूरी है। समाज की कठोर संरचना उसे खुलकर बोलने का अवसर नहीं देती।

सुरेश्वर त्रिपाठी ने इस कहानी में स्त्री के मानसिक और भावनात्मक पक्ष को भी गहराई से उकेरा है। स्त्री का आंतरिक द्वंद्व एक ओर परंपराओं का दबाव और दूसरी ओर स्वतंत्रता की चाह पूरी कहानी में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह द्वंद्व उसे निरंतर आत्ममंथन की स्थिति में रखता है। कहानी यह भी दर्शाती है कि स्त्री का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं होता, बल्कि यह सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा होता है। परिवार, समाज और परंपराएँ मिलकर उसकी आवाज को दबाने का कार्य करते हैं। लेकिन इसके बावजूद स्त्री के भीतर प्रतिरोध की चिंगारी बनी रहती है, जो कभी न कभी एक सशक्त स्वरूप में बाहर आती है। इस कहानी का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह स्त्री को केवल पीड़ित के रूप में प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि उसे एक जागरूक चेतना के रूप में भी दिखाती है। वह परिस्थितियों को समझती है और धीरे–धीरे आत्मबोध की दिशा में आगे बढ़ती है।

यही आत्मबोध उसकी मुक्ति का मार्ग बनता है।

"बंद होठों का चीत्कार" इस बात को भी स्पष्ट करती है कि समाज में परिवर्तन केवल बाहरी सुधारों से नहीं आता, बल्कि मानसिकता के परिवर्तन से आता है। जब तक समाज स्त्री को समान दृष्टि से नहीं देखेगा, तब तक उसका संघर्ष जारी रहेगा। यह कहानी स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं दमन, संघर्ष, मौन प्रतिरोध और आत्म–जागरण का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। यह न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक है।

मुख्य शब्द – स्त्री जीवन, पितृसत्ता, मौन पीड़ा, आत्मबोध, स्त्री संघर्ष, सामाजिक यथार्थ, स्त्री सशक्तिकरण, हिंदी कहानी, सुरेश्वर त्रिपाठी, बंद होठों का चीत्कार।

सारांश :

सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी "बंद होठों का चीत्कार" स्त्री जीवन की उन जटिल यथार्थवादी स्थितियों को उजागर करती है, जहाँ स्त्री सामाजिक, पारिवारिक और मानसिक उत्पीड़न के बीच अपनी पहचान और अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है। यह कहानी स्त्री के मौन संघर्ष, उसकी पीड़ा और भीतर ही भीतर उठते प्रतिरोध को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। लेखक ने प्रतीकात्मक शीर्षक के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि स्त्री का मौन भी एक प्रकार का चीत्कार है, जिसे समाज सुन नहीं पाता या सुनना नहीं चाहता। इस अध्ययन का उद्देश्य कहानी में चित्रित स्त्री जीवन के विभिन्न आयामों जैसे पारंपरिक पितृसत्तात्मक ढाँचा, सामाजिक बंधन, भावनात्मक दमन और आत्म–जागरण का अध्ययन करना है। कहानी में स्त्री पात्र का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। यह अध्ययन "बंद होठों का चीत्कार" स्त्री की उस आवाज का प्रतीक है जो दबाई गई है, लेकिन समाप्त नहीं हुई है। यह कहानी स्त्री चेतना के उभार और आत्म–सम्मान की दिशा में बढ़ते कदमों को भी दर्शाती है।

सुरेश्वर त्रिपाठी का कथा-साहित्य और सामाजिक दृष्टि : सुरेश्वर त्रिपाठी हिंदी कथा–साहित्य के उन महत्वपूर्ण कथाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के यथार्थ, उसकी विसंगतियों और मानवीय संवेदनाओं को गहराई से प्रस्तुत किया है। उनका कथा–साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना और आलोचनात्मक दृष्टि का सशक्त दस्तावेज भी है। वे अपने लेखन में विशेष रूप से उन वर्गों और व्यक्तियों की स्थिति को उजागर करते हैं, जो समाज की मुख्यधारा में रहते हुए भी हाशिए पर जीवन जीने को मजबूर हैं। त्रिपाठी की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी यथार्थवादी दृष्टि है। वे समाज को किसी आदर्श या कल्पना लोक के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसे उसकी वास्तविकता के साथ चित्रित करते हैं। उनके कथा–साहित्य में ग्रामीण और शहरी जीवन की समस्याएँ, पारिवारिक संबंधों की जटिलताएँ, स्त्री जीवन की पीड़ा, आर्थिक विषमता और सामाजिक असमानता जैसे विषय प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। वे घटनाओं को केवल कथानक के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उनके पीछे छिपे सामाजिक कारणों को भी उजागर करते हैं। उनकी सामाजिक दृष्टि अत्यंत संवेदनशील और मानवीय है। वे समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और भेदभाव को गहराई से समझते हैं और अपनी कहानियों के माध्यम से उसके प्रति विरोध दर्ज कराते हैं। विशेष रूप से स्त्री जीवन को लेकर उनकी दृष्टि अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण और विचारशील है। उनकी अनेक कहानियों में स्त्री पात्र केवल सहायक भूमिका में नहीं हैं, बल्कि वे संघर्षशील, विचारशील और आत्मनिर्भर

बनने की दिशा में अग्रसर दिखाई देती हैं। "बंद होठों का चीत्कार" जैसी कहानियाँ इसी दृष्टिकोण का उदाहरण हैं, जहाँ स्त्री की मौन पीड़ा को समाज के सामने लाया गया है।

सुरेश्वर त्रिपाठी का कथा–साहित्य सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा से भी जुड़ा हुआ है। वे यह मानते हैं कि साहित्य का उद्देश्य केवल स्थिति का चित्रण करना नहीं, बल्कि पाठकों को सोचने और बदलने के लिए प्रेरित करना भी है। इसलिए उनकी कहानियों में एक प्रकार की जागरूकता और सुधारवादी दृष्टि दिखाई देती है। वे परंपराओं और रूढ़ियों पर प्रश्न उठाते हैं तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता और आत्मसम्मान का समर्थन करते हैं। उनकी भाषा सरल, सहज और प्रभावशाली है, जो पाठक को सीधे कहानी के भाव से जोड़ देती है। वे जटिल शब्दावली की बजाय जीवन से जुड़ी सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं, जिससे उनकी कहानियाँ अधिक प्रभावशाली बन जाती हैं। उनकी शैली में संवेदना और विचार दोनों का संतुलन देखने को मिलता है।

सुरेश्वर त्रिपाठी का कथा–साहित्य सामाजिक यथार्थ का दर्पण है, जिसमें समाज के विभिन्न पहलुओं को गहराई से देखा और समझा जा सकता है। उनकी सामाजिक दृष्टि उन्हें एक संवेदनशील और जागरूक कथाकार के रूप में स्थापित करती है। उनके लेखन का उद्देश्य केवल कहानी कहना नहीं, बल्कि समाज को एक नई दिशा और दृष्टि प्रदान करना भी है।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति : पितृसत्तात्मक समाज वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सत्ता, निर्णय–निर्माण और अधिकार मुख्य रूप से पुरुषों के हाथों में केंद्रित होते हैं। ऐसे समाज में स्त्री की स्थिति अक्सर द्वितीयक या सहायक भूमिका तक सीमित कर दी जाती है। स्त्री को परिवार, विवाह और सामाजिक परंपराओं के दायरे में बाँधकर रखा जाता है, जिससे उसकी स्वतंत्र पहचान और आत्म निर्णय की क्षमता प्रभावित होती है। पितृसत्तात्मक संरचना में स्त्री को "कर्तव्यों" के बोझ तले अधिक देखा जाता है, जबकि उसके "अधिकारों" को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जाता है। उसे घर की देखभाल, बच्चों के पालन–पोषण और पारिवारिक मर्यादाओं के पालन तक सीमित कर दिया जाता है। इसके विपरीत, पुरुष को निर्णय लेने, बाहरी दुनिया से संबंध रखने और आर्थिक नियंत्रण का अधिकार प्राप्त होता है। इस व्यवस्था का सबसे गहरा प्रभाव स्त्री की मानसिक और भावनात्मक स्थिति पर पड़ता है। कई बार उसे अपने विचार, इच्छाएँ और भावनाएँ व्यक्त करने का अवसर नहीं मिलता। समाज में "इज्जत" और "परंपरा" के नाम पर उसकी आवाज को दबा दिया जाता है। परिणामस्वरूप, वह मौन रहने को मजबूर होती है, जो धीरे–धीरे उसके भीतर तनाव, असंतोष और आत्म–संघर्ष को जन्म देता है। शिक्षा और जागरूकता के अभाव में यह स्थिति और भी जटिल हो जाती है। हालाँकि आधुनिक समय में स्त्री शिक्षा और अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है, फिर भी ग्रामीण और कुछ शहरी क्षेत्रों में पितृसत्तात्मक सोच का प्रभाव अभी भी मजबूत है। कई स्त्रियाँ आज भी घरेलू हिंसा, भेदभाव और सामाजिक नियंत्रण का सामना कर रही हैं। साहित्य में भी पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति को व्यापक रूप से चित्रित किया गया है। "बंद होठों का चीत्कार" जैसी कहानियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि स्त्री का मौन भी एक प्रकार का प्रतिरोध है, जो उसके भीतर चल रहे संघर्ष को दर्शाता है।

स्त्री का मौन और आंतरिक पीड़ा का चित्रण : सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी "बंद होठों का चीत्कार" स्त्री जीवन के उस संवेदनशील पक्ष को उजागर करती है, जहाँ उसका मौन ही उसकी सबसे बड़ी अभिव्यक्ति बन जाता है। यह मौन केवल शब्दों का अभाव नहीं है, बल्कि उसके भीतर दबे हुए दर्द, असंतोष और संघर्ष की

गूंज है। कहानी में स्त्री पात्र की स्थिति यह स्पष्ट करती है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को अक्सर अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने की स्वतंत्रता नहीं मिलती, जिसके कारण वह भीतर ही भीतर टूटती और संघर्ष करती रहती है। कहानी में स्त्री का मौन उसकी सामाजिक स्थिति और पारिवारिक दबाव का परिणाम है। उसे यह सिखाया जाता है कि "चुप रहना ही शालीनता है" और "स्त्री की गरिमा मौन में है।" इस प्रकार के सामाजिक संस्कार उसके व्यक्तित्व को धीरे–धीरे सीमित कर देते हैं। वह अपने अधिकारों और इच्छाओं को व्यक्त करना चाहती है, लेकिन परिस्थितियाँ उसे रोक देती हैं। परिणामस्वरूप, उसका बाहरी जीवन शांत दिखाई देता है, परंतु भीतर एक तीव्र भावनात्मक तूफान चलता रहता है। यह मौन उसकी आंतरिक पीड़ा को और गहरा कर देता है। कहानी में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि स्त्री पात्र अपने जीवन में उपेक्षा, दमन और भावनात्मक असंतोष का अनुभव करती है। उसकी पीड़ा किसी एक घटना का परिणाम नहीं होती, बल्कि यह उसके संपूर्ण जीवन के अनुभवों का संचय होती है। वह लगातार अपने अस्तित्व, पहचान और आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करती है, लेकिन समाज की कठोर संरचना उसे आगे बढ़ने नहीं देती।

सुरेश्वर त्रिपाठी ने इस कहानी में स्त्री की पीड़ा को केवल बाहरी घटनाओं के माध्यम से नहीं, बल्कि उसके आंतरिक मनोविज्ञान के माध्यम से भी व्यक्त किया है। उसका मौन उसके भीतर चल रहे आत्मसंघर्ष का प्रतीक है। वह कई बार अपने मन की बात कहना चाहती है, लेकिन परिस्थितियाँ और सामाजिक भय उसे रोक देते हैं। यही कारण है कि उसका मौन धीरे–धीरे एक "चीत्कार" में बदल जाता है, जो बाहर सुनाई नहीं देता, लेकिन उसके भीतर निरंतर गूंजता रहता है। कहानी का शीर्षक ही इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि स्त्री का मौन निष्क्रिय नहीं है, बल्कि उसमें गहरी पीड़ा और विरोध छिपा हुआ है। "बंद होंठ" उसके दबे हुए स्वर का प्रतीक हैं, जबकि "चीत्कार" उसके भीतर की तीव्र वेदना को दर्शाता है। यह विरोधाभास स्त्री जीवन की जटिलता को और अधिक प्रभावी बनाता है। इस कहानी में स्त्री का मौन केवल उसकी कमजोरी नहीं है, बल्कि यह सामाजिक व्यवस्था की कठोरता का परिणाम है। वह अपनी स्थिति को समझती है और धीरे–धीरे आत्मबोध की ओर अग्रसर होती है। उसका यह आंतरिक जागरण संकेत देता है कि मौन के पीछे एक परिवर्तन की संभावना छिपी हुई है। "बंद होठों का चीत्कार" कहानी में स्त्री का मौन और उसकी आंतरिक पीड़ा अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित की गई है। यह मौन न केवल उसकी व्यक्तिगत वेदना को दर्शाता है, बल्कि पूरे समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक मानसिकता पर भी प्रश्न उठाता है। यह कहानी पाठकों को स्त्री की वास्तविक स्थिति को समझने और उसके प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

स्त्री संघर्ष और सामाजिक बंधन : सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी "बंद होठों का चीत्कार" स्त्री जीवन के संघर्ष और सामाजिक बंधन उस स्त्री की व्यथा को उजागर करती है, जो परंपरागत सामाजिक ढाँचे में रहते हुए अपने अस्तित्व, पहचान और स्वतंत्रता के लिए निरंतर संघर्ष करती है, लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण खुलकर अपनी आवाज नहीं उठा पाती। कहानी में स्त्री संघर्ष का मूल आधार उसका सामाजिक परिवेश है, जहाँ उसे जन्म से ही कुछ निश्चित भूमिकाओं में बाँध दिया जाता है। परिवार और समाज यह तय कर देते हैं कि स्त्री को कैसा व्यवहार करना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए और किस प्रकार जीवन जीना चाहिए। इन अपेक्षाओं के बीच उसकी व्यक्तिगत इच्छाएँ और सपने दबकर रह जाते हैं। वह अपने मन की बात कहना चाहती है, लेकिन सामाजिक मर्यादाओं और भय के कारण चुप रहने को मजबूर हो जाती है। यह सामाजिक बंधन स्त्री के जीवन

को कई स्तरों पर प्रभावित करता है। सबसे पहले, यह उसकी स्वतंत्रता को सीमित करता है। उसे निर्णय लेने का अधिकार नहीं दिया जाता, चाहे वह शिक्षा, विवाह या व्यक्तिगत जीवन से संबंधित हो। दूसरा, यह बंधन उसकी मानसिक स्थिति पर भी गहरा प्रभाव डालता है। वह भीतर ही भीतर असंतोष, पीड़ा और आत्मसंघर्ष से गुजरती है, लेकिन बाहरी दुनिया के सामने सामान्य बने रहने का प्रयास करती है। कहानी में स्त्री संघर्ष केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि आंतरिक द्वंद्व से भी जुड़ा हुआ है। एक ओर वह परंपराओं का सम्मान करना चाहती है, तो दूसरी ओर अपने अस्तित्व को स्वतंत्र रूप से जीने की इच्छा भी रखती है। यह द्वंद्व उसे लगातार मानसिक तनाव में रखता है। वह समझती है कि उसका मौन उसकी कमजोरी नहीं है, बल्कि सामाजिक दबावों का परिणाम है, फिर भी वह उनसे सीधे टकरा नहीं पाती। "बंद होठों का चीत्कार" का प्रतीकात्मक अर्थ भी इसी संघर्ष को और गहराई से प्रस्तुत करता है। स्त्री के बंद होंठ उसके दमन और चुप्पी का प्रतीक हैं, जबकि उसका चीत्कार उसके भीतर चल रहे विद्रोह और पीड़ा का संकेत है। यह चीत्कार बाहर सुनाई नहीं देता, लेकिन उसकी आत्मा में लगातार गूंजता रहता है, जो उसके संघर्ष को और तीव्र बना देता है। सामाजिक बंधनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे केवल बाहरी नियमों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि व्यक्ति की सोच और मानसिकता को भी प्रभावित करते हैं। कहानी में स्त्री पात्र धीरे–धीरे यह समझने लगती है कि उसका संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि यह पूरे सामाजिक ढाँचे से जुड़ा हुआ है। यह समझ उसके भीतर आत्मबोध को जन्म देती है, जो उसके परिवर्तन की दिशा में पहला कदम है। हालाँकि कहानी में उसका संघर्ष तुरंत सफलता में नहीं बदलता, लेकिन यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि स्त्री अपने भीतर प्रतिरोध की शक्ति विकसित कर रही है। यह प्रतिरोध भविष्य में सामाजिक बंधनों को तोड़ने की क्षमता रखता है।

मानसिक एवं भावनात्मक दमन के आयाम : सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी "बंद होठों का चीत्कार" में मानसिक एवं भावनात्मक दमन के विविध आयामों का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया गया है। यह कहानी उस स्त्री जीवन की त्रासदी को सामने लाती है, जहाँ बाहरी रूप से सामान्य दिखाई देने वाला जीवन भीतर से लगातार टूटन, दबाव और असंतोष से भरा होता है। यहाँ दमन केवल शारीरिक या सामाजिक स्तर पर नहीं है, बल्कि यह स्त्री के मन और भावनाओं तक गहराई से फैला हुआ है। मानसिक दमन का पहला आयाम सामाजिक अपेक्षाओं से जुड़ा है। स्त्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह हमेशा सहनशील, शांत और आज्ञाकारी बनी रहे। उसे यह सिखाया जाता है कि विरोध करना या अपनी इच्छा व्यक्त करना अनुचित है। इस प्रकार की मानसिकता उसके विचारों की स्वतंत्रता को सीमित कर देती है। धीरे–धीरे वह अपने मन की बात कहना छोड़ देती है और अपने भीतर ही सब कुछ दबा लेती है। यही दबी हुई भावनाएँ उसके मानसिक तनाव का कारण बनती हैं। भावनात्मक दमन का दूसरा आयाम पारिवारिक संबंधों से संबंधित है। परिवार, जो सुरक्षा और स्नेह का केंद्र होना चाहिए, कई बार स्त्री के लिए नियंत्रण और दबाव का माध्यम बन जाता है। उसे अपने रिश्तों में भी संतुलन बनाए रखने के लिए अपनी भावनाओं का त्याग करना पड़ता है। वह दुखी होती है, आहत होती है, लेकिन फिर भी मौन रहकर परिस्थितियों को स्वीकार करती है। यह लगातार किया गया भावनात्मक समझौता उसके भीतर एक खालीपन और अकेलेपन की भावना पैदा करता है। तीसरा महत्वपूर्ण आयाम आत्म–अभिव्यक्ति के दमन से जुड़ा है। स्त्री अपने विचारों, इच्छाओं और सपनों को व्यक्त करना चाहती है, लेकिन सामाजिक भय और अस्वीकृति के कारण वह ऐसा नहीं कर पाती। यह स्थिति उसे मानसिक रूप से कमजोर बनाती है और आत्मविश्वास में

कमी लाती है। वह धीरे–धीरे यह मानने लगती है कि उसकी आवाज का कोई महत्व नहीं है। यही भावना उसके व्यक्तित्व को भीतर से प्रभावित करती है। कहानी में यह भी दर्शाया गया है कि मानसिक और भावनात्मक दमन अक्सर बाहरी रूप से दिखाई नहीं देता, लेकिन इसका प्रभाव गहरा और दीर्घकालिक होता है। "बंद होठों" का प्रतीक इसी दमन की स्थिति को व्यक्त करता है, जहाँ स्त्री बोल नहीं पाती, लेकिन भीतर ही भीतर उसका मन चीखता रहता है। यह "चीत्कार" उसके मानसिक संघर्ष और भावनात्मक पीड़ा का प्रतीक बन जाता है। इस दमन का एक और महत्वपूर्ण आयाम आत्म पहचान का संकट है। जब स्त्री लगातार अपनी इच्छाओं और भावनाओं को दबाती है, तो वह धीरे–धीरे अपनी पहचान को लेकर भ्रमित हो जाती है। वह स्वयं को समाज की अपेक्षाओं के अनुरूप ढालने की कोशिश में अपने वास्तविक अस्तित्व से दूर होती जाती है।

सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी "बंद होठों का चीत्कार" स्त्री जीवन की पीड़ा, संघर्ष और मौन प्रतिरोध का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करती है। यह कहानी दर्शाती है कि स्त्री का मौन केवल चुप्पी नहीं, बल्कि एक गहरी सामाजिक और मानसिक पीड़ा की अभिव्यक्ति है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर स्त्री की स्थिति अत्यंत जटिल और चुनौतीपूर्ण है, जहाँ वह अपने अधिकारों और पहचान के लिए निरंतर संघर्ष करती है। कहानी का मुख्य संदेश यह है कि स्त्री का दमन उसकी चेतना को समाप्त नहीं कर सकता। उसका आंतरिक प्रतिरोध धीरे–धीरे आत्म–जागरण की ओर बढ़ता है और वह अपनी स्थिति को समझने लगती है। यह आत्मबोध ही उसकी मुक्ति की दिशा में पहला कदम है। "बंद होठों का चीत्कार" न केवल एक साहित्यिक रचना है, बल्कि यह समाज को स्त्री की वास्तविक स्थिति पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है। यह कहानी स्त्री सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को भी रेखांकित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सुरेश्वर त्रिपाठी बंद होठों का चीत्कार, हिंदी कहानी संग्रह, 2015
2. सुरेश्वर त्रिपाठी, सुरेश्वर त्रिपाठी की प्रतिनिधि कहानियाँ, साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
3. रामविलास शर्मा, हिंदी कहानी का विकास। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
4. नगेन्द्र वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2014
5. नामवर सिंह, आलोचना और विचारधारा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011।
6. शिवकुमार मिश्र, हिंदी कहानीः स्वरूप और विकास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2016।
7. रमेश चतुर्वेदी, स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2019।
8. कमला पांडे, हिंदी साहित्य में स्त्री लेखन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013।
9. हरीश जोशी समकालीन हिंदी कहानी। साहित्य भवन, आगरा, 2017।
10. ओमप्रकाश यादव, सामाजिक यथार्थ और हिंदी कहानी अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2015
11. सुनीता गुप्ता भारतीय समाज और स्त्री जीवन। ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020।
12. हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य का इतिहास। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 159–170

श्रीगंगानगर जिले में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन

सरोज मोदी, रिसर्च फैलो, पीएच.डी. (शिक्षा),
डॉ. अनुराग मिश्रा, असिसटेंट प्रोफेसर,
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्रस्तावना :

हमारे देश में सबसे कीमती संपत्ति क्या है? बच्चे। यदि हम उन्हें सबसे अच्छे पालक, मार्गदर्शक और शिक्षक नहीं देते हैं, तो हम देश का भविष्य नष्ट कर रहे हैं। शिक्षक हमारे राष्ट्र के निर्माता हैं, लेकिन हम इस बारे में बहुत लापरवाह हैं। हम शिक्षकों को कम वेतन देते हैं, अयोग्य या कम प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति करते हैं और उनकी सहायता नहीं करते। हम विद्यालय नहीं जाते और उनसे नहीं पूछते– "हम क्या मदद कर सकते हैं?" हम भाग नहीं लेते। यह बच्चों की देखभाल का मामला है। यदि आपका बच्चा बीमार है, तो आप सबसे अच्छे डाक्टर की तलाश करते हैं। आप कहते हैं– "मुझे अपने बच्चे के लिए सबसे अच्छा सर्जन चाहिए।" लेकिन क्या हम ऐसा ही शिक्षकों के बारे में कहते हैं? नहीं, हम ऐसा नहीं कहते। हम जानते हैं कि सर्जन को अच्छा वेतन मिलता है, मिलना भी चाहिए ताकि उन्हें घर की चिंता न हो। यही स्थिति शिक्षकों के साथ भी होनी चाहिए– वे देश का भविष्य बनाने वाला सबसे महत्वपूर्ण पेशा हैं। और कुछ शिक्षक भविष्य को गलत दिशा में भी मोड़ रहे हैं या हम उन्हें वह सहायता नहीं दे रहे हैं जिसकी उन्हें जरूरत है।

अपने शोध की शुरुआत करने से पहले, मैंने सबसे पहले यह जानने की कोशिश की कि एक शिक्षक को "अच्छा शिक्षक" क्या बनाता है। प्रोफेसर लेवी का यह कथन पढ़ने के कुछ ही समय बाद कि अब तक किसी ने परिभाषित नहीं किया कि एक अच्छा शिक्षक क्या होता है मैंने शिक्षार्थियों से कहा कि वे एक या दो वाक्य में लिखें कि उनके अनुभव में एक अच्छा शिक्षक क्या होता है। उनके उत्तरों की श्रेणियाँ बहुत विविध थीं, लेकिन मैंने उनके द्वारा लिखे कागज के टुकड़ों को छांटा और उन्हें विभिन्न समूहों में रखा। फिर मैंने उन समूहों को एकत्र कर उन्हें सामान्य रूप से संबंधित ढाँचों में बाँटा। तीन–चौथाई उत्तर दो मुख्य समूहों में आ गए। पहले समूह को मैंने 'A' समूह कहा, और दूसरे को 'शिक्षा समूह' या 'E' समूह।

(1) "A" समूह में मुझे ऐसे शब्द मिले जैसे– ''सुलभ', 'उपलब्ध'' और ''संपर्क योग्य''। नीचे कुछ वाक्य दिए गए हैं जो उन्होंने मेरे प्रश्न के उत्तर में लिखे ''एक अच्छा शिक्षक कौन होता है?'' मैंने उन्हें थोडा संपादित किया

है, मुख्य रूप से उन्हें अधिक समान संरचना में लाने के लिए।

(1) **"A" समूह** – संपर्क योग्य शिक्षक अच्छे शिक्षक छात्रों की विषय से संबंधित जिज्ञासाओं को हल करने के लिए उपलब्ध होते हैं और उनकी चिंता करते हैं :–

- उनमें कोई ऊँचा या अलग–थलग रहने वाला दृष्टिकोण नहीं होता।
- वे छात्रों के साथ व्यक्तिगत स्तर पर संवाद कर सकते हैं।
- वे प्रत्येक छात्र को जानना चाहते हैं।
- वे अपने छात्रों को समय, प्रयास और ध्यान देते हैं।
- वे छात्रों के मित्र बनने को तैयार रहते हैं।
- वे वास्तव में छात्रों में रुचि रखते हैं।
- वे अपने छात्रों के साथ सक्रिय रूप से जुड़े रहते हैं।
- वे पहले मित्र होते हैं, फिर शिक्षक।

(2) **"E" समूह – उत्साही शिक्षक**

"E" समूह में मुझे ऐसे शब्द मिले जैसे – ''उत्साही'', ''हर कोई'', ''उत्साहित''। अच्छे शिक्षक–

- जो कुछ वे पढ़ाते हैं, उससे प्रेम करते हैं और उस प्रेम को कक्षा में व्यक्त करते हैं।
- उनके पास विषय का गहन ज्ञान और उसके प्रति उत्साह दोनों होते हैं।
- उनका उत्साह इतना स्पष्ट और प्रभावशाली होता है कि वह संक्रामक हो जाता है और छात्र भी उससे प्रभावित हो जाते हैं।
- उनमें सीखने और दूसरों को सिखाने की तीव्र इच्छा होती है– वे हर उस रोमांचक चीज को साझा करना चाहते हैं जो उन्होंने सीखी है।
- वे स्पष्ट रूप से शिक्षण को लेकर उत्साहित होते हैं।

इस प्रकार, अच्छे शिक्षक वे हैं जो अच्छा शिक्षक बनना चाहते हैं, जो जोखिम उठाते हैं, जिनका दृष्टिकोण सकारात्मक होता है, जिनके पास पर्याप्त समय होता है, जो शिक्षण को चित्रकारी के एक मंच की तरह मानते हैं, जो छात्रों को आत्मविश्वास देने का प्रयास करते हैं और साथ ही उन्हें नई चुनौतियों की ओर धकेलते हैं, जो छात्रों की प्रेरणा प्रणाली के भीतर काम करके उन्हें प्रेरित करते हैं, जो केवल छात्र मूल्यांकन पर विश्वास नहीं करते, और जो छात्रों की सुनते हैं।

लेकिन अच्छे शिक्षकों की एक समस्या यह होती है कि वे अंततः ''अच्छे शिक्षक'' नामक परिभाषित घेरे में सीमित नहीं रह सकते। प्रेरक शिक्षकों की दिक्कत यह है कि वे अक्सर परंपरा को तोड़ते हुए किसी दूर के क्षितिज की ओर निकल जाते हैं, जहाँ उन्हें कोई पहचान नहीं सकता और प्रेरणादायक शिक्षकों की समस्या यह होती है कि वे कभी एक ही स्थान पर रुकते नहीं हैं, शायद इसलिए कि वे जानते हैं कि यदि वे रुक गए, तो वे प्रेरणादायक से निरुत्साहित बन जाएँगे।

एक प्रभावशाली शिक्षक :

सदर्न (1964) के अनुसार, एक प्रभावशाली शिक्षक वह होता है जिसमें हास्य भावना हो, जो छात्रों और

उनकी समस्याओं को समझने की क्षमता रखता हो, जो चीजों को इस तरह से स्पष्ट रूप से समझा सके कि छात्र उन्हें आसानी से समझ सकें, किसी भी विषय को रुचिकर बनाकर पढ़ाने की योग्यता हो, कक्षा को नियंत्रित करने की क्षमता हो, छात्रों की आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता के लिए सदैव तैयार रहने की भावना हो, और छात्रों के साथ व्यवहार करते समय यथासंभव निष्पक्ष रहने की योग्यता हो।

सिंह (1998) द्वारा प्रयोग किया गया शिक्षक के लिए एक संक्षिप्त शब्द (अक्रोनिम) कुछ गुणों को दर्शाता है, जो एक प्रभावशाली शिक्षक में होने चाहिए :–

- T – Temperance (संयम)
- E – Empathy (सहानुभूति)
- A – Academic Aristocracy (शैक्षणिक श्रेष्ठता)
- C – Commitment (प्रतिबद्धता)
- H – Humour (हास्य)
- E – Ethics (नैतिकता)
- R – Reflection (चिंतन)

हालाँकि यह संक्षिप्त शब्द एक अच्छे शिक्षक के कुछ गुणों का संकेत देता है, यह कक्षा में शिक्षक की जमीनी भूमिका को जीवंत करने के लिए पर्याप्त व्यापक नहीं है।

एंडरसन (1991) के शब्दों में, "एक प्रभावशाली शिक्षक वह होता है जो निरंतर उन लक्ष्यों को प्राप्त करता है, जो सीधे या परोक्ष रूप से छात्रों के सीखने पर केंद्रित होते हैं।"

फुलन (1990) यह समझना चाहते थे कि आखिर ऐसे शिक्षक कौन से गुण रखते हैं जो उन्हें प्रभावशाली बनाते हैं। शिक्षकों को जो ज्ञान और कौशल सिखाया जा रहा है वह उनके पहले से प्राप्त अनुभव और क्षमताओं से जुड़ा होना चाहिए। शिक्षकों को यह प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि वे सेवा–कालीन प्रशिक्षण से सीखी गई बातों को अपनी कक्षा में लागू करें। वास्तव में, शिक्षकों को यह प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे प्रयास करें, मूल्यांकन करें, संशोधित करें, और फिर से प्रयास करें।

वास्तव में, यह नीति दृष्टिकोण शिक्षकों की भूमिका की एक बहुत ही समग्र और व्यावहारिक परिभाषा प्रस्तुत करता है, जो उन्हें एक प्रभावशाली शिक्षक बनाती है विशेष रूप से आज के वैश्विक संचार और शैक्षिक सॉफ्टवेयर तकनीक के युग में उभरते सामाजिक परिदृश्य और एक सीखने वाले समाज के निर्माण के संदर्भ में।

शिक्षण का पेशा :

शिक्षण हमारे समाज में सबसे कठिन और जटिल पेशों में से एक है, और साथ ही एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य भी है। फिर भी, शिक्षकों से अधिक कार्य लिया जाता है, उन्हें कम वेतन मिलता है और उनकी सराहना भी कम होती है। सभी शिक्षकों को जोड़ने वाली एक सामान्य भावना यह होती है छात्रों को उनके अधिकतम मानवीय क्षमता तक पहुँचने में सहायता करना। जब वे इस लक्ष्य को प्राप्त करते हैं, जब वे अपने शिक्षण के परिणामस्वरूप छात्रों को बढ़ते हुए देखते हैं, तो उन्हें यह अनुभव होता है कि उनका प्रशिक्षण और कठिन परिश्रम सार्थक रहा है।

इस प्रकार, शिक्षण एक व्यवहार है शिक्षण के स्पष्ट और अस्पष्ट, दोनों प्रकार के संज्ञानात्मक कृत्यों या क्रियाओं का एक संगठित समूह, जो तार्किक और अर्थपूर्ण ढंग से व्यवस्थित होता है। इसका एक रूप होता है, जिसे विश्लेषित, समझाया, वर्णित और सुधार के लिए बदला जा सकता है। इन व्यवहारों को व्यवस्थित और पदानुक्रमिक श्रेणियों में बाँटा जा सकता है जिसे ''टेक्सोनॉमी'' कहते हैं।'

शिक्षण की प्रभावशीलता का निर्धारण शिक्षक की दक्षता, शिक्षण प्रक्रिया की विशेषताएँ और छात्रों पर शिक्षक के प्रभाव से होता है। शिक्षक शिक्षा के इस विस्तृत और विविध अनुशासन की वृद्धि भी किसी अन्य अनुशासन की तरह व्यापक शोध और सर्वेक्षणों पर आधारित होती है यह जानने के लिए कि वास्तव में कौन–कौन से तत्व प्रभावी शिक्षण में योगदान करते हैं।

व्यावसायिक प्रतिबद्धता :

व्यवसाय के प्रति समर्पण की भावना एवं अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को व्यवसाय में समर्पित कर देने की तत्परता ही व्यावसायिक प्रतिबद्धता कहलाती है। यह एक अवधारणा है, जिससे किसी व्यवसाय से सम्बन्धित उत्तरदायित्व ग्रहण करने की स्वीकृति, दृढ़ इच्छाशक्ति, समयबद्धता, नियमितता एवं कर्तव्यनिष्ठता की भावना समाहित होती है।

अनन्या एन, पॉलाक (1981) के अनुसार ''व्यावसायिक क्षमता एक अध्यापक को पदोन्नति एवं उत्तरोत्तर विकासोन्मुख बनाये रखने में एवं व्यावसायिक उन्मुखता में सहायक होती है।''

व्यावसायिक प्रतिबद्धता की अवधारणा शिक्षण की गुणवत्ता शिक्षकों के उच्च व्यावसायिक दृष्टिकोण पर निर्भर करती है प्रत्येक देश की उन्नति उसके शिक्षकों की श्रेष्ठता एवं विशेषताओं पर आश्रित होती हैं जिस कारण शिक्षण की प्रक्रिया अन्य व्यवसायों की अपेक्षा एक सम्मानजनक व्यवसाय है। इसलिये अध्यापकों को राष्ट्र का निर्माता या रचनाकार भी कहा जाता है। इस कारण विभिन्न व्यवसायों में से शिक्षक शिक्षण व्यवसाय सर्वाधिक सम्माननीय एवं सराहनीय माना जाता है। व्यावसायिक प्रतिबद्धता – व्यवसाय़ प्रतिबद्धता। व्यवसाय शब्द का अर्थ है वह कार्य जिसके लिये विशिष्ट तैयारी आवश्यक है तथा प्रतिबद्धता का अर्थ है समय, तनाव व विश्वसनीयता, कार्य करने का कोई भी एक कारण।

''व्यावसायिक प्रतिबद्धता एक व्यक्तिगत आत्म–विश्वास है जो अपने पसंदीदा व्यवसाय में उत्सुकता बनाये रखने की स्वीकृत्ति प्रदान करता है।''

व्यावसायिक प्रतिबद्धता के घटक :

अपने व्यवसाय में कार्य करने वाले कर्मचारी के साथ रहना या उन्हें छोड़ना व्यावसायिक प्रतिबद्धता के तीनों आयामों में निहित है। यह तीनों घटक इस बात को समझते हैं कि प्रतिबद्धता एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है जोकि अपने सहयोगियों की व्यावसायिक संबंधों की विशेषता है।

- **भावनात्मक प्रतिबद्धता :** इस प्रकार की प्रतिबद्धता व्यक्ति की पहचान के आधार पर निर्भर होती है जो अपने–अपने संगठनों के साथ जुड़ी होती है इसे भावनात्मक प्रतिबद्धता कहते हैं। जहां पर लोग भावनात्मक रूप से एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं क्योंकि वह ऐसा ऐच्छिक रूप में करना चाहते हैं।
- **निरन्तरता सम्बन्धी प्रतिबद्धता :–** निरन्तरता सम्बन्धी प्रतिबद्धता के व्यक्ति इसी चक्र में रहने के लिये

मजबूर होते हैं यह संगठनों पर आधारित न होकर आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक मूल्यों पर आधारित होता है इस सम्प्रदाय के प्रतिपादन का श्रेय मेयर और एलन को दिया जाता है। जो कि बेकर द्वारा 1960 में दिया गया।

- **मानकीकृत प्रतिबद्धता :–** मानकीकृत प्रतिबद्धता की अवधारणा संगठनों के विचारों एवं दायित्वों की भावना पर आधारित होता है व्यक्ति की नैतिक मान्यतायें जो सही है संगठनों में लगातार बनी रहती है क्योंकि वह जानते हैं कि उन्हें क्या चाहिये। यह दायित्व की वह भावना है जिसमें व्यक्ति के संगठन में प्रवेश के मानकों पर अन्तर्राष्ट्रीय परिणाम का प्रभाव होता है।

व्यावसायिक प्रतिबद्धता, व्यक्ति एवं उसके व्यवसाय के बीच का मनोवैज्ञानिक आधार है जोकि व्यवसाय की भावनात्मक प्रतिक्रिया पर आधारित है। एक व्यक्ति जिसमें उच्च व्यावसायिक प्रतिबद्धता पायी जाती है साथ ही अपने व्यवसाय के प्रति सकारात्मक भावनाओं एवं मूल्यों को स्थापित करते हैं।

शिक्षक आधारित व्यावसायिक प्रतिबद्धता

शिक्षक आधारित व्यावसायिक प्रतिबद्धता के क्षेत्र :

- **शिक्षार्थी के प्रति प्रतिबद्धता :–** शिक्षकों की विद्यार्थियों के प्रति प्रतिबद्धता होनी चाहिये। शिक्षकों को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, उद्देश्यों, लक्ष्यों तथा शैक्षिक लक्ष्यों को समझना भी आवश्यक है। कुशमैन (1992) ''छात्रों को शैक्षणिक कठिनाइयों में मदद् करने हेतु सर्मपण के रूप में प्रतिबद्धता परिभाषित की जबकि वह भिन्न–भिन्न पृष्ठभूमि से आते हैं। इस प्रकार की प्रतिबद्धता छात्रों के सीखने की व्यस्तता को बढाती है। शैक्षिक उपलब्धि विशेषकर उन छात्रों के लिये जोकि शैक्षिक उपलब्धि को बढाने हेतु शैक्षणिक चिंताओं से घिरे हैं।''
- **समाज के प्रति प्रतिबद्धता :–** शिक्षकों को समाज के प्रति गहन अध्ययन एवं उत्सुकता की आवश्यकता है शिक्षक जब समाज की ओर ध्यान केन्द्रित करता है तो उसे समाज के व्यक्तियों के बीच एक जगह होने का अहसास होता है इसी कारण शिक्षक की प्रतिबद्धता उसे समाज में अपनी भूमिका निभाने में सहायता प्रदान करती है। कंटर (1968) ने समाज के लक्ष्य एवं उद्देश्य को पूरा करने हेतु निरन्तर भागीदारी के साथ शिक्षक प्रतिबद्धता की कल्पना की।
- **व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता :–** शिक्षकों में विद्यार्थियों के प्रति प्रतिबद्धता होनी चाहिये परन्तु उस कार्य को करने हेतु जिसके लिये वह सेवारत हैं उन्हें निर्देशन व अधिगम की समझ को विकसित करने का दायित्व निभाना होगा। अपने व्यवसाय के प्रति जिम्मेदारी उसको कार्य करने को प्रेरित करती है जिससे उसकी कार्य कुशलता एवं उपलब्धि कार्य सन्तुष्टि को प्रभावित करते हैं।
- **उपलब्धि प्रतिबद्धता :–** कुशल गतिविधियों को पूरा करने के लिये प्रशिक्षकों को प्रतिबद्ध होना चाहिये। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग (1983–85) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शिक्षकों को यह दिखाने की आश्यकता है कि उनके महान विशेषज्ञ की विशेषता जिन पर विश्वास का गुण निर्धारित करते हैं शिक्षकों की प्रतिबद्धता उनके उच्च निर्णय लेने में सहायता करती है जो उनके व्यवसाय में शैक्षिक और व्यावहारिक अपेक्षाओं को बढाती है।
- **मूल्यात्मक प्रतिबद्धता :–** व्यावहारिक प्रतिबद्धता में यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि शिक्षकों को मूल्यात्मक शिक्षा का ज्ञान होना अति आवश्यक है प्रतिबद्ध शिक्षक को जीवन में मूल्य आधारित शिक्षा को अपनाना चाहिये तथा समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिये मूल्यांकन शिक्षा के महत्व को समझना चाहिये।

शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता :

प्रभावी शिक्षकों को केवल अपने विद्यार्थियों के साथ ही नहीं वरन अपने शिक्षण व्यवसाय के साथ प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है व्यावसायिक प्रतिबद्धता वह योग्यता है जो व्यक्ति को उसके व्यवसाय में सहायता प्रदान करती है। एक व्यक्ति जो शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्ध है वह जीवन भर सीखने के लिये भी प्रतिबद्ध होगा। शिक्षण की योग्यता शिक्षकों के व्यावसायिक स्तर पर निर्भर करती है। इसका मुख्य पहलू व्यक्ति की व्यावसायिक सन्तुष्टि उसके स्व अनुभव पर आधारित होती है।

शिक्षक प्रतिबद्धता को छः विभिन्न रूप में पहचाना जाता है –

- **जुनून के रूप में शिक्षक प्रतिबद्धता :–** सामान्यतः शिक्षण कार्य के प्रति सकारात्मक भावनात्मक दृष्टिकोण और शिक्षण संकल्पना की प्रतिबद्धता शिक्षक के उत्साह में वृद्धि करती है।
- **समय के निवेश के रूप में शिक्षक प्रतिबद्धता :–** विद्यार्थियों को मिलने वाले अपेक्षित समय से अधिकतम समय छात्रों के साथ व्यतीत करने की इस अवधारणा को शिक्षक प्रतिबद्धता के रूप में पहचाना गया। यह चर्चा करने का विषय है कि किस प्रकार अतिरिक्त समय को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में शैक्षिक गतिविधियों में व्यतीत किया जाये।
- **शिक्षार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये अध्यापक प्रतिबद्धता :–** अध्यापक प्रतिबद्धता की यह विचारधारा छात्रों की प्रमुख आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित रखती है। इसमें छात्रों की शैक्षिक एवं भावनात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर चर्चा की जाती है।
- **विभिन्न उत्तरदायित्वों के रूप में शिक्षक प्रतिबद्धता :–** निश्चित दृष्टिकोणों एवं मान्यताओं को ज्ञान प्रदान करने वाली दायित्व की धारणा के रूप में शिक्षक प्रतिबद्धता इस संप्रत्यय को प्रस्तुत करती है जो शिक्षक इस विचारों को अपनाते हैं वह विद्यार्थियों को भविष्य में उत्तरदायित्वों को लेने व उनके कौशलों, समझ के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- **व्यावसायिक जागरूकता हेतु अध्यापक प्रतिबद्धता :–** व्यावसायिक ज्ञान एवं व्यावसायिक शिक्षा को प्राप्त करने एवं उसके प्रति जागरूकता बनाए रखने हेतु अध्यापक शिक्षा की इस विचारधारा को अपनाते हैं। प्रतिबद्ध शिक्षक अपने व्यवसाय को विकासशील व अग्रणी करने में सक्रिय और अपने सहयोगियों के साथ सांझा करने एवं सीखने को तत्पर हैं।
- **विद्यालयों के प्रति अध्यापकों की प्रतिबद्धता :–** यह विद्यालय एवं विद्यालय के समाज को सहमति के साथ शिक्षक प्रतिबद्धता में संलग्न करने की अवधारणा है। इस अवधारणा की यह मान्यता है कि अध्यापकों की व्यावसायिक जिम्मेदारी है जो कि विद्यालय के माध्यम से समाज तक पहुंचाई जा रही हैं।

प्रतिबद्ध शिक्षक के गुण :

- व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षक अद्यतन पठन सामग्री को अपनाने के लिए तत्पर रहते हैं।
- व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षक छात्रों की व्यक्तिगत जरूरतों को समझते हैं और उन्हें बेहतर ढंग से सिखाने के लिए प्रयास करते हैं, जिससे छात्रों के शैक्षणिक परिणाम बेहतर होते हैं।
- व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षक शिक्षण पेशे में अधिक समय तक बने रहते हैं और छात्रों के लिए

एक सकारात्मक भूमिका निभाते हैं।

- व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षक विद्यालय में एक सकारात्मक और सहायक वातावरण बनाने में मदद करते हैं, जिससे छात्रों और अन्य शिक्षकों को भी लाभ होता है।
- व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षक शिक्षा में सुधार और विकास के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं।
- व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षक अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर काम करते हैं और एक–दूसरे का समर्थन करते हैं, जिससे विद्यालय में एक मजबूत टीम वर्क संस्कृति बनती है।
- व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षक छात्रों के प्रति सम्मान और सहानुभूति रखते हैं।
- व्यावसायिक प्रतिबद्ध शिक्षक अपने छात्रों की शैक्षिक क्षमता का विकास करने एवं अनुकूल उपलब्धि स्तर को प्राप्त करने हेतु सही समय व समान अवसर प्रदान करता है।
- व्यावसायिक प्रतिबद्धता शिक्षकों को अपनी जिम्मेदारियों और पेशेवर नैतिकता के प्रति जवाबदेह बनाती है।
- व्यावसायिक प्रतिबद्धता शिक्षकों को प्रशिक्षण और विकास कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती है।
- व्यावसायिक प्रतिबद्धता शिक्षकों को अपने कौशल और ज्ञान को बेहतर बनाने के लिए प्रोत्साहित करती है, जिससे वे अपने करियर में आगे बढ़ सकते हैं।

समस्या का महत्व :

विद्यालयों में शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एक महत्वपूर्ण चर के रूप में सामने आया है। अतः इसे समझना आवश्यक है।

समस्या का विवरण :

''श्री गंगानगर जिले में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन''

व्यावसायिक प्रतिबद्धता (Professional Commitment) :

व्यावसायिक प्रतिबद्धता से तात्पर्य शिक्षकों की अपने व्यवसाय के प्रति समर्पण की भावना से है।

1.10 अध्ययन के उद्देश्य :

- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के निजी उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों की महिला शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का

अध्ययन करना।

- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान वर्ग के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के कला वर्ग के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शहरी क्षेत्र के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता के स्तर का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ (Hypotheses)

- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के निजी उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों की महिला शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान वर्ग के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के कला वर्ग के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।
- श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शहरी क्षेत्र के शिक्षकों के व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर उच्च पाया जाता है।

न्यादर्श (Sample)

शोधकार्य में न्यादर्श का अहम् स्थान होता है। न्यादर्श ही संपूर्ण जनसंख्या के लिए निर्णय लेने में सहायक होता है। प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्री ने श्रीगंगानगर जिले के सरकारी व निजी विद्यालयों के 400 शिक्षकों का चयन किया गया है –

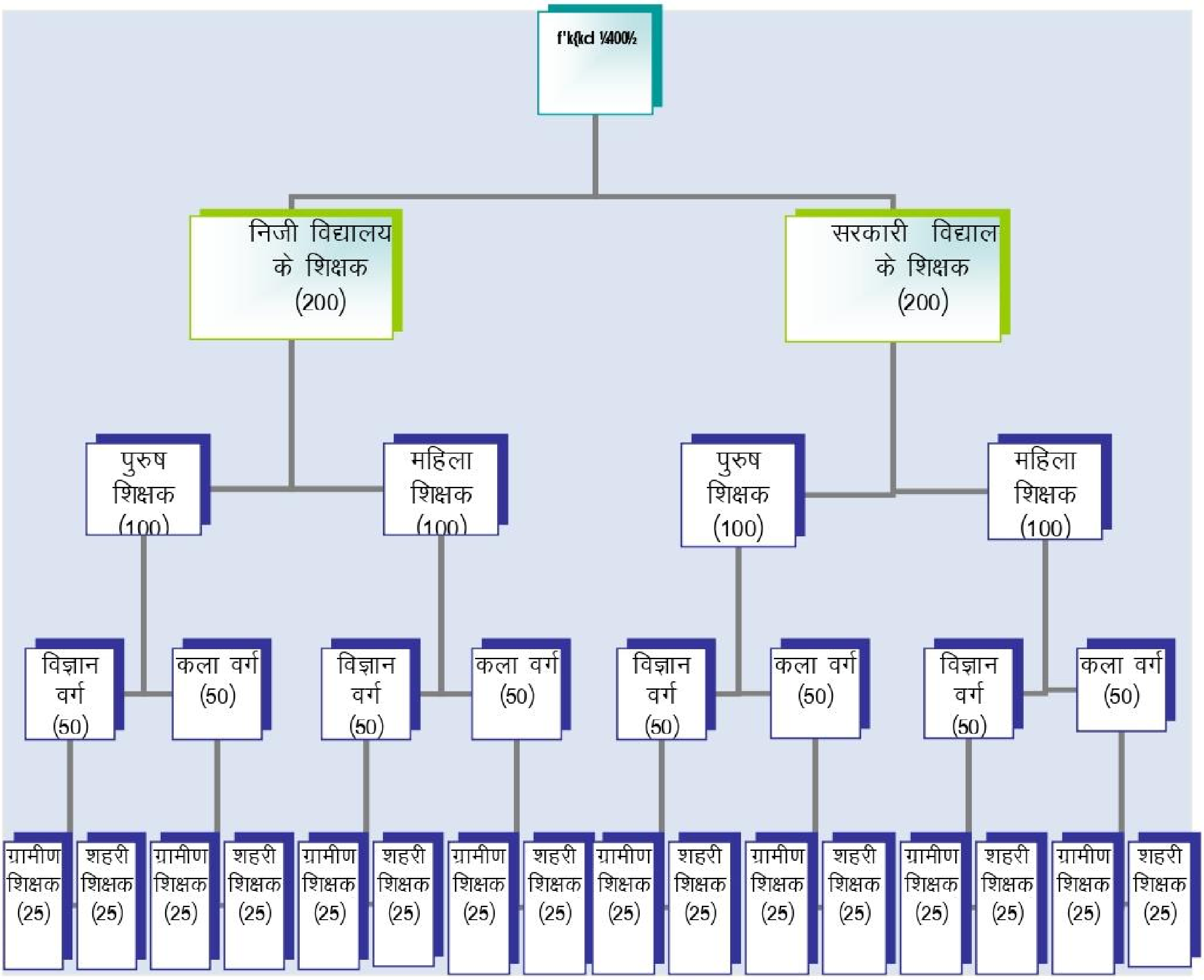

सीमाएँ (Delimitations)

- प्रस्तुत शोध कार्य का अधययन क्षेत्र श्रीगंगानगर जिला है।
- श्रीगंगानगर जिले के सरकारी विद्यालयों व निजी विद्यालयों के शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है।
- प्रस्तुत शोध में 400 शिक्षक सम्मिलित है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण :

प्रस्तुत शोधकार्य में निम्न लिखित तीन मानकीकृत उपकरणों का उपयोग किया गया है –

- **व्यावसायिक प्रतिबद्धता स्केल** – रविन्द्र कौर, सरबजीत कौर रानू एवं सरबजीत कौर बरार द्वारा निर्मित मानकीकृत उपकरण।

विश्लेषण –

1 श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित सारिणी –

उच्च माध्यमिक स्तर के कुल शिक्षक	मानक प्राप्तांक	गणना		
		शिक्षक संख्या	माध्य	प्रतिशत
व्यावसायिक प्रतिबद्धता	143 या कम (निम्न स्तर)	23	174.3	7
	144 से 188 (सामान्य स्तर)	265		71.25
	189 या अधिक (उच्च स्तर)	107		26.75

लेखाचित्र

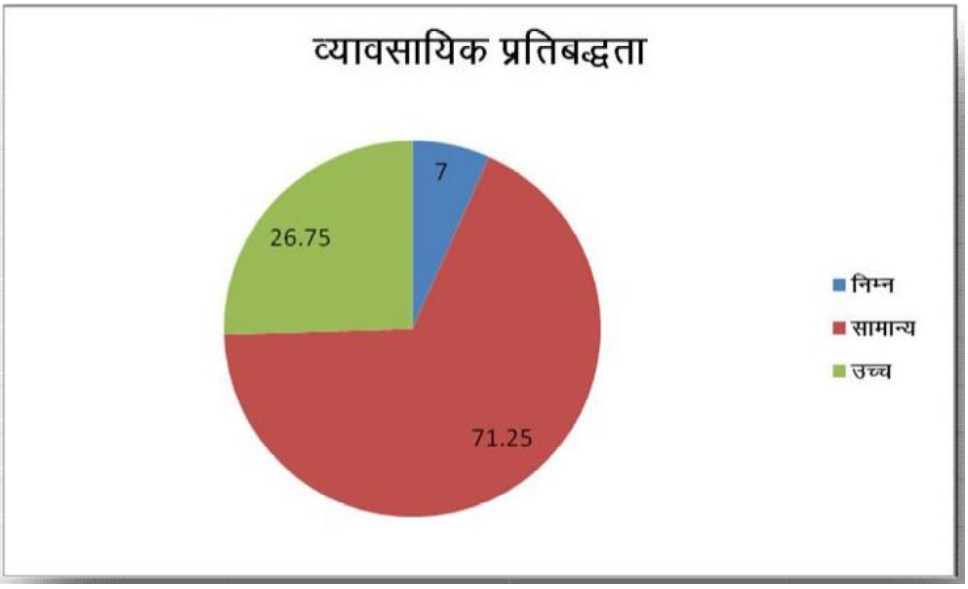

1. **निष्कर्ष :–**

उपरोक्त तालिका एवं लेखाचित्र से स्पष्ट है कि श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (71.25 प्रतिशत) शिक्षार्थियों का स्तर सामान्य पाया गया।

2. **निष्कर्ष :**

श्रीगंगानगर क्षेत्र के निजी उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (68 प्रतिशत) शिक्षार्थियों का स्तर सामान्य पाया गया।

3. **निष्कर्ष :**

श्रीगंगानगर क्षेत्र के निजी विद्यालयों के उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी शिक्षकों की व्यावसायिक

प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (47.5 प्रतिशत) शिक्षकों का स्तर सामान्य पाया गया।

4. निष्कर्ष :

श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (67.5 प्रतिशत) शिक्षकों का स्तर सामान्य पाया गया।

5. निष्कर्ष :

श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर की महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (65 प्रतिशत) महिला शिक्षकों का स्तर सामान्य पाया गया।

6. निष्कर्ष :

श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (62.5 प्रतिशत) शिक्षकों का स्तर उच्च पाया गया।

7. निष्कर्ष :

श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (70 प्रतिशत) शिक्षकों का स्तर उच्च पाया गया।

8. निष्कर्ष :

श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (69.5 प्रतिशत) शिक्षकों का स्तर उच्च पाया गया।

9. निष्कर्ष :

श्रीगंगानगर क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित प्राप्तांकों में अधिकांश (62.5 प्रतिशत) शिक्षकों का स्तर उच्च पाया गया।

शोध की उपयोगिता –

तन्मयता से किया गया कार्य अपनी सफलता को प्राप्त करता है। प्रबन्धकों द्वारा शिक्षकों से तन्मयता से कार्य करवाने के लिए आवश्यक है कि उनकी कार्य प्रणाली, आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा संतुष्टि की जानकारी रखे। व्यावसायिक प्रतिबद्धता चर को जानने के बाद शिक्षकों को अधिक सुविधाएं उचित दिशा में देकर शिक्षा के क्षेत्र में कार्य को उत्तम बनाया जा सकता है। शिक्षकों के इन चरों को जान कर शिक्षण के क्षेत्र में सकारात्मक निर्णय लिये जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

- A. Khatibi, et.al (2009), 'The Relationship between Job Stress and Organizational Commitment in National Olympic and Paralympic Academy' from University of Tehran, Iran. World Journal of Sport Sciences 2 (4): 272-278, 2009. ISSN 20784724.
- Collins S, and Jones PB, (2000) Stress: The perception of social work lecturers in Britain, British Journal of Social Work; 30: 769-794.
- Cranny, Smith & Stone, 1992 cited in Weiss, H. M. (2002). Deconstructing job satisfaction:

separating evaluations, beliefs and affective experiences. Human Resource Management Review, 12, 173-194, p.174
- Crow, A. & Crow, L. (1963), Mental Hygiene. New York: McGraw Hill Book Company.
- Davison B. (1999), What's all this about stress. Great Britain: Business publishing.
- Day, C. (2004), A Passion for Teaching. New Delhi: Foundation Books.
- Kohli, K. (2005a), Scale for Professional Commitment of Teacher Educators. RPC, Meerut.
- Kohli, K. (2005b), Assessment of professional commitment of teacher educators.
- Kothari, C.R. (1996), Research Methodology - 'Methods & Techniques, New Delhi Wishwa Prakashan.
- Kumari Neelam (2005), "Study of married woman teachers working in Government Elementary Schools in Garhshankar Tehsil," M.Ed. Dissertation, Directorate of Correspondence Studies, Punjab University, Chandigarh.
- Lath, Sandeep Kumar (2010), 'A Study of the Occupational Stress among Teachers' International Journal of Educational Administration, ISSN 0976-5883 Volume 2, Number 2, (2010), pp.
- Latha, K S. Work-related stress among health professional and coping mechanisms. The Indian Journal of Social Work April 2004; 65 (2): 191-195.
- Maheshwari, Amrita (2005), Professional Commitment of Teachers, New Delhi, Gagan Deep publications, ISBN: 8188865141.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 171–176
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

COMPARATIVE ANALYSIS OF PHYSICAL CHARACTERISTICS AMONG BATSMEN, PACERS AND SPINNERS IN COMPETITIVE CRICKET

Ekta Pramod Singh, Research Scholar,
Dr. Arun Mathur, Research Supervior, Dean and Director of Sports,
Suresh Gyan Vihar University, Jaipur (Rajasthan)

ABSTRACT :

Cricket is a multifaceted sport requiring a combination of technical proficiency, tactical awareness, physiological preparedness, and physical fitness. Among these determinants, anthropometric and physical characteristics significantly influence performance and specialization within the game. The present study aimed to compare selected physical characteristics among batsmen, pacers, and spinners and to identify the most influential physical variables contributing to player classification. A total of 150 male cricketers comprising 50 batsmen, 50 pacers, and 50 spinners participated in the study. The participants were selected from inter-collegiate, inter-university, and national coaching camp levels through purposive sampling.

The physical variables selected for the investigation included standing height, sitting height, leg length, upper arm length, forearm length, hand length, and body composition. Standardized anthropometric procedures were employed for data collection. Descriptive statistics, including mean and standard deviation, were used to summarize the data. Multiple discriminant analysis was employed to determine the discriminating power of the selected variables and classify players according to their playing roles.

The findings indicated significant differences among the three categories of cricketers. Pacers demonstrated greater standing height, sitting height, leg length, upper arm length, forearm length, and hand length compared to batsmen and spinners. The discriminant model identified muscle mass, body fat percentage, leg length, and shoulder diameter as the strongest predictors of player classification. The classification accuracy of the model reached 90 percent, indicating a high level of predictive

validity.

The study concludes that distinct anthropometric profiles exist among batsmen, pacers, and spinners. These findings have important implications for talent identification, player selection, and the development of position-specific training programs in cricket.

Keywords : Cricket, Anthropometry, Physical Characteristics, Talent Identification, Player Classification, Discriminant Analysis.

Introduction :

Cricket is one of the most popular sports worldwide and has evolved considerably during the last few decades. Modern cricket demands a high level of technical skill, tactical intelligence, psychological preparedness, and physical fitness. The increasing competitiveness of cricket has encouraged coaches and sports scientists to investigate factors contributing to superior performance. Among these factors, anthropometric characteristics have received considerable attention because physical attributes often determine an athlete's suitability for specific playing roles.

Anthropometry refers to the measurement of the human body and its dimensions. In sports, anthropometric variables are frequently used to identify talent, monitor growth and development, and determine the physical requirements of specific playing positions. Different sports require unique anthropometric profiles. Similarly, within cricket, batsmen, fast bowlers, and spin bowlers often display different body structures due to the distinct physiological and biomechanical demands associated with their roles.

Fast bowlers generally require greater height and longer limbs to generate speed and bounce. Taller bowlers release the ball from a greater height, creating advantageous ball trajectories. Longer legs and arms contribute to stride length and leverage during bowling actions. In contrast, batsmen require optimal balance, coordination, and reach, while spinners rely more on control, precision, and skill execution than on physical power.

Scientific evaluation of anthropometric characteristics can provide valuable information regarding player selection and performance enhancement. Understanding physical differences among playing positions can assist coaches in identifying talented players and designing specialized training programs. Therefore, the present study was undertaken to investigate and compare the physical characteristics of batsmen, pacers, and spinners participating in competitive cricket.

Review of Related Literature :

Several researchers have emphasized the importance of anthropometric characteristics in sports performance.

Stretch (2013) reported that elite cricket players possess specific anthropometric profiles that contribute significantly to performance. Fast bowlers were generally taller and heavier than batsmen and spin bowlers.

Pyne et al. (2006) observed that successful fast bowlers demonstrated superior height, arm span, and muscular development compared to other cricket players.

Noakes and Durandt (2000) concluded that anthropometric factors influence bowling velocity and batting efficiency among competitive cricketers.

Norton and Olds (2015) emphasized that anthropometric measurements are valuable tools for talent identification and player classification in sports.

The literature clearly indicates that anthropometric characteristics influence sports performance and may contribute significantly to success in cricket.

Statement of the Problem :

The purpose of the study was to compare selected physical characteristics among batsmen, pacers, and spinners and to determine the discriminating variables responsible for player classification.

Objectives of the Study :

- To assess selected physical characteristics of batsmen, pacers, and spinners.
- To compare anthropometric variables among different categories of cricketers.
- To identify the physical variables responsible for player classification.
- To develop a predictive model for classifying cricket players.

Hypotheses :

- Significant differences would exist among batsmen, pacers, and spinners in selected physical characteristics.
- Selected anthropometric variables would significantly contribute to player classification.

Methodology :

Participants :

A total of 150 male cricket players aged between 18 and 25 years participated in the study. The sample consisted of :

- 50 Batsmen
- 50 Pacers
- 50 Spinners

Participants were selected from colleges, universities, and national coaching camps through purposive sampling techniques.

Variables :

Physical Variables :

- Standing Height
- Sitting Height
- Leg Length
- Upper Arm Length
- Forearm Length
- Hand Length
- Body Composition

Instruments Used :

- Stadiometer
- Anthropometric Rod
- Measuring Tape
- Skinfold Caliper
- Body Composition Analyzer

Statistical Techniques :

- Mean
- Standard Deviation
- Multiple Discriminant Analysis
- Classification Matrix Analysis

Results :

Standing Height :

Pacers exhibited the highest standing height (180.4 ± 4.85 cm) compared with batsmen (175.2 ± 5.42 cm) and spinners (173.8 ± 5.10 cm).

Sitting Height :

Pacers demonstrated superior sitting height (91.5 ± 2.95 cm) compared with batsmen (89.4 ± 3.20 cm) and spinners (88.2 ± 3.45 cm).

Leg Length :

The mean leg length was greatest among pacers (88.9 ± 3.80 cm), followed by batsmen (85.8 ± 4.10 cm) and spinners (85.6 ± 4.25 cm).

Upper Arm Length :

Pacers showed the highest upper arm length (35.2 ± 1.70 cm), followed by batsmen (34.5 ± 1.85 cm) and spinners (33.8 ± 1.90 cm).

Forearm Length :

Pacers recorded the highest forearm length (27.5 ± 1.30 cm), while batsmen and spinners demonstrated lower values.

Hand Length :

Pacers possessed the greatest hand length (19.8 ± 0.85 cm), followed by batsmen and spinners.

Body Composition :

Spinners demonstrated the lowest body fat percentage (13.8 ± 1.95%), whereas pacers exhibited the highest (15.2 ± 2.35%).

DISCUSSION :

The findings indicate that fast bowlers possess superior anthropometric characteristics compared with batsmen and spin bowlers. Height, limb length, and muscular development appear to provide biomechanical advantages that enhance bowling performance.

Greater standing height allows pacers to release the ball from a higher point, resulting in increased bounce and improved bowling effectiveness. Longer legs contribute to stride length and momentum generation during the bowling run-up. Similarly, longer upper limbs increase lever length and facilitate greater ball velocity.

The discriminant analysis identified muscle mass as the strongest predictor of player classification. This finding suggests that muscular development plays a crucial role in determining playing specialization in cricket. Body fat percentage also contributed significantly to classification, indicating the importance of body composition in performance.

The results support previous investigations conducted by Stretch (2013), Pyne et al. (2006), and Noakes (2000), which reported similar anthropometric differences among cricket players.

Practical Applications :

- Anthropometric profiling should be incorporated into talent identification programs.
- Coaches should consider physical characteristics during player selection.
- Position-specific conditioning programs should be developed.
- Young players can be guided toward suitable playing roles based on physical attributes.
- Anthropometric monitoring should be conducted regularly during athlete development.

Conclusion :

The study revealed significant differences in physical characteristics among batsmen, pacers, and spinners. Pacers exhibited superior standing height, sitting height, leg length, upper arm length, forearm length, and hand length compared with the other groups. Multiple discriminant analysis

demonstrated that muscle mass, body fat percentage, leg length, and shoulder diameter were the most influential variables in player classification. The findings support the importance of anthropometric assessment in cricket talent identification, player selection, and performance enhancement.

References :

- Bartlett, R. (2014). Introduction to Sports Biomechanics. Rout ledge.
- Norton, K., & Olds, T. (2015). Anthropometric. UNSW Press.
- Noakes, T., & Durandt, J. (2000). Physiological requirements of cricket. Journal of Sports Sciences, 18(12), 919–929.
- Pyne, D., Duthie, G., Saunders, P., Petersen, C., & Portus, M. (2006). Anthropometric and strength characteristics of elite cricket players. Journal of Strength and Conditioning Research, 20(3), 621–626.
- Stretch, R. A. (2013). Anthropometric and physiological profiles of elite cricketers. Journal of Sports Sciences, 31(14), 1587–1595.
- Wilmore, J. H., Costill, D. L., & Kenney, W. L. (2019). Physiology of Sport and Exercise. Human Kinetics.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 177–182

The Impact of Mental Health Awareness and Digital Interventions on Psychological Well-being in the Modern Era : An Indian Perspective

Dr. Vaseem Khan
Department of Philosophy, Ravindra Nath Tagore PG College, Kapasan.

Abstract :

Mental health is a major public health concern in India, where treatment gaps, stigma, and limited professional access continue to affect care delivery. Digital technologies have created new pathways for awareness, support, and intervention. This study examined the relationship between mental health awareness, digital intervention usage, and psychological well-being among Indian adults. Using a mixed-methods design, data were collected from 387 respondents across Rajasthan, Maharashtra, and Delhi NCR, along with 45 semi-structured interviews. Quantitative tools included the Mental Health Awareness Scale, Digital Mental Health Intervention Usage Index, and Psychological Well-being Scale. The findings showed a strong positive association between awareness and well-being, with digital intervention usage partially mediating this relationship. Higher awareness and greater digital engagement were associated with better psychological outcomes, while rural residence, older age, and lower socioeconomic status were linked to lower usage and access. Qualitative findings highlighted stigma, family concerns, language barriers, and trust issues as key constraints. The study concludes that digital mental health interventions can be effective in India, but their success depends on cultural adaptation, vernacular access, and equitable infrastructure.

Keywords : Mental health awareness, digital interventions, psychological well-being, India, teletherapy, stigma.

Introduction :

Mental health disorders are among the most serious health challenges of the 21st century. Globally, the burden of depression, anxiety, and other mental disorders has increased, while access to treatment remains limited. In low- and middle-income countries, the treatment gap remains especially

high, creating a need for scalable and affordable solutions. Digital technologies have emerged as a promising option because they can expand access, reduce cost, and overcome geographical barriers. In India, the mental health burden is shaped by a large treatment gap, limited workforce, social stigma, and uneven access across urban and rural settings. The National Mental Health Survey reported that a large number of Indians require mental health support, but only a small fraction receive care. The shortage of psychiatrists, psychologists, and community-based resources further worsens the situation. At the same time, stigma and family pressure often delay help-seeking and reduce willingness to use formal services.

Digital mental health platforms have expanded quickly in India through teletherapy, mobile apps, chatbots, and online support communities. These services offer anonymity, convenience, and lower cost, making them attractive to many users. However, their actual effectiveness in the Indian context remains underexplored, especially when compared across different demographic groups and cultural settings. This study therefore examined how mental health awareness and digital intervention usage affect psychological well-being among Indian adults.

Problem and Gap :

Despite rapid growth in digital mental health services, there is limited empirical evidence about how awareness and digital use jointly influence psychological well-being in India. Most available studies focus on Western populations, small samples, or isolated aspects of awareness or intervention use. There is also limited understanding of cultural barriers such as stigma, language, family dynamics, and privacy concerns. This study addresses those gaps through a mixed-methods design with a diverse Indian sample.

Objectives :

The study aimed to :

- Examine the relationship between mental health awareness and psychological well-being.
- Assess the impact of digital mental health intervention usage on well-being.
- Test whether digital intervention usage mediates the awareness–well-being relationship.
- Identify demographic factors that moderate digital intervention effectiveness.
- Explore cultural and structural barriers affecting use and outcomes.
- Provide recommendations for policy, practice, and future research.

Literature Review :

Prior research shows that mental health awareness is generally low in India and varies by education, region, and socioeconomic background. Studies have found that urban and educated populations tend to have higher literacy about mental health conditions, while misconceptions and

stigma remain common in rural and lower-income groups. Awareness alone, however, does not always lead to help-seeking, because social stigma and family pressure continue to act as barriers.

Digital mental health interventions have shown moderate to strong benefits in international studies, particularly for depression and anxiety. Indian studies also suggest positive outcomes from CBT-based apps, teletherapy, and AI chatbots. Yet most evidence comes from urban, English-speaking, digitally literate users. Adoption is often lower among older adults, rural users, and lower-income groups.

Cultural context matters strongly in India. Family approval, fear of being discovered, concerns about credibility, and preference for vernacular content all influence whether people engage with digital mental health tools. Existing literature also shows that most platforms are not fully localized for Indian social realities, which limits their reach and effectiveness.

Methodology :

This study used a convergent parallel mixed-methods design. The quantitative part used a cross-sectional survey, and the qualitative part used semi-structured interviews. The target population included Indian adults aged 18–60 years living in urban and semi-urban areas with internet access. The final sample included 387 complete survey responses, and 45 participants were interviewed.

Participants were recruited through stratified random sampling across Rajasthan, Maharashtra, and Delhi NCR. The sample was fairly balanced across gender, age groups, educational levels, income groups, and regions. Instruments included the Mental Health Awareness Scale, Digital Mental Health Intervention Usage Index, Psychological Well-being Scale, DASS-21, demographic questionnaire, and an interview guide.

Data were collected over 12 weeks using an online survey platform. Quantitative data were analyzed using descriptive statistics, Pearson correlations, hierarchical multiple regression, mediation analysis, moderation analysis, and group comparisons. Qualitative data were analyzed using thematic analysis following Braun and Clarke's framework. Ethical approval was obtained, and informed consent, confidentiality, and support for participants with distress were ensured.

Results :

The sample had good demographic diversity, though urban and educated respondents were somewhat overrepresented. The mean age was 32.4 years, and most participants had at least an undergraduate degree. This profile reflects the digital nature of the survey and the fact that the study focused on internet-accessible populations.

Descriptive results showed moderate mental health awareness, moderate digital intervention usage, and moderately high psychological well-being. Nearly one-third of participants reported no

digital mental health use. Awareness, digital usage, and well-being all showed favorable associations, while depression, anxiety, and stress scores were in the mild-to-moderate range on average.

Correlational analysis showed that mental health awareness was strongly and positively related to psychological well-being, and moderately related to digital intervention usage. Digital usage was also positively related to well-being. Depression, anxiety, and stress were negatively related to awareness and digital usage, and positively related to one another.

Regression analysis showed that demographic variables explained part of the variance in well-being, but adding mental health awareness substantially improved the model. Digital intervention usage also made a significant independent contribution. Mediation analysis showed that digital intervention usage partially mediated the relationship between awareness and well-being.

Moderation analysis showed that digital interventions worked better for younger adults, higher socioeconomic groups, and urban residents. Group comparisons showed that higher education, higher income, and urban location were associated with greater awareness and higher use of digital mental health services. High users reported significantly better psychological well-being than non-users.

Qualitative analysis produced five main themes: anonymity as both a benefit and limitation, family stigma and secrecy, language and cultural relevance, cost and accessibility barriers, and trust concerns about online providers. These themes explained why digital platforms are helpful for some users but remain less accessible or acceptable for others.

Discussion :

The findings suggest that mental health awareness plays a major role in improving psychological well-being. Awareness likely helps individuals recognize symptoms earlier, reduce self-stigma, and seek support more confidently. The study also found that digital intervention usage adds value beyond awareness alone, showing that access to tools and actual engagement matter in real-world outcomes. The partial mediation result suggests that awareness improves well-being both directly and indirectly through digital use. This means awareness campaigns should not be treated as separate from service delivery. Instead, awareness-building and intervention access should be designed together.

The moderation results highlight a digital divide in mental health care. Younger, urban, and wealthier participants benefited more from digital interventions, likely because of better digital literacy, privacy, connectivity, and affordability. This shows that digital mental health can reduce barriers for some people but may also deepen inequalities if equity issues are ignored.

The qualitative findings reinforce the importance of cultural adaptation. Participants wanted Indian-language content, more trust in providers, lower costs, and sensitivity to family dynamics. Anonymity helps users begin care, but it does not fully remove stigma or mistrust. Therefore,

technology alone is not enough; the intervention must fit the social context.

Conclusion :

This study shows that mental health awareness and digital intervention usage are both positively associated with psychological well-being among Indian adults. Digital intervention usage partially explains how awareness translates into better outcomes, but access is uneven across demographic groups. Cultural stigma, language barriers, cost, and trust issues continue to limit the reach of digital mental health platforms.

The study supports a combined strategy of awareness campaigns, vernacular digital content, affordable access, and culturally sensitive design. Future work should focus on rural populations, adolescents, older adults, and longitudinal designs to better understand long-term outcomes.

References :

- World Health Organization. (2022). *Global mental health report: Transforming mental health for all*. Geneva: WHO Press. https://www.who.int/publications/i/item/9789240049348
- Global Burden of Disease Collaborative Network. (2021). *Global Burden of Disease Study 2019: Mental disorders*. Seattle: Institute for Health Metrics and Evaluation.
- Santomauro, D. F., et al. (2021). Global prevalence and burden of depressive and anxiety disorders in 204 countries and territories in 2020 due to the COVID-19 pandemic. *The Lancet*, 398(10312), 1700-1712.
- Wiœniowska, J., et al. (2020). The economic impact of mental health conditions. *World Economic Forum*, 1-24.
- Thornicroft, G., et al. (2017). Global patterns of mental health treatment gaps. *The Lancet Psychiatry*, 4(10), 755-766.
- NIMHANS. (2018). *National Mental Health Survey of India 2015-2016: Prevalence, patterns and outcomes*. Bangalore: National Institute of Mental Health and NeuroSciences.
- Government of India. (2023). *Mental Healthcare Act 2017: Implementation status report*. New Delhi: Ministry of Health and Family Welfare.
- Ranney, M. L., et al. (2022). Geographic disparities in mental health service access in rural India. *Journal of Rural Health*, 38(2), 345-356.
- Grover, S., & Ghormode, D. (2021). Stigma in mental illness: A Indian perspective. *Indian Journal of Psychiatry*, 63(3), 234-242.
- Gerber, M., et al. (2020). Cultural interpretations of mental illness in rural India. *Transcultural Psychiatry*, 57(4), 512-530.

- Nair, S., & Kumar, R. (2022). Family dynamics and mental health help-seeking in India. *Family Process*, 61(2), 678-695.
- National Crime Records Bureau. (2023). *Accidental deaths & suicides in India 2022*. New Delhi: Ministry of Home Affairs.
- ICMR. (2021). *Impact of COVID-19 on mental health in India: A national survey*. New Delhi: Indian Council of Medical Research.
- India Internet Stats. (2024). *India digital landscape report 2024*. New Delhi: Internet and Mobile Association of India.
- YourDOST. (2023). *Annual outcomes report 2023: Mental health in the digital age*. Bangalore: YourDOST Technologies.
- Mental Health App Index. (2024). *Indian mental health applications: Comprehensive review*. New Delhi: National Mental Health Alliance.
- Johnson, A., et al. (2021). Efficacy of AI-powered chatbot Wysa for anxiety and depression in India. *JMIR Mental Health*, 8(5), e26847.
- The Mindful Kind. (2023). *Online mental health communities in India: Usage patterns and outcomes*. Mumbai: The Mindful Kind Foundation.
- Instagram India. (2024). *Mental health awareness on Instagram: 2023 impact report*. Menlo Park: Meta Platforms Inc.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 183–188

कैलाश बनवासी की कहानियों में स्त्री-जीवन का संघर्ष

सत्येन्द्र कुमार शेन्डे
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, सिवनी (म.प्र.)

बीज शब्द –स्त्री अधिकार, अस्मिता, पितृसत्ता, आर्थिक उदारीकरण, बाज़ारवाद, पूंजीवाद।

सारांश :–

किसी भी राष्ट्र और समाज के निर्माण में स्त्री–शक्ति का योगदान बेहद महत्वपूर्ण होता है। लेकिन, यह भी सत्य है कि भारतीय समाज में, सदियों से स्त्रियों को अपने अस्तित्व, अस्मिता और अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। आज, आधी आबादी को नज़रअंदाज कर हम राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते– इस सच को हमारे साहित्यकारों ने समझा और यही कारण है कि हिंदी साहित्य में प्रेमचंद से लेकर कैलाश बनवासी तक के रचनाकारों ने स्त्री–संघर्ष और स्त्री–समानता को अपने साहित्य में रेखांकित किया है। कैलाश बनवासी अपने स्त्री पात्रों को लेकर बेहद संवेदनशील हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के बाद की परिस्थितियों में, भारतीय नारी के संघर्ष को बखूबी चित्रित किया है। इस शोध आलेख के माध्यम से हम, कैलाश बनवासी की कहानियों में चित्रित नारी जीवन के संघर्श को समझने का प्रयास करेंगे।

हिंदी और विश्व साहित्य के महान कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास '*ग़बन*' में कहा है– 'स्त्री समाज का आभूषण है।' स्त्री–शक्ति से मानव समाज का अस्तित्व निर्मित होता है। भारतीय संदर्भ में तो स्त्री को पूजनीय माना जाता है।

किसी भी राष्ट्र और समाज के निर्माण में स्त्री शक्ति का योगदान बेहद महत्वपूर्ण होता है। खुशहाल समाज का निर्माण नारी–सहयोग के बिना असंभव है। नेपथ्य में रहकर समाज के विकास में अपना योगदान करने वाली स्त्री–शक्ति को उपेक्षित कर किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति असंभव है। लेकिन, यह भी सत्य है कि व्यावहारिक धरातल पर, सदियों से स्त्रियों को अपने अस्तित्व, अस्मिता और अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। पितृसत्तात्मक भारतीय समाज ने हमेशा महिलाओं को दोयम दर्जे पर रखा है, यह भी एक कटु यथार्थ है।

भारत की स्वाधीनता के बाद, शिक्षा के द्वार खुलने और संवैधानिक प्रावधानों से महिलाओं को देश की विकास–प्रक्रिया में हिस्सा लेने और विविध प्रकार के सम्मानित आजीविका–व्यवसाय को अपनाने की प्रेरणा मिली। महिलाओं और पुरूषों के बीच समता और समानता को बढ़ावा देने के लिए सरकार प्रतिबद्ध हुई। महिलाएँ

अपने घर की चारदीवारी से निकलकर नगरों और महानगरों में जाकर अपने बेहतर मुकाम की संभावनाएँ तलाशने लगीं। आर्थिक आज़ादी पाने की ललक ने महिलाओं को दमदारी के साथ समाज में आगे आने की प्रेरणा दी। उच्च शिक्षा के अवसरों ने दलित, आदिवासी और वंचित समुदाय की नारियों को भी आगे बढ़ने के प्रेरित किया। संवैधानिक प्रावधानों से बाल–विवाह का निषेध हुआ। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित रखे जाने और विधवा स्त्रियों के साथ बुरा बर्ताव किये जाने जैसी बहुत सी सामाजिक कुरीतियों का विरोध महिलाओं ने शुरू किया। इन्हीं सामाजिक परिदृश्य में नारी अपनी अस्मिता के लिए संघर्षशील होकर अपने अस्तित्व के लिए जागरूक हुईं। नारी शिक्षा से अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा मिलने से हर जाति की महिलाओं को प्रगतिशील आधार मिला।

बीसवीं सदी के नवें दशक से देश में आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के बाद भारतीय नारी को अपनी तरक्की के और भी अधिक अवसर मिलने लगे। पुरूषों के साथ हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर चलने की आज़ादी मिली। बीसवीं शताब्दी के समापन तक, भारतीय महिला उत्थान के नए आकाश का सृजन हुआ। आज, आधी आबादी की नज़रअंदाज कर हम राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते– इस यथार्थ को हमारे साहित्यकारों ने समझा और यही कारण है कि हिंदी साहित्य में प्रेमचंद से लेकर कैलाश बनवासी तक के रचनाकारों ने स्त्री–संघर्ष और स्त्री–समानता को अपने साहित्य में रेखांकित किया है।

समकालीन हिंदी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर कैलाश बनवासी अपने स्त्री पात्रों को लेकर बेहद संवेदनशील हैं। उनके अब तक प्रकाशित आठ कहानी संग्रहों में 85 कहानियाँ संगृहीत हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में स्त्री–जीवन का संघर्ष बखूबी चित्रित हुआ है। *'उमस'* कैलाश बनवासी की ऐसी उल्लेखनीय कहानी है, जिसमें एक निम्न मध्यमवर्गीय युवती रीतू को, अपनी मनपंसद अंतरजातीय शादी कर लेने पर, अपने मायके के पारिवारिक सदस्यों से जुड़ने के लिए दो साल की कठिन प्रतीक्षा करनी पडती है।[1] इन दो साल की अवधि के बाद, अपने माता–पिता और भाई–बहनों से मिलकर उसके सामने आए सामाजिक यथार्थ से उसका सामना होता है। परिवार की प्रतिष्ठा, बहनों का भविष्य और परिवार की आर्थिक तंगी के प्रश्नों से उसे मानसिक रूप से जूझना होता है। यह कहानी हमें बताती है कि अपनी मर्जी से अपना जीवन–साथी चुनने में, आज भी भारतीय नारी लाचार है। आज भी, पुरूष प्रधान समाज में उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। दो साल के अंतराल के बाद अपने मायके आई रीतू को पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक यथार्थ बोध से उत्पन्न सवाल उसे उमस भरी बेचैनी से भर देते हैं।

कैलाश बनवासी जी की कहानी 'दृश्य कथा' एक निम्नवर्गीय परिवार की कहानी है। पुलिस और पत्रकारिता के भ्रष्टाचार को उजागर करती इस कहानी में निम्नवर्गीय ग़रीब महिला पात्र अनीता का संघर्ष, विवशता, जद्दोजहद का मार्मिक चित्रण हुआ है। निम्नवर्गीय संतोष तांगेवाला उसका पति है। संतोष तांगेवाले की घोड़ी हथियाने के लिए उसके खिलाफ हुए षड्यंत्र के तहत जेल में बंद अपने पति संतोष को जेल से छुड़ाने के लिए अनीता अपना पूरा दमखम लगा देती है। अपने पति संतोष तांगेवाले की घोड़ी को बिकने से बचाना भी उसका लक्ष्य है। लेकिन, बढ़ते बाज़ारवाद के इस दुस्समय में, कोई उपाय न होने पर वह अपनी देह बेचने को

भी तैयार हो जाती है। एक प्रकार से अनीता ही घोड़ी का प्रतीक हो जाती है। लेखक ने इस दुर्दशा को इस तरह व्यक्त किया है :–

'संवाददाता कुछ सोच में पड़ जाता है। कुछ क्षण बाद, अचानक संतोष की पत्नी उससे कहती है ''निए आप हमारी कुछ मदद करो न, जरूर कर सकते हैं। आप साख–रसूख वाले आदमी हो मेरे आदमी को छुड़ा लो, साब.........साब चाहो तो आप कहीं भी ले चलो मेरे को.............मैं अपना सब कुछ देने को तैयार हूँ...........मैं घोड़ी बनने को तैयार हूँ................. ।'[2]

अनीता का चरित्र उजागर करता है कि एक निरूपाय निम्नवर्गीय महिला अपने परिवार के प्रति समर्पित होती है। पति, परिवार और परिवार की ईज्जत घोड़ी की खातिर वह अपनी देह भी बेचने के लिए स्वयं मानसिक रूप से तैयार होकर परिस्थिति से समझौता कर सकती है। आज भी, हमारे शहरों में अनीता जैसे कई वास्तविक पात्र अपने जीवन में कठिन से कठिन और बदतर परिस्थितियों में समझौता कर अभिशप्त जीवन बिताने के लिए विवश हो जाते हैं।

कथाकार कैलाश बनवासी ने ग्रामीण जीवन के हर एक पक्ष को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। ग्राम जीवन के नारी पात्रों के प्रति उनकी विशेष संवेदना है। उनकी प्रसिद्ध कहानी *'गोमती एक नदी का नाम है'* एक ग्रामीण मज़दूर स्त्री की मार्मिक कहानी है। इस कहानी की मुख्य पात्र है– गोमती। उसका पति जेल में है। गोमती पर उसके दुधमुँहे बच्चे सहित परिवार के भरण–पोषण की जिम्मेदारी है। गाँव की बाड़ी में वह मज़दूर है। मालिक उसका शारीरिक शोषण करना चाहता है। अपनी नौकरी बचाए रखने और घर–परिवार चलाने के लिए गोमती खुद मालिक को सौंपने के लिए विवश है। उसकी मजबूरी को बताते हुए कहानीकार बनवासी जी ने के चरित्र का बेहद मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है –

'बंद कमरे में अंधेरे–उजाले में उसकी देह मुझ पर जादू करने लगी। मेरे आगे अब गोमती नहीं, सिर्फ उसकी देह थी। मुझ पर कोई अंधा जुनून तारी हो गया। मैंने उसे बिस्तर पर खींच लिया। अंधाधुन्ध उसके ब्लाउज के बटन खोलने लगा..... । मैं अपनी लय पाने की कोशिश में लग गया।

बोली। "बाबू....... ।" यह मेरे बोझ के नीचे जैसे कसमसाकर अपनी गर्दन निकालती हुई। मैंने उसी आवेश में उसकी छाती से मुंह सटाते हुए कहा, "क्या?" "बाबू........ थोड़ा जल्दी छोड़ देना...... ।" स्वर में प्रार्थना थी।

''क्यों?"

"वो क्या है, बाबू........ घर में पहुना आ गये थेकृ उनके रांधने–पकाने के मारे नानकुन को दूध नहीं पिला पायी........... अभी उठ के रोता होगा।" [3]

उपरोक्त उदाहरण यह बताता है कि ग्रामीण महिला अपने परिवार के प्रति समर्पित होती है। परिवार और बच्चों की खातिर वह किसी भी परिस्थिति से समझौता कर सकती है। आज भी गोमती जैसे कई वास्तविक पात्र जीवन में समझौते की यंत्रणा भोगने के लिए विवश हैं।

कैलाश बनवासी की कहानी *'नो'* उच्च शिक्षित युवाओं के बेराज़गार होने और रोज़गार के लिए समझौता कर छोटी सी नौकरी करते हुए, गुलामों जैसा संघर्ष और जद्दोजहद करने की कहानी है। इस कहानी की मुख्य

पात्र निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की इंजीनियरिंग स्नातक लड़की प्रभा भटनागर है। आज, नगरीय जीवन का यह कटु सत्य है कि उच्च शिक्षा भी बेरोज़गारी पैदा करती है, प्रभा भटनागर भी इसका शिकार है। इंजीनियरिंग क्षेत्र में बेरोज़गारी के कारण ही एक वह कस्बेनुमा गाँव के प्राइवेट बैंक में क्लर्क की नौकरी करते हुए हर अपने बॉस के हर आदेश का 'यस सर' बोलकर हुकुम बजाती है। बैंक का बॉस उसकी सदस्यता, उसकी विवशता का लाभ उठाकर उसके श्रम का इतना अधिक मनमाना शोषण करता है कि उसके जीवन में सपने, आकांक्षाएँ, उम्मीदें सब, ध्वस्त होने लगते हैं। प्राईवेट बैंक की गुलामी से तंग आकर एक दिन, अपने बॉस के आदेश का प्रतिकार कर स्पष्ट शब्दों में कहकर प्रतिवाद करते हुए अपना त्यागपत्र देकर वापिस घर लौट आती है।[4]

'नो' कहानी की पात्र प्रभा भटनागर का चरित्र आज की उन उच्च उच्च शिक्षित किंतु बेरोज़गार लड़कियों का प्रतिनिधि पात्र है, जो अपनी निम्नवर्गीय पारिवारिक परिस्थितियों के कारण छोटी सी नौकरी कर अपने भविष्य से समझौता कर लेतीं हैं। लेकिन, प्रभा भटनागर इससे भी आगे जाकर, 'मेरी ज़िन्दगी, मेरा फैसला' के अपने सिद्धांत पर मजबूती से डटी रहती है। प्रभा भटनागर का पात्र 21वीं सदी की मानसिक रूप से सशक्त महिला का पात्र है।

कहानीकार कैलाश बनवासी की कहानी *'चक दे इंडिया'* की मुख्य पात्रों में एक है– राशि शुक्ला। निम्न–मध्यमवर्गीय परिवार की राशि प्राइवेट स्कूल में शिक्षिका है। एक निम्न मध्यमवर्गीय शिक्षक आसिफ को उससे प्रेम है। अपने जीवन में, आसिफ के साथ राशि मोहब्बत की अंधेरी सुरंग में प्रवेश कर चुकी है। लेकिन धर्म, संप्रदाय और अपने परिवार की पितृसत्तात्मक सोच के आगे राशि परास्त हो जाती है। कहानी के उत्तरार्द्ध में, भारत–पाकिस्तान क्रिकेट मैच में पाकिस्तान की हार के जरिये प्रतीकात्मक रूप से आसिफ और राशि शुक्ला की भी प्रेम में हार हो जाती है।[5]

बनवासी जी की इस कहानी की पात्र राशि शुक्ला की तरह, वास्तविक जीवन में कई पढ़ी–लिखी युवतियों को अपने पैरों पर खड़े होने के बावजूद पितृसत्तात्मक परिवार और समाज में अपने घुटने टेक देने पड़ते हैं। राशि शुक्ला का पराजित संघर्ष यह सवाल उठता है कि 21वीं सदी के हमारे समाज में महिलाएँ पितृसत्तात्मक पिंजरे से कब स्वतंत्र होंगी?

कथाकार कैलाश बनवासी की कहानी *'उसके दरबार में'* हमारे मौजूदा समय में स्त्री की एक अलग ही छवि को उभारने वाली कहानी बन जाती है। 2013 में, जब स्त्री विमर्श अत्यधिक प्रचलन में था, तब यह कहानी सबसे पहले महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की 'बहुवचन' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। एक ऐसी महिला की कथा है, जो झूठे धर्म, पाखंड और अंधविश्वास की बदौलत शक्तिशाली बनकर पढ़े–लिखे और संपन्न परिवारों को अपने इशारों पर नचाती है। लेखक ने माताजी का चित्रण इस तरह किया है–

'वह दस बाई आठ का छोटा–सा गँवई कमरा था। बमुश्किल आठ फुट ऊँचा। जिसके एक दीवार के आले में देवियों के चित्र सजे हुए थे .... देश के कुछ प्रसिद्ध मंदिरों के भी चित्र थे। इन्हीं के सामने नीचे बड़ी–सी चौकी पर लाल कपड़े पर ज्योति कलश रखा था। इनके एक तरफ वह बैठी थीं, यानी माताजी। माताजी को देख के मैं हैरान था! मैं इन माताजी को अपनी कल्पना में कोई साठ साल की बुढ़िया माने बैठा था। जबकि

वह हृष्ट–पुष्ट देह की स्वामिनी युवती थीं, उम्र पैंतीस–छत्तीस की। भरे देह की वह गवई सुंदर स्त्री थी। मैं माताजी के बांहों के भराव और उनके उभारों को देख रहा था। पर एक पल के लिए मैं ठिठका–सा रह गया था।' [6]

यह समय, धर्म और अध्यात्म की आड़ लेकर अपना बाज़ार खड़ा करने वाले तथाकथित बाबाओं और माताओं का है। इस तरह की महिलाएँ समाज में नगण्य ही हैं, फिर भी लेखक ने इस कहानी के माध्यम से तथाकथित माताजी का ढोंगी चरित्र सामने लाकर समाज को आगाह करने का प्रयास किया है।

कैलाश बनवासी जी संदेशप्रद कहानी है– 'उनकी दुनिया'। इस कहानी की पात्र हैं– शिक्षिका सुलेखा पश्यमना। सुलेखा ने समाज में मानसिक रूप से कमज़ोर यानि मंदबुद्धि बच्चों की शिक्षा–दीक्षा देने और उनके जीवन में रोशनी बिखेरने के लिए शिक्षक बनने का निर्णय लिया। सुलेखा पश्यमना ने अपना जीवन ऐसे बच्चों की शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया है। शिक्षाशास्त्र पढ़ने वाले युवाओं को मंदबुद्धि बच्चों की शिक्षा के लिए सुलेखा के कर्मठ और निःस्वार्थ समर्पित जीवन पर आश्चर्य होता है।

' "इनके माता–पिता आते हैं तो (यहाँ वह धीमे से हँसी) हमें भगवान कहने लगते हैं। कहते हैं, आप ही इनके असली माँ–बाप हो! कई तो रोने लगते हैं, बहुत आशीर्वाद देते हैं। कहते हैं, बहुत पुण्य का काम कर रही हो ! मतलब कि इस नौकरी से स्वर्ग में मेरी जगह पक्की हो गई!" और निश्छलता से हँस पड़ीं एकदम।

दिव्या के मन में तरलता फैल रही थी.......एक अनोखी आत्मीयता 'एक मिठास' गहरे सम्मान की पवित्र और उजली भावना....... । शायद इसी का असर था कि वह इन बच्चों से अब बातें कर रही थी, हँस रही थी, उनसे हाथ मिला रही थी और बहुत–बहुत खुश थी। और बच्चे भी खुश्स थे........ भोली उत्सुकता और निश्छलता थी उनकी आँखों में! वह जैसे एक नई दुनिया में थी।' [7]

एक महत्वपूर्ण मुद्‌दा और कटु यथार्थ यह है कि मंदबुद्धि बच्चों की दुनिया में सुलेखा पश्यमना जैसा शिक्षक बनकर आज के मध्यवर्गीय, सुविधाभोगी और स्वार्थ से भरे कैरियर की सोच रखने वाले युवा शिक्षक नहीं आना चाहते। शिक्षा जगत् के लिए सुलेखा पश्यमना का चरित्र आदर्श और प्रेरणा है।

कैलाश बनवासी की कहानियों के स्त्री पात्रों के उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि आज, इक्कीसवीं सदी में भी बहुत सारी ग्रामीण स्त्रियाँ अशिक्षा का शिकार होने और अपने परंपरागत पारिवारिक संस्कारों में गहरे धँसे होने के कारण पुरानी प्रथाओं और मूल्यों से जकड़ी हुईं हैं। वहीं, नगरीय जीवन की नारी प्रेम–विवाह, मनपंसद विवाह और अंतर–जातीय विवाह करने के लिए स्वतंत्र है। आज तो महानगरों की आर्थिक संपन्न महिलाओं में विवाह बंधन को नकारते हुए स्वतंत्र रूप से सह–जीवन में रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इन सबके बावजूद, यह विडंबना ही है कि भारतीय नारी अपने अस्तित्व को साबित करने, अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने और अपनी योग्यता प्रमाणित करने के लिए संघर्षरत् है। कैलाश बनवासी की कहानियों में नारी का यह जीवन–संघर्ष सहज ही देखा जा सकता है।

संदर्भ –

1. बनवासी, कैलाश, *ठग्स ऑफ़ हिन्दोस्तान,* नयी किताब प्रकाशन, नवीन षाहदरा, नई दिल्ली, 2024,

पृष्ठ कमांक 85

2. बनवासी, कैलाश, *पीले कागज़ की उजली इबारत,* अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, उप्र, 2008, पृष्ठ कमांक 89
3. बनवासी, कैलाश, *प्रकोप तथा अन्य कहानियाँ,* साहित्य भंडार, इलाहाबाद (प्रयागराज), उप्र, 2015, पृष्ठ कमांक 74
4. बनवासी, कैलाश, *कविता पेंटिंग पेड़ कुछ नहीं,* सेतु प्रकाशन प्रा. लि., पटपड़गंज, दिल्ली 2020, पृष्ठ कमांक 51
5. पूर्वोक्त, पृष्ठ कमांक 139
6. बनवासी, कैलाश, *पीले कागज़ की उजली इबारत,* अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, उप्र, 2008, पृष्ठ कमांक 114
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ कमांक 123

मो. नं. +91–97542–32904

ई–मेल sktashende@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 189–193

Mathematical Approaches for Optimizing Transportation Systems : An Analysis of Challenges and Operational Phenomena

Rinkle Middha, Ph. D. Scholar,
Dr. Hemlata, Assistant Professor
Tantia University, Sri Ganganagar, Rajasthan.

Abstract

Transportation is a fundamental component of modern industrial, commercial, and service-oriented systems. The effectiveness of transportation networks directly influences production efficiency, customer satisfaction, and organizational profitability. As transportation systems become increasingly complex due to globalization, fluctuating demand patterns, and resource constraints, the need for scientific approaches to transportation planning has become more significant. Mathematical modelling provides a systematic framework for analysing transportation problems and identifying optimal allocation strategies. This study examines transportation challenges through mathematical approaches and explores the role of transportation models in improving decision-making and operational efficiency. Special emphasis is placed on deterministic, stochastic, fuzzy, and bulk transportation models. The study concludes that advanced mathematical modelling techniques significantly enhance transportation planning and resource utilization in modern logistics environments.

Keywords : Transportation Model, Mathematical Modelling, Optimization.

Introduction :

The rapid growth of industrialization and globalization has increased the importance of efficient transportation systems across the world. Transportation serves as a bridge between production centres and consumption markets, ensuring the timely movement of goods, services, and resources. In today's competitive environment, organizations are required to minimize transportation costs while maintaining high levels of service quality and operational efficiency.

Mathematics has played a crucial role in addressing transportation-related challenges through

the development of optimization techniques and analytical models. Mathematical modelling enables researchers and decision-makers to represent real-world transportation systems in a simplified quantitative form. Such representations facilitate the analysis of complex interactions among supply points, destinations, costs, capacities, and operational constraints.

Among various optimization techniques, linear programming has emerged as one of the most effective tools for solving transportation problems. Transportation models help determine the most efficient allocation of resources from multiple sources to multiple destinations while satisfying supply and demand conditions. Over time, transportation modelling has evolved significantly to incorporate uncertainty, environmental concerns, capacity restrictions, and multiple objectives.

The growing complexity of modern transportation networks has encouraged the development of advanced mathematical approaches such as stochastic transportation models, fuzzy transportation models, fixed-charge transportation problems, and bulk transportation problems. These models provide realistic solutions to practical transportation challenges and contribute to improved decision-making processes.

Need of the Research :

Modern transportation systems face numerous operational and managerial challenges. Increasing fuel prices, fluctuating market demands, uncertain supply conditions, and environmental concerns have made transportation planning more complicated than ever before. Traditional decision-making methods often fail to provide optimal solutions under such dynamic conditions.

The need for the present study arises due to the following reasons :

1. Transportation costs constitute a substantial portion of logistics and supply chain expenses.
2. Efficient resource allocation is essential for improving organizational productivity and competitiveness.
3. Transportation networks frequently operate under uncertain conditions involving demand fluctuations and supply disruptions.
4. Modern logistics systems require scientifically optimized transportation strategies.
5. Advanced transportation models can support sustainable and cost-effective decision-making.
6. There is a growing need to integrate mathematical optimization techniques with practical transportation planning.

Statement of the Problem :

"Mathematical Approaches for Optimizing Transportation Systems: An Analysis of Challenges and Operational Phenomena."

Objectives of the Study :

1. To investigate the role of mathematical optimization techniques in enhancing the efficiency of transportation networks.
2. To evaluate the effectiveness of advanced transportation models in minimizing transportation costs and improving resource allocation decisions.

Hypotheses :

H1 : Mathematical optimization techniques significantly improve transportation planning and operational efficiency.

H2 : Advanced transportation models provide more effective solutions to transportation challenges than conventional transportation methods.

Methodology

Research Design :

The study adopts a theoretical and analytical research framework focusing on transportation modelling and optimization techniques.

Mathematical Framework

The general transportation model can be represented as :

$$\text{Minimize } Z = \sum_{i=1}^{m} \sum_{j=1}^{n} C_{ij} X_{ij}$$

where :

Cij = transportation cost per unit from source i to destination j

Xij? = quantity transported from source i to destination j

The study analyses different forms of transportation models including deterministic, stochastic, fuzzy, and bulk transportation frameworks.

Analysis and Discussion :

1 **Transportation Models and Optimization :** Transportation models are among the most widely used applications of linear programming. Their primary objective is to identify the least-cost transportation plan while ensuring that all supply and demand requirements are satisfied.

2 **Deterministic Transportation Models :** Deterministic transportation models assume that all parameters such as supply, demand, and transportation costs are known with certainty.

3. **Transportation Challenges in Contemporary Systems :** Modern transportation systems encounter several practical challenges :

* Uncertain customer demand
* Variable transportation costs
* Supply disruptions
* Limited transportation capacity

* Environmental regulations * Increasing competition

These factors create complexities that require advanced mathematical approaches.

4. **Stochastic Transportation Models :** Stochastic transportation models address uncertainty by incorporating probabilistic information into transportation parameters.

Instead of assuming fixed values, supply quantities, demand requirements, and transportation costs are represented using probability distributions.

The study finds that stochastic models provide more realistic solutions and enable decision-makers to develop robust transportation strategies capable of adapting to changing circumstances.

5. **Fixed Charge Transportation Problems :** In many practical situations, transportation costs include both fixed and variable components. Fixed costs arise from establishing transportation routes, whereas variable costs depend on shipment quantities.

6. **Bulk Transportation Problems :** Bulk Transportation Problems (BTP) represent a specialized form of transportation modelling where a destination's demand is supplied entirely from a single source. The analysis reveals that BTP provides practical solutions in situations where splitting shipments among multiple suppliers is undesirable or impractical.

7. **Fuzzy Transportation Models:** Real-world transportation data is often imprecise and uncertain. Fuzzy transportation models utilize fuzzy set theory to represent uncertain transportation costs, demand levels, and supply capacities.

8. **Multi-Objective Transportation Models :** Transportation planning frequently involves multiple objectives beyond cost minimization.

Examples include :

* Minimizing delivery time * Reducing fuel consumption

* Improving service quality * Lowering environmental impact

Conclusion :

The present study demonstrates that mathematical modelling provides a powerful framework for analysing transportation challenges and developing optimal transportation strategies. Transportation models have evolved from simple deterministic formulations to sophisticated stochastic, fuzzy, and multi-objective frameworks capable of addressing real-world complexities. The findings indicate that advanced transportation models improve resource allocation, reduce transportation costs, and enhance decision-making efficiency. Bulk transportation models provide practical solutions for large-scale commodity transportation, while stochastic and fuzzy models effectively address uncertainty and variability in transportation systems.

As transportation systems continue to evolve, mathematical modelling will remain an essential

tool for improving operational performance, supporting strategic decision-making, and enhancing the effectiveness of supply chain networks.

Bibliography :

1. Taha, H. A. *Operations Research: An Introduction*. Pearson Education.
2. Hillier, F. S. & Lieberman, G. J. *Introduction to Operations Research*. McGraw-Hill.
3. Winston, W. L. *Operations Research: Applications and Algorithms*. Cengage Learning.
4. Dantzig, G. B. *Linear Programming and Extensions*. Princeton University Press.
5. Bazaraa, M. S., Jarvis, J. J., & Sherali, H. D. *Linear Programming and Network Flows*. Wiley.
6. Koopmans, T. C. (1949). "Optimum Utilization of the Transportation System." Econometrica.
7. Sharma, J. K. *Operations Research: Theory and Applications*. Macmillan India.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 194–199

ग्रामीण क्षेत्रों में PHCs की कार्यप्रणाली और वहां उपलब्ध सुविधाओं का विश्लेषण

विभा कुशवाहा
शोध छात्रा – समाजशास्त्र विभाग, भवन्स मेहता महाविद्यालय, भरवारी कौशांबी,
संबद्ध – प्रो0 राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0 प्र0

सारांश :

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जिसका उद्देश्य ग्रामीण आबादी को प्राथमिक स्तर पर सुलभ, किफायती और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना है। प्रस्तुत शोध पत्र में पीएचसी के कामकाज और ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में इन केंद्रों पर दी जाने वाली मेडिकल सेवाओं, डॉक्टरों और हेल्थकेयर वर्कर्स की उपलब्धता, दवाइयों के वितरण, मातृ और शिशु स्वास्थ्य सेवाओं, टीकाकरण कार्यक्रमों, परिवार नियोजन सेवाओं और आपातकालीन चिकित्सा सुविधाओं को देखा गया। अध्ययन यह भी बताता है कि पीएचसी की क्षमता को सरकारी प्रोग्राम, पर्याप्त फाइनेंशियल रिसोर्सेज, आधुनिक उपकरण, नियमित दवाइयों की सप्लाई और ट्रेन्ड स्टाफ की उपलब्धता के साथ बढ़ाया जा सकता है। निष्कर्ष में, ग्रामीण हेल्थ सिस्टम को मजबूत करने के लिए प्राइमरी हेल्थ सेंटर्स को मजबूत करना जरूरी है, जिससे ग्रामीण लोगों की सेहत बेहतर हो सकती है और सोशल डेवलपमेंट बढ़ सकता है। अध्ययन साफ करता है कि पीएचसी ग्रामीण कम्युनिटीज को बेसिक हेल्थ सर्विसेज देने में बहुत अहम रोल निभाते हैं। टीकाकरण, गर्भवती महिलाओं की देखभाल, नवजात शिशुओं का स्वास्थ्य, आम बीमारियों का इलाज, और सार्वजनिक स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रमों में उनका योगदान काफी महत्वपूर्ण है। लेकिन, कई प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को डॉक्टरों की कमी, प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मचारियों की कमी, पर्याप्त मेडिकल उपकरणों की कमी, आवश्यक दवाइयों की अनियमित उपलब्धता, और कमजोर इंफ्रास्ट्रक्चर जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये चुनौतियाँ स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और पहुँच को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं।

मुख्य शब्द : प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, ग्रामीण स्वास्थ्य, स्वास्थ्य सेवाएं, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, टीकाकरण, ग्रामीण विकास।

प्रस्तावना :

किसी भी देश की प्रगति वहॉ के नागरिकों के स्वास्थ्य स्तर पर निर्भर करती है। भारत की अधिकांश

आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, जहाँ स्वास्थ्य किसी भी समाज के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण आधार है, और स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता और पहुँच हमेशा एक बड़ी चुनौती रही है। ग्रामीण समुदायों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र बनाए गए हैं। ये केंद्र ग्रामीण स्वास्थ्य प्रणाली की मुख्य इकाइयों के रूप में काम करते हैं और आम जनता को आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करते हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों का मुख्य लक्ष्य बीमारियों को रोकना, इलाज प्रदान करना, मातृ और शिशु स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ावा देना, टीकाकरण कार्यक्रम चलाना और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य जागरूकता फैलाना है। इसके अलावा, पीएचसी परिवार नियोजन, पोषण परामर्श और विभिन्न राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल का पहला पड़ाव होने के नाते, इन केंद्रों का वहां रहने वाले लोगों के जीवन पर सीधा असर पड़ता है। हालांकि, कई प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जैसे कि डॉक्टर और स्वास्थ्य कर्मचारियों की कमी, पर्याप्त मेडिकल उपकरणों की कमी, दवाओं की अनियमित उपलब्धता, और कमजोर बुनियादी ढांचा। ये चुनौतियां स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य पीएचसी के कामकाज और ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध सुविधाओं का विश्लेषण करना है, ताकि उनकी वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन किया जा सके और स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक प्रभावी और मजबूत बनाने के लिए आवश्यक सुझाव दिए जा सकें।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की समग्र स्थिति का मूल्यांकन करना है तथा अध्ययन को स्पष्ट और तार्किक दिशा देने के लिए निम्न बिन्दुओ को निर्धारित किया गया है। भौतिक अवसंरचना का मूल्यांकन, ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित PHCs की भौतिक अवसंरचना का मूल्यांकन करना, जिसमें भवनों की स्थिति, निर्बाध बिजली और पानी की आपूर्ति, स्वच्छता और बिस्तरों की उपलब्धता जैसी बुनियादी सुविधाओं की जांच शामिल है। ग्रामीण क्षेत्रों में पीएचसी की इमारतों और सुविधाओं को जैसे कि इमारत की स्थिति, बिजली और पानी की लगातार आपूर्ति, सफाई, और बुनियादी चीजें जैसे कि बिस्तरों की उपलब्धता। तथा ग्रामीण लोग स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में कैसा महसूस करते हैं, उन पर कितना भरोसा करते हैं, और इलाज के दौरान लागत कितनी होती है। पीएचसी में डॉक्टरों, नर्सों, लैब तकनीशियनों और फार्मासिस्टों की वास्तविक तैनाती और उनकी नियमित उपस्थिति की स्थिति को मंजूरी प्राप्त पदों के मुकाबले, स्टाफ की कमी के कारणों को जाननां। बजट आवंटन में देरी, दवाइयों की सप्लाई चयन व्यवधान, और स्थानीय स्तर पर स्वास्थ्य प्रबंधन समितियों के कामकाज में बाधाओं को हाइलाइट करना। इन केंद्रों की वास्तविक स्थिति का विश्लेषण करना, खासकर आवश्यक जीवन रक्षक दवाइयों, डायग्नॉस्टिक लैब, X-Ray/ECG जैसी परीक्षण सुविधाओं और डिलीवरी रूम की उपलब्धता के बारे में। इन निष्कर्षों के आधार पर, ग्रामीण पीएचसी को सरकारी और स्वास्थ्य योजनाकारों के लिए अधिक जिम्मेदार, सुलभ और अच्छी तरह से सुसज्जित बनाने के लिए एक व्यावहारिक मॉडल या सिफारिशें प्रस्तुत किया जानेका प्रयास किया जायेगा।

प्राचीन स्वास्थ्य प्रथाओं और आधुनिक प्राइमरी हेल्थ सेंटर के बीच संबंध :

प्राचीन भारत में, स्वास्थ्य की अवधारणा केवल बीमारियों का इलाज करने तक ही सीमित नहीं थी बीमारियों की रोकथाम को दीर्घायु और रोग–मुक्त जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था। आयुर्वेद के

मुख्य ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' और 'चरक संहिता' में स्वास्थ्य नियमों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इनमें शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखने के लिए ''दैनंदिन दिनचर्या और मौसमी दिनचर्या के नियम शामिल हैं। प्राचीन भारत में, स्वास्थ्य सेवा का तंत्र काफी हद तक विकेन्द्रीकृत था ताकि स्वास्थ्य सेवाएं समाज के हर स्तर तक पहुँच सकें। 'मौर्य और गुप्त साम्राज्य' के स्वर्ण युग के दौरान, सार्वजनिक स्वास्थ्य को राज्य की मुख्य जिम्मेदारी माना जाता था। उस समय, सम्राट (जैसे सम्राट अशोक) और धनवान नागरिकों ने पूरे राज्य में मुफ्त 'अस्पताल' और धार्मिक सेवा केंद्र स्थापित किए थे। यह प्रणाली आज के 'प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र प्रणाली' की तरह ही काम करती थी। इसका मुख्य उद्देश्य दूरदराज के इलाकों में रहने वाले और आर्थिक रूप से कमजोर नागरिकों को बुनियादी प्राथमिक देखभाल और दवाइयाँ प्रदान करना था। इस ऐतिहासिक विकेंद्रीकरण ने यह साबित किया कि मजबूत सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए स्थानीय स्तर पर चिकित्सा सुविधाएँ होना जरूरी है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली की सबसे बड़ी ताकत स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भरता थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में, 'वैद्यों' के पास आसपास के जंगलों और खेतों से मिलने वाले 'औषधियों' का गहरा ज्ञान होता था और वे इन्हें ताजी दवाइयाँ बनाने के लिए इस्तेमाल करते थे। यह प्रणाली किफायती और सुलभ थी। आजकल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के 'आयुष विंग' में, इस पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान के साथ मिलाकर रोगियों को प्राकृतिक और प्राथमिक देखभाल प्रदान की जा रही है। साथ ही, प्राचीन भारत में, 'मातृ और शिशु स्वास्थ्य' को बहुत महत्व दिया जाता था। आयुर्वेदिक ग्रंथों में बालरोग, स्त्री रोग का विस्तृत और वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। पुराने समय में, अनुभवी दाइयां और ग्रामीण क्षेत्रों के स्थानीय स्वास्थ्य विशेषज्ञ सुरक्षित प्रसव और नवजात शिशु की देखभाल करते थे। आज के पीएचसी में उपलब्ध आधुनिक प्रसूति सुविधाएं, संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देने वाली नीतियां, और ANM & ASHA कर्मचारियों की जमीनी स्तर पर भूमिका, इस प्राचीन सामुदायिक मातृ देखभाल प्रणाली का विकसित और मजबूत रूप हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की आधुनिक कार्यप्रणाली और सुविधाओं का विश्लेषण करना एक शोध पत्र के लिए बहुत ही प्रासंगिक विषय है। आधुनिक भारत में, ग्रामीण स्वास्थ्य अवसंरचना एक महत्वपूर्ण बदलाव के दौर से गुजर रही है।

आधुनिक संदर्भ में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की स्थिति :

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति के तहत, पारंपरिक ग्रामीण पीएचसी को अब ''आयुष्मान आरोग्य मंदिर'' (स्वास्थ्य और कल्याण केंद्र) के रूप मे बदल दिया गया है। वर्तमान में, देश भर में 23,000 से अधिक ग्रामीण पीएचसी इस नए मॉडल के तहत काम कर रहे हैं, जहाँ इलाज का दायरा केवल सामान्य बुखार या मातृत्व देखभाल तक सीमित नहीं है, बल्कि अब यह 12 व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं तक फैल चुका है। आधुनिक पीएचसी के संचालन में सबसे बड़ा परिवर्तन यह है कि अब संक्रामक रोगों के साथ–साथ, उच्च रक्तचाप, मधुमेह और कैंसर जैसी जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों के लिए मुफ्त स्क्रीनिंग और समय पर पहचान करना अनिवार्य हो गया है। डॉक्टरों की कमी को दूर करने के लिए, आधुनिक पीएचसी को डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर से लैस किया जा रहा है। ''ई–संजीवनी'' प्लेटफॉर्म के जरिए, ग्रामीण मरीज पीएचसी में बैठे–बैठे जिला अस्पताल या मेडिकल कॉलेज के स्पेशलिस्ट डॉक्टरों से टेली–कंसल्टेशन ले सकते हैं। इसके अलावा, मरीजों का डेटा 'आभा' डिजिटल हेल्थ कार्ड के माध्यम से लिंक किया जा रहा है। सुविधाओं की बात करें तो, अब बुनियादी डायग्नोस्टिक लैब्स, मुफ्त आवश्यक दवाएं और एक 'आयुष' विंग की मौजूदगी बढ़ गई है। हालांकि, रिसर्च के दृष्टिकोण से यह भी देखने

की जरूरत है कि कई दूरदराज के ग्रामीण पीएचसी अभी भी 24 घंटे बिजली और पानी की कमी, डॉक्टर और तकनीकी स्टाफ की कमी, और भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य मानकों का पूरी तरह पालन न होने जैसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं। इसलिए इन समस्याओं को हल करने के लिए 'ब्लॉक पब्लिक हेल्थ यूनिट्स' बनाई जा रही हैं।

आंकड़े :

- भारत के हेल्थ डाइनामिक्स 2022–23 के अनुसार, देश में कुल 31,872 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र चल रहे हैं। इनमें से 25,344 पीएचसी ग्रामीण क्षेत्रों में हैं, जो कि ग्रामीण आबादी को प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। तथा कुल मिलाकर, देश में 1,68,615 उप–स्वास्थ्य केंद्र काम कर रहे हैं, जो ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं का पहला संपर्क बिंदु हैं।
- भारत में कुल 6,259 सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र काम कर रहे हैं, जो रेफरल स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करते हैं।
- भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य मानकों के अनुसार, एक पीएचसी सामान्य क्षेत्रों में 29,000 लोगों और आदिवासी और दूरदराज के क्षेत्रों में 19,000 लोगों की सेवा करता है। 2021–22 के आंकड़ों के अनुसार, एक ग्रामीण पीएचसी औसतन 36,048 लोगों को स्वास्थ्य सेवाएं दे रहा था, जो निर्धारित मानक से ज्यादा है। 2022 में, करीब 30,639 एलोपैथिक डॉक्टर ग्रामीण पीएचसी में काम कर रहे थे।
- 2023 में, यह संख्या बढ़कर लगभग 32,801 एलोपैथिक डॉक्टर हो गई। पीएचसी में लगभग 8,373 आयुष डॉक्टर भी स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। आयुष्मान भारत योजना के तहत देश भर में 1,40,000 से अधिक स्वास्थ्य और कल्याण केंद्र स्थापित किए गए हैं।
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में 24,936 से अधिक पीएचसी कार्यरत हैं। तथा मैदानी क्षेत्रों में, 29,000 की आबादी के लिए एक पीएचसी स्थापित करना और पहाड़ी आदिवासी क्षेत्रों में 19,000 लोगों के लिए एक पीएचसी स्थापित करना है। वर्तमान में, औसतन, एक ग्रामीण पीएचसी लगभग 37,000 लोगों को कवर करता है।
- विस्तृत प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल नीति के तहत, पूरे देश में 1,59,000 से अधिक 'आयुष्मान आरोग्य मंदिर' काम कर रहे हैं, जिनमें सब–सेंटर्स और पीएचसी शामिल हैं, और ग्रामीण पीएचसी मुख्य आधार हैं।
- ग्रामीण पीएचसी में 30,641 से अधिक एलोपैथिक डॉक्टर/मेडिकल ऑफिसर हैं, जो कि कुल अनुमोदित पदों की तुलना में लगभग 3.2 प्रतिशत की कमी दिखाते हैं। इसके अलावा, पारंपरिक चिकित्सा को बढ़ावा देने के लिए, ग्रामीण पीएचसी में 8,474 से अधिक आयुष डॉक्टर तैनात किए गए हैं। नर्सिंग स्टाफ की उपलब्धता को भी मजबूत किया गया है, और वर्तमान में लगभग 47,933 स्टाफ नर्स ग्रामीण पीएचसी में सेवा दे रहे हैं।

सुझाव :

- सभी ग्रामीण पीएचसी को 5G और बिजली की आपूर्ति से जोड़ने की आवश्यकता है। तथा 'ई–संजीवनी' टेलीपरामर्श का दायरा बढ़ाया जाना चाहिए ताकि ग्रामीण स्तर पर ईसीजी और बेसिक ब्लड प्रोफाइलिंग जैसी डिजिटल डायग्नोस्टिक सुविधाएं सुनिश्चित की जा सकें।

- स्थानीय पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप को पैथोलॉजी टेस्ट और एम्बुलेंस सेवाओं के लिए बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि उपकरणों के रख रखाव से जुड़े मुद्दों का समाधान किया जा सके।
- मेडिकल ग्रेजुएट्स के लिए ग्रामीण सेवा बांड को और प्रभावी बनाया जाना चाहिए। इसके साथ ही, ग्रामीण इलाकों में डॉक्टरों को बेहतर आवास, व उनके बच्चों की शिक्षा के लिए भत्ते, और कार्यस्थल पर मजबूत सुरक्षा उपाय दिए जाने आवश्यकता है।
- नर्सों और एएनएम को नियमित प्रशिक्षण दिया जाने कि आवश्यकता है। ताकि अगर किसी समय डॉक्टर उपलब्ध न हों, तब भी वे आपातकालीन प्राथमिक चिकित्सा संभाल सकें और गैर–संचारी बीमारियों की प्रारंभिक जांच सही तरीके से कर सकें।
- पंचायती राज संस्थाओं और रोगी कल्याण समितियों को अधिक वित्तीय स्वतंत्रता दी जानी चाहिए ताकि वे स्थानीय स्तर पर छोटे पीएचसी की जरूरतों का खुद ध्यान रख सकें।
- पीएचसी स्तर पर आयुष डॉक्टरों और एलोपैथिक डॉक्टरों के बीच एक तेज रेफरल सिस्टम होना चाहिए ताकि मरीजों को पूरी तरह से इलाज मिल सके।
- सुरक्षित प्रसव, गर्भावस्था की जांच, नवजात देखभाल और पोषण सेवाओं को अधिक प्रभावी बनाना वास्तव में बहुत जरूरी है।
- ई–संजीवनी को डिजिटल हेल्थ रिकॉर्ड और ऑनलाइन कंसल्टेशन सेवाओं का विस्तार करना चाहिए ताकि दूर–दराज के ग्रामीण इलाके भी विशेषज्ञ स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच सकें।

निष्कर्ष :

ग्रामीण प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के कामकाज और सुविधाओं के इस विश्लेषण से पता चलता है कि भारत की ग्रामीण स्वास्थ्य प्रणाली, जो अपनी ऐतिहासिक विचारधारा से प्रेरित है, आधुनिक तकनीकी युग में एक बड़ी सकारात्मक बदलाव से गुजर रही है। जैसे पुराने विकेंद्रीकृत और रोकथाम–आधारित स्वास्थ्य मॉडल थे, वैसे ही प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र अब 'आयुष्मान आरोग्य मंदिर' में अपग्रेड हो रहे हैं ताकि स्वास्थ्य सेवाएं बहुत अधिक सुलभ और व्यापक बन सकें। 'ई–जीवनी' और 'आभा कार्ड' जैसी डिजिटल स्वास्थ्य पहलों ने दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषज्ञ मेडिकल परामर्श तक पहुंच के अंतर को कम कर दिया है, जो नीति स्तर पर एक बड़ी उपलब्धि है। हालांकि, रिसर्च के रिजल्ट्स से ये भी साफ होता है कि इंफ्रास्ट्रक्चर और टेक्नोलॉजी के बढ़ाव के बावजूद, जमीन पर कुछ बेसिक प्रॉब्लम्स अभी भी हैं। हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर मिनिस्ट्री के लेटेस्ट डेटा बताते हैं कि कई राज्यों में डॉक्टर और तकनीकी स्टाफ की कमी, दवाइयों का टाइम पे ना मिलना और पहाड़ी या ट्राइबल एरिया में असमान जियोग्राफिकल डिस्ट्रीब्यूशन जैसे फैक्टर्स PHCs की पूरी काम करने की क्षमता को इफेक्ट करते हैं। आखिर में कहा जा सकता है कि ग्रामीण भारत में सिर्फ इंफ्रास्ट्रक्चर बनाना ही 'सभी के लिए सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज' हासिल करने के लिए पर्याप्त नहीं है। आने वाली नीतियों को मानव संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन, ग्रामीण क्षेत्रों में डॉक्टरों के लिए बेहतर प्रोत्साहन, पंचायतों के लिए वित्तीय स्वायत्तता और एलोपैथिक और आयुष सिस्टम के बीच असली समन्वय पर ध्यान देने की जरूरत होगी। केवल जब ये प्राथमिक इकाइयाँ पूरी तरह सक्षम होंगी, तभी देश का सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली सच में मजबूत और आत्मनिर्भर बन पाएगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- अमर उजाला समाचार पत्र 12 जनवरी 2025।
- दैनिक जागरण समाचार पत्र 13 जनवरी 2025।
- हिन्दुस्तान समाचार पत्र 14 जनवरी 2025।
- अमर उजाला समाचार पत्र 29 जनवरी 2025।
- अमर उजाला समाचार पत्र 3 फरवरी 2025।
- डेटा रिर्पोट डिजिटल 2024 : वैश्विक अवलोकन रिर्पोट।
- ग्रामीण विकास एवं सहकारिता– गुप्ता, स्वामी।
- भारतीय आधुनिक शिक्षा अप्रैल 2000 NCERT
- तकनीकी मार्गदर्शिका– श्रीराम लुभाया IAS, प्रमुख शासन सचिव, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, जयपुर।
- ग्रामीण विकास मंत्रालय, प्रशासनिक प्रतिवेदन, नई दिल्ली, पृ. 104–105।
- ग्रामीण विकास मंत्रालय विभाग, भारत सरकार की वेबसाइट – www.rural.nic.in
- ग्रामीण विकास परियोजनाएं, कुरूक्षेत्र, वर्ष 2013, पृ. 34
- अमर्त्य सेन (1999) 'विकास को स्वतंत्रता के रूप में' न्यूयार्क : अल्फेड ए कनॉफ।
- नैला कबीर (1999) संसाधन, एजेंसी, उपलब्धियॉ : महिला सशक्तिकरण के मापन पर विचार डेवलपमेंट एंड चेंज, 30(30), 435– 467।
- पियरे बॉदियू (1986). पूँजी के रूप. जे. रिचर्डसन संपा., शिक्षा के समाजशास्त्र के लिए सिद्धांत और अनुसंधान का हैडबुक न्ययॉर्क : ग्रीनवुड प्रेस।
- Drishti IAS, भारत की स्वास्थ्य सेवाओं में संतुलन (Balancing Healthcare Services in India)."

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 5-6
पृष्ठ : 200–208

भारत की अखंडता के महान निर्माता : सरदार पटेल

नाजिया कौसर
पीएचडी शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड, 825301

सारांश :

आधुनिक भारत के अग्रणी निर्माताओं में से एक, सरदार वल्लभभाई पटेल के जीवन, दूरदर्शिता और उनके महत्वपूर्ण योगदान का एक व्यापक अन्वेषण है। 'भारत के लौह पुरुष' के रूप में प्रसिद्ध, पटेल ने स्वतंत्रता के माध्यम से देश के राजनीतिक एकीकरण और प्रशासनिक नींव को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह शोध पत्र उनके प्रारंभिक जीवन, स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भागीदारी और भारतीय संघ में 560 से अधिक रियासतों के एकीकरण में उनके अद्वितीय प्रयासों का वर्णन करती है – एक ऐसा महान कार्य जिसके लिए अत्यधिक रणनीतिक दूरदर्शिता, कूटनीति और दृढ़ संकल्प की आवश्यकता थी। रियासतों को संघ में एकीकृत करने, विभाजन के पीड़ितों– पूर्वी–पश्चिमी पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के पुनर्वास और पुर्नस्थापन में अपनी व्यस्तता के बावजूद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संगठनात्मक मामलों और गृह एवं राज्य मंत्रालयों के दैनिक प्रशासन की बारीकी से निगरानी करते हुए उन्होंने संविधान सभा में विचार विमर्श के लिए पर्याप्त से अधिक समय निकाला और संविधान के कुछ सबसे महत्वपूर्ण भागों का संचालन किया। यह आलेख राष्ट्रीय एकता की रक्षा के लिए पटेल की प्रतिबद्धता, उनके प्रशासनिक कौशल और भारत की संप्रभुता एवं अखंडता पर प्रकाश डालती है। भारत के प्रथम उप–प्रधानमंत्री और गृह मंत्री के रूप में उनकी भूमिका का गहन अध्ययन किया गया है और आंतरिक सुरक्षा, नागरिक सेवाओं के पुनर्गठन और राष्ट्र–निर्माण पर उनके विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द : लौह पुरुष, रणनीतिक दूरदर्शिता, लोक सेवा, नौकरशाही, लोकतांत्रिक।

भूमिका :

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में कई महान नेताओं और क्रांतिकारियों ने योगदान दिया, जिन्होंने कठिन संघर्ष और अपने प्रतिभापूर्ण नेतृत्व के साथ भारतीय राष्ट्र की नींव रखी। इन अत्यंत प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तित्वों में से एक सरदार वल्लभभाई पटेल थे, जो एक प्रतिष्ठित और प्रख्यात राजनेता थे और भारतीय भाषा की सरकार और व्यवस्था के प्रति समर्पित थे। सरदार पटेल की देश सेवा, समाज सेवा के साथ–साथ देशभक्ति और उनके दृढ़ निश्चय, आत्म विश्वास, संकल्प शक्ति दृढ़ विश्वास और कार्य के प्रति समर्पण के कारण उन्हें 'भारत का लौह पुरुष' कहा जाता है क्योंकि उनकी नीति और अनुशासन ने स्वतंत्र भारत को एक मजबूत और एकजुट राष्ट्र के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरदार पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को गुजरात

के नांदेड़ जिले के कोम्बे गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा का प्रारंभिक पहलू गाँव के प्राथमिक विद्यालयों से था, जिसके बाद उन्होंने अहमदाबाद में अपनी पढ़ाई और कॉलेज जारी रखा और अंततः इंग्लैंड में रहकर न्यायशास्त्र में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षों से भरा रहा, लेकिन उनकी कड़ी मेहनत, ईमानदारी और सच्चाई के प्रति प्रेम ने उन्हें भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सरदार पटेल का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था, लेकिन उनकी वास्तविक पहचान तब स्थापित हुई जब उन्होंने भारतीय राज्य की एकता और अखंडता की रक्षा में अपना अद्वितीय नेतृत्व दिखाया। यह आंदोलन 'भारत के राष्ट्रीय एकीकरण' के लिए हुए समझौते से विशेष रूप से जुड़ा था, जब उन्होंने 565 रियासतों को संगठित राष्ट्र में शामिल करने का निर्णय लिया। इनमें से अधिकांश रियासत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन थे, लेकिन उनका अपना शासन और स्वायत्तता थी। पटेल अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और राजनीतिक कौशल के साथ इन राज्यों को संगठित राष्ट्र में विलय करने में सफल रहे, जिससे भारत का राजनीतिक और भौगोलिक एकीकरण सुनिश्चित हुआ। उनकी उपलब्धि केवल राजनीतिक अखंडता के लिए ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने विभिन्न वर्गों और संस्कृतियों को जोड़ने और एकता को मजबूत करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य भी किया।

विषय विस्तार :

भारत के 'लौह पुरुष' के रूप में विख्यात सरदार वल्लभभाई पटेल एक महान स्वतंत्रता सेनानी, कुशल राजनीतिज्ञ और आधुनिक भारत के निर्माता माने जाते हैं। उन्होंने न केवल राज्य की स्वतंत्रता में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की भूमिका निभाई, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर राज्य की स्वतंत्रता के लिए भी कार्य किया। उनका जीवन त्याग, संघर्ष, देशभक्ति और दृढ़ संकल्प का प्रतीक है।

वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर 1875 को गुजरात राज्य के नाडियाड नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता झावेरभाई पटेल एक किसान थे और झांसी की राजधानी की नियमित सेना में एक सैनिक थे। उनकी माता का नाम लाडबाई था जो एक धार्मिक और परिश्रमी महिला थीं। वल्लभभाई अपने बड़े भाइयों और साथियों के बीच पले–बढ़े। उनका जीवन शुरू से ही कठिनाइयों से भरा था, लेकिन उन्होंने कभी हार नहीं मानी। वल्लभभाई पटेल की प्रारंभिक शिक्षा करमसाद, पेटलाद और नाडियाड में हुई। बचपन से ही वह बहुत गंभीर और स्वतंत्र विचारों वाले थे। पढ़ाई में वे एक औसत छात्र थे, लेकिन उनमें अद्भुत आत्मविश्वास था। अपनी पढ़ाई का खर्च उठाने के लिए उन्होंने खुद कड़ी मेहनत की और आगे बढ़ने की ठान ली। उसी समय उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे एक सफल वकील बनेंगे। अपनी स्कूली पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने इंग्लैंड जाकर कानूनी शिक्षा लेने का फैसला किया। 1910 में उन्होंने यूनाइटेड किंगडम की राजधानी में इंटरमीडिएट कॉलेज से स्नातक किया और 1920 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की, जिसके लिए उन्हें 750 रुपए का पुरस्कार भी मिला। उन्होंने अपने बैच में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त की, जो उनकी प्रतिभा और कड़ी मेहनत का प्रमाण था। इसके बाद वे 1913 में भारत लौट आए और अहमदाबाद में सक्रिय न्यायविद् से लेकर स्वतंत्रता सेनानी तक का सफर तय किया।

एक राजनेता की शुरूआत :

अहमदाबाद के सिविल सेवा आयोग के अध्यक्ष पद पर अक्सर ब्रिटिश अधिकारियों के साथ बातचीत करते हुए, पटेल ने राजनीति में कोई रुचि नहीं दिखाई। महात्मा गांधी के बारें में सुनकर, उन्होंने अपने एक मित्र से

मजाक में कहा, 'गांधी आपसे पूछेंगे कि गेहू से से कंकड़ कैसे अलग करें। और यही आजादी लाने का वादा करता है।' लेकिन जब गांधी ने चंपारण में उस क्षेत्र के उत्पीड़ित किसानों के लिए अंग्रेजों को चुनौती दी, तो पटेल बहुत प्रभावित हुए और पटेल ने गांधी के राजनीति के प्रति झुकाव को विशेष रूप से आकर्षित किया। सितंबर 1917 में पटेल ने होनद में एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने देश भर के भारतीयों को ब्रिटेन से स्वराज की मांग वाली याचिका पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रोत्साहित किया। गांधीजी गांधीजी के प्रोत्साहन पर, पटेल गुजरात सभा के सचिव बने, जो आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गुजरात शाखा बनी। पटेल खेड़ा सत्याग्रह के लिए गुजरातियों के नायक के रूप में उभरे, जिन्होंने बंगालियों को कर देने से इनकार कर दिया, और पूरे भारत में उनकी प्रशंसा हुई। 1920 में, उन्हें नवगठित गुजरात प्रदेश कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष चुना गया – वे 1945 तक इसके अध्यक्ष रहे। जब गांधीजी जेल में थे, थे, तब कांग्रेस ने सरदार पटेल को 1921 में नागपुर में में भारतीय राष्ट्रीय ध्वज फहराने से संबंधित एक कानून के खिलाफ सत्याग्रह का नेतृत्व करने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने ध्वज फहराने की प्रक्रियाओं में देश भर से हजारों स्वयंसेवकों को संगठित किया। वल्लभ भाई पटेल ने गुजरात के बारडोली में, जो 137 गांव का क्षेत्र था और जिसकी आबादी 87,000 थी, बंबई के गवर्नर द्वारा राजस्व वृद्धि के विरोध में किसानों का नेतृत्व किया। पहले तो सरकार ने इस सत्याग्रह आंदोलन को कुचलने के लिए कठोर कदम उठाए लेकिन अंततः सरकार को किसानों की मांगें माननी पड़ी। बारडोली सत्याग्रह की इस विषय पर यहां की महिलाओं ने पटेल को 'सरदार' की उपाधि दी, जो उनके कदम में साहस, कठोर निर्णय और संकल्प की पराकाष्ठा को दर्शाती है।[1]

नमक सत्याग्रह और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन :

1930 का दशक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इस दौरान मोहनदास करमचंद गांधी के नेतृत्व में सभ्य, अहिंसा आंदोलन ने ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी। इस आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा नमक सत्याग्रह था, जिसकी शुरुआत गांधीजी ने 12 मार्च 1930 को साबरमती आश्रम से दांडी तक पैदल मार्च करके की थी। इस महत्वपूर्ण अभियान ने लाखों भारतीयों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया। इस अभियान में सरदार वल्लभभाई पटेल ने एक प्रख्यात व्यक्तित्व की भूमिका निभाई। उन्होंने अपने जोशीले और प्रभावशाली भाषणों से जनता को आंदोलित किया। उनके भाषणों ने जनता में अभूतपूर्व ऊर्जा का संचार किया, जिसके कारण हजारों लोग सत्याग्रह में शामिल हुए और ब्रिटिश राज के विरुद्ध आंदोलन के लिए प्रेरित हुए। इसी बीच, 1930 में सरदार पटेल को एक तथाकथित आतंकवादी हमले में भाग लेने और आंदोलन को हिंसक बनाने के आरोप में ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। यह आशंका सरकार के विघटन पर आधारित थी, जिसका उद्देश्य आंदोलन को दबाना था, हालाँकि पटेल की आशंका थी कि आंदोलन की ताकत को दबाया नहीं जा सकेगा। आंदोलन और व्यापक हो गया। विकासशील राज्य दबाव के बीच अंततः 1931 में गुरु मोहनदास करमचंद गांधी और तत्कालीन वायसराय हेनरी इरविन के बीच एक महत्वपूर्ण समझौता हुआ, जिसे गांधी–इरविन समझौता कहा जाता है। इस समझौते के तहत् ब्रिटिश सरकार सरदार पटेल सहित कई राजनीतिक कैदियों को रिहा करने पर सहमत हुई। इस समझौते के तहत गांधीजी ने इसी तरह नागरिक स्वतंत्रता आंदोलन को अस्थायी रूप से रोकने के लिए 1931 में करांची अधिवेशन आयोजित किया, जो भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता समझौते के इतिहास में एक प्रमुख घटना थी। इस अधिवेशन में सरदार

वल्लभभाई पटेल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। अपने अध्यक्षीय कार्यकाल में उन्होंने स्पष्ट रूप से नागरिक अधिकारों के पक्ष में सर्वोच्च न्यायालय और कमजोर अधिकारों की वकालत की।

रियासतों का एकीकरण :

1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने स्वतंत्रता के चिर–परिचित आदर्श को वास्तविकता के एक कदम और करीब ला दिया। लेकिन आगे और भी कई चुनौतियाँ थीं। स्वतंत्रता के समय ब्रिटिश भारत और रियासतें मिलकर संपूर्ण भारत का निर्माण करती थीं। 17 ब्रिटिश–भारतीय प्रांत और 560 से अधिक रियासतें थीं, जो देश के कुल भू–भाग का लगभग दो–पाँचवाँ हिस्सा थीं। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने भारत सरकार को ब्रिटिश भारत पर अधिकार क्षेत्र प्रदान किया, लेकिन रियासतों के नेताओं के पास भारत या पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र रहने का विकल्प था। रियासतों को भारत संघ में शामिल करने के लिए सरदार पटेल ने हस्तक्षेप किया। सरदार पटेल के अधीन, 25 जून, 1947 को विदेश विभाग की स्थापना की गई। इसके सचिव का नाम वी.पी. मेनन था। साथ मिलकर, ये दोनों लोग एक शक्तिशाली टीम थे, जिनकी चतुराई और कूटनीति ने उन्हें उन बाधाओं को पार करने में सक्षम बनाया जो दुर्गम लगती थीं। सरदार पटेल ने 15 अगस्त 1947 को भारत के प्रथम गृह मंत्री और उप–प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली। उन्होंने संचार और प्रसारण मंत्रालय का नेतृत्व भी संभाला।[2]

विलय की कहानी अपनी कठिनाइयों और महत्वपूर्ण उपलब्धियों के साथ विकसित हुई। कई चर्चाओं और वार्ताओं के बाद, पाकिस्तान के साथ बेहतर शर्तों पर बातचीत करने के प्रयासों के बाद, जोधपुर जून 1947 में भारत में शामिल हो गया। इसके बाद जुलाई 1947 में त्रावणकोर ने घोषणा की कि वह स्वतंत्र बने रहने के अपने अधिकार का प्रयोग करेगा। पटेल की कूटनीति के कारण अंततः त्रावणकोर के राजा गठबंधन में शामिल हो गए। इस निर्णय ने उन अन्य सरकारों के नेताओं को भी प्रभावित किया, जो पहले विलय के मुद्दे पर झिझक रहे थे। राज्य के निवासियों के कड़े विरोध के बावजूद, जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया। सरदार पटेल ने अंततः जूनागढ़ को शेष भारत में पुनः एकीकृत करने के लिए अथक प्रयास किया। फरवरी, 1948 में जूनागढ़ में एक ऐतिहासिक जनमत संग्रह हुआ और अधिकांश मतदाताओं ने भारत में ही रहने का फैसला किया। कश्मीर के राजा हरि सिंह भारत में शामिल होने को लेकर असमंजस में थे। लेकिन, जब पाकिस्तान ने आक्रमण किया, अक्टूबर 1947 में कश्मीर पर हुए हमले के बाद, राजा ने डॉ. राजेंद्र प्रसाद से तत्काल सहायता की गुहार लगाई। सरदार पटेल ने भारत में राज्य के एकीकरण पर एक प्रेस कॉन्फ्रेंस के दौरान शपथ ली। राजा ने सहायता स्वीकार की और विलय पत्र पर हस्ताक्षर करके बदले में सहायता की। अक्टूबर 1947 से नवंबर 1949 तक जब संविधान सभा भारतीय संविधान तैयार कर रही थी, तब कश्मीर के विलय की शर्तों पर बातचीत चल रही थी। संविधान के भाग XXI (अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष प्रावधान) के तहत्, अनुच्छेद 370 उन विशेष शर्तों की रक्षा के लिए जोडा गया था जिनके तहत् कश्मीर ने भारत में शामिल होने की सहमति दी थी। अनुच्छेद 370 के अनुसार, राष्ट्रपति संविधान (जम्मू और कश्मीर पर लागू) आदेश 1954 जारी करके यह चुन सकते थे कि भारतीय संविधान के कौन से हिस्से जम्मू और कश्मीर पर संशोधन के साथ या बिना संशोधन के लागू किए जाएं। परिणामस्वरूप, जम्मू और कश्मीर ने अपना विशेष दर्जा बरकरार रखा और अपना संविधान अपना लिया। अस्थायी यथास्थिति बनाए रखने के लिए, हैदराबाद के निजाम मीर उस्मान अली

खान बहादुर ने भारत के साथ एक 'स्थिरता समझौते पर हस्ताक्षर किए। फिर भी, राज्य में जातीय तनाव और हिंसा के कारण पटेल को कार्रवाई के लिए मजबूर होना पड़ा। ऑपरेशन पोलो के तहत भारतीय सेना हैदराबाद में दाखिल हुई। 17 सितंबर, 1948 को युद्धविराम की घोषणा के बाद हैदराबाद को भारतीय संघ में शामिल कर लिया गया।[3]

मौलिक अधिकार :

पटेल ने 24 जनवरी 1947 को संविधान सभा द्वारा गठित सलाहकार समिति की अध्यक्षता की थी। समिति का दायित्व भारतीय संविधान में उल्लिखित मौलिक और अल्पसंख्यक अधिकारों पर एक अंतरिम रिपोर्ट तैयार करना था, जो सबसे महत्वपूर्ण हैं।

(क) उचित प्रतिबंध (अनुच्छेद 19 (2–6)) : सरदार पटेल ने 30 अप्रैल, 1947 को उचित प्रतिबंधों का पहला मसौदा प्रस्तुत किया। कई संशोधनों में से एक, इस प्रावधान में अल्पसंख्यकों, समूहों और जनजातियों के संरक्षण को शामिल करना था। समानता के लिए प्रयास करते हुए, पटेल ने संशोधन को आंशिक रूप से स्वीकार किया और सुझाव दिया कि इस खंड में 10 वर्ष बाद संशोधन किया जाना चाहिए, तब तक आदिवासी अन्य नागरिकों के समान दर्जा प्राप्त कर चुके होंगे और ऐसा होने पर प्रावधान से 'जनजाति' शब्द को हटाया जा सकता है।

(ख) नागरिकता :

दोहरी नागरिकता संबंधी कानून का मसौदा तैयार करते समय, यह प्रश्न उठा कि क्या भारत में जन्में किसी व्यक्ति, जिसके माता–पिता विदेशी नागरिक हों, को भारतीय नागरिकता मिलेगी। इस पर पटेल के शब्द थे, 'यह याद रखना जरूरी है कि नागरिकता संबंधी प्रावधान की पूरी दुनिया में जाँच–पड़ताल की जाएगी। वे देख रहे हैं कि हम क्या कर रहे हैं। यह एक साधारण समस्या है। हमारे यहाँ हमेशा कुछ विदेशी आते रहते हैं. .. अगर जन्म के संयोग से कोई यहाँ आकर रहता है, तो हमारे द्वारा बनाए गए प्रावधान के अधीन, हम अपने कानून द्वारा दोहरी नागरिकता को नियंत्रित कर सकते हैं।' इस खंड को संविधान में अपनाया गया।[4]

(ग) नागरिकों के साथ भेदभाव न करना (अनुच्छेद 14) : जाति, संप्रदाय, धर्म, लिंग, रंग और वंशवादी भेदभाव से जुड़े मुद्दे उस समय भी राज्य को प्रभावित कर रहे थे। पटेल ने उपरोक्त आधारों पर नागरिकों के साथ भेदभाव न करने के अधिकार की शुरुआत की और इस धारा ने कुओं, तालाबों, सड़कों और स्नान घाटों जैसी सार्वजनिक सुविधाओं तक पूर्ण पहुँच प्रदान की। इस मौलिक अधिकार का मसौदा तैयार करते समय, 'राजनीतिक पंथ' शब्द जोड़कर राजनेताओं को एक विशेष भेदभाव न करने का अधिकार प्रदान करने की अवधारणा पर विचार किया गया था। इसका अर्थ था कि किसी भी नागरिक को राजनीतिक दलों के सदस्यों के साथ उनके राजनीतिक विश्वासों के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। समावेशन का विरोध करते हुए पटेल ने कहा, 'राजनीतिक पंथ के संबंध में गैर–भेदभाव का प्रावधान करना एक बेतुका विचार है। राजनीतिक पंथ किसी भी प्रकार का हो सकता है। कुछ राजनीतिक पंथ अत्यधिक आपत्तिजनक हो सकते हैं। कुछ भेदभाव के योग्य नहीं हो सकते हैं, लेकिन वास्तव में दमन के योग्य हो सकते हैं।'[5]

(घ) अस्पृश्यता उन्मूलन (अनुच्छेद 17) : सरदार पटेल ने इस धारा को सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया ताकि संशोधन की आवश्यकता ही न पड़े। फिर भी, मलाहार जैसे स्थानों की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, धारा में 'अप्राप्यता' शब्द जोड़ने के लिए संशोधन की मांग की गई। पटेल ने संशोधन का विरोध किया और कहा

कि यह प्रावधान अस्पृश्यता के विचार को समाप्त करने और इसे कानून द्वारा दंडनीय बनाने से संबंधित है। उन्होंने आगे कहा कि यह प्रावधान अस्पृश्यता से व्यापक रूप से निपटता है और 'यदि मौलिक अधिकारों में अस्पृश्यता का प्रावधान है तो विधानमंडल द्वारा पारित कानून में समायोजन किया जाएगा'।

(ङ) उपाधियों का उन्मूलन (अनुच्छेद 18) : इस प्रावधान का मसौदा तैयार करते समय, साम्राज्यवादी शासकों द्वारा प्रदान की गई उपाधियों से संबंधित मामला उठा और यह सुझाव दिया गया कि ऐसी उपाधियों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। पटेल ने कहा, 'पिछले एक–दो वर्षों में कई उपाधियाँ त्याग दी गई हैं और इन उपाधियों का मूल्य समाप्त हो गया है।' उन्होंने कहा कि इस प्रावधान का उद्देश्य राजनीतिक दलों के मोर्चों को 'अपनी पार्टी को मजबूत करने या अनुचित तरीकों से ताकत हासिल करने के लिए किसी भी तरह का प्रलोभन देने या लोगों को भ्रष्ट करने का अधिकार' प्राप्त करने से रोकना है।

(च) अल्पसंख्यक अधिकार :

25 अगस्त 1947 को सलाहकार समिति पृथक एवं संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों तथा अल्पसंख्यकों के लिए विधानमंडलों एवं सेवाओं में सीटों के आरक्षण पर बहस कर रही थी। सरदार पटेल संयुक्त निर्वाचन मंडल के पक्ष में दृढ़ता से अड़े रहे। पटेल ने अपनी रिपोर्ट में अल्पसंख्यकों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया: जनजातियाँ, भारतीय ईसाई और सिख, मुसलमान और अनुसूचित जातियाँ। पटेल ने कहा : 'जो लोग इस तरह की चीजें चाहते हैं, उनके लिए पाकिस्तान में जगह है, यहां नहीं... यहां हम एक राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं और हम एक राष्ट्र की नींव रख रहे हैं, और जो लोग फिर से विभाजन करना चाहते हैं और विघटन के बीज बोना चाहते हैं, उनके लिए यहां कोई जगह नहीं होगी और मैं यह स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूं।' काफी बहस के बाद, संयुक्त निर्वाचन मंडल के विचार को स्वीकार कर लिया गया, लेकिन समिति ने इस पर विचार करना बंद नहीं किया। 1949 तक पटेल सहित समिति के सदस्यों के बीच एक आम सहमति बन गई और यह महसूस किया गया कि स्वतंत्र भारत में अनुसूचित जातियों के अलावा अल्पसंख्यक समुदायों के लिए आरक्षण नहीं होना चाहिए। पटेल सभी के लिए समानता लाने और अल्पसंख्यकों की अवधारणा को मिटाने के लिए आगे आए। उनका मानना था कि यह वर्गीकरण साम्राज्यवादी शासकों द्वारा समुदायों के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए किया गया था, लेकिन इससे सांप्रदायिक मतभेदों को जन्म मिला।[6]

भारत के लौह पुरुष ने 15 दिसंबर 1950 को अंतिम सांस ली। अपेक्षाकृत कम समय में, उन्होंने 565 रियासतों को भारत संघ में एकीकृत करने का कार्य सफलतापूर्वक पूरा किया, जो इतिहास में अभूतपूर्व उपलब्धि थी। इसके बाद के वर्षों में, राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया जारी रही। लंबी बातचीत के बाद, अंततः 1954 में फ्रांसीसी सरकार ने पांडिचेरी और अन्य फ्रांसीसी उपनिवेशों को भारत को सौंप दिया। दिसंबर 1961 में, भारतीय सैनिकों ने गोवा में प्रवेश किया, जो पुर्तगाली शासन के अधीन था। ऑपरेशन विजय के तहत् गोवा, दमन और दीव को भारतीय संघ में शामिल कर लिया गया और उन्हें भारत के एक केंद्र–नियंत्रित केंद्र शासित प्रदेश में बदल दिया गया। अंततः मई, 1987 में, केंद्र शासित प्रदेश का विभाजन कर दिया गया, दमन और दीव केंद्र शासित प्रदेश बने रहे और गोवा भारत का पच्चीसवाँ राज्य बन गया।

सिक्किम, जो पहले एक संरक्षित राज्य था, मई 1975 में भारत में शामिल कर लिया गया। राजशाही को उखाड़ फेंका गया। 1975 के 36वें संविधान संशोधन अधिनियम ने सिक्किम को भारतीय संघ का एक राज्य बना

दिया, जिससे देश की क्षेत्रीय अखंडता सुरक्षित रही। 5 अगस्त, 2019 को संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत् जम्मू–कश्मीर को एक अस्थायी विशेष दर्जा दिया गया था, हालाँकि, भारत के अभिन्न अंग के रूप में जम्मू–कश्मीर की स्थिति को देखते हुए, उस प्रावधान को बाद में निरस्त कर दिया गया। जैसा कि सरदार पटेल की मंशा थी, इससे राष्ट्र का सच्चा एकीकरण हुआ।[7]

सरदार पटेल का 'सपनों का भारत' :

राष्ट्र निर्माण एवं उसकी एकता एवं अखंडता के क्षेत्र में सरदार पटेल का योगदान अद्वितीय है। स्वतंत्रता–पूर्व राष्ट्रीय आंदोलनों में जिस प्रकार उन्होंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह में शामिल होकर अंग्रेजों के अत्याचारों का डटकर विरोध किया तथा कुशलता एवं सूझ–बूझ के साथ आंदोलनों का नेतृत्व किया, वहीं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के निर्माण एवं उसके सपनों को साकार करने की दिशा में उन्होंने जो कदम उठाए, वे न केवल स्मरणीय हैं, बल्कि यह कल्पना करने योग्य है कि यदि उन्होंने सभी रियासतों को भारत के साथ जोड़कर उसे 'एकात्मक स्वरूप' प्रदान न किया होता, तो भारत का स्वरूप कैसा होता? यदि सरदार पटेल ने 'बिस्मार्क' के नेतृत्व में निरंतर प्रयास न किए होते, तो आज भारत की जगह कई देश होते, जो सीमा या अन्य मुद्दों पर आपस में संघर्षरत होते। जम्मू–कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ ने पहले तो इसका विरोध किया और खुद को स्वतंत्र रखना चाहा, लेकिन पटेल के दृढ़ इरादों ने स्पष्ट कर दिया कि भारत एक 'एकीकृत इकाई' ही रहेगा। सरदार पटेल ने कहा है कि 'एकता के बिना जनशक्ति 'शक्ति' नहीं है, जब तक कि उसमें उचित सामंजस्य और एकजुटता न हो, तब तक वह आध्यात्मिक शक्ति बन जाती है।'

सरदार पटेल ने ऐसे माहौल में काम किया जो बेहद कठिन था। जाति, भाषा, धर्म, जातीय परंपराएँ, क्षेत्र की विविधता को एक सूत्र में पिरोना और उसे विकास और प्रगति के पथ पर ले जाना एक चुनौती थी, जिसे पटेल ने अपनी बुद्धिमत्ता और योग्यता से पूरा किया। दुनिया में सबसे बड़ी आबादी के रूप में भारत का प्रभाव सरदार पटेल के योगदान के कारण है। उन्होंने उस असंभव से लगने वाले कार्य को संभव बनाया जब विंस्टन चर्चिल इस उपमहाद्वीप को हिंदुस्तान, पाकिस्तान और छोटी–छोटी रियासतों में विभाजित करना चाहते थे। सरदार पटेल ने राष्ट्रीय एकता का एक ऐसा स्वरूप दिखाया, जिसकी उस समय कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। इसी योगदान के कारण, उनकी जन्मतिथि, 31 अक्टूबर, 2014 से 'राष्ट्रीय एकता दिवस' के रूप में मनाई जाती है।[8]

गांधी, नेहरू, पटेल के विचारों की प्रासंगिकता :

महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल के विचारों की जब भी चर्चा होती है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि नेहरू और पटेल, दोनों ही गांधी के विचारों से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े थे। शायद इसीलिए दोनों एक ही कमान में थे, वरना उनकी सोच में जमीन–आसमान का अंतर था। पटेल जहाँ एक सरल, जमीनी व्यक्तित्व वाले तेजस्वी व्यक्ति थे, वहीं नेहरूजी धनी परिवारों के नवाब थे। जमीनी हकीक़त से कोसों दूर, बस वही सोचने और करने वाला व्यक्ति जो पटेल किया करते थे। चाहे शैक्षिक योग्यता हो या व्यावहारिक सोच, पटेल इन सब में नेहरू से आगे थे। आजाद भारत में इन दो बड़े नेताओं नेहरू और पटेल के रिश्तों की कहानी भी अनोखी है। दोनों महान देशभक्त थे, लेकिन एक–दूसरे के प्रतिद्वंदी भी। दोनों के बीच गहरे मतभेद थे, जो पूरी तरह से उभर नहीं पाए। नेहरू के अनुसार, मुसलमानों को भारत में सुरक्षित महसूस

कराना भारत सरकार की जिम्मेदारी थी, जबकि पटेल चाहते थे कि अल्पसंख्यक यह जिम्मेदारी खुद उठाएँ।

सरदार पटेल ने 2 अक्टूबर को इंदौर में महिला केंद्र का उद्घाटन करते हुए इस अवसर का उपयोग प्रधानमंत्री के प्रति अपनी आस्था प्रदर्शित करने के लिए किया। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि वे महात्मा गांधी के अनेक अहिंसक अनुयायियों में से एक हैं। पटेल ने आगे कहा कि अब चूँकि महात्मा गांधी हमारे बीच नहीं हैं, इसलिए नेहरू हमारे नेता हैं। बापू ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था और इसकी घोषणा भी की थी। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू और उप–प्रधानमंत्री सरदार पटेल में अंतर था। लेकिन दोनों ने ही इंग्लैंड जाकर बैरिस्टर की उपाधि प्राप्त की। लेकिन सरदार पटेल वकालत में नेहरू से कहीं आगे थे। पटेल को गांधीजी से किया अपना वादा याद था, जिसमें उन्होंने नेहरू के साथ मिलकर काम करने की बात कही थी। इसके साथ ही, कांग्रेस अध्यक्ष पद को लेकर हुए विवाद के दौरान उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। बिस्तर पर लेटे–लेटे उन्होंने 14 नवंबर को नेहरू के जन्मदिन पर उन्हें बधाई पत्र लिखा। एक हफ्ते बाद, जब प्रधानमंत्री उनसे मिलने आए, तो पटेल ने कहा कि जब मेरा स्वास्थ्य थोड़ा ठीक हो जाएगा, तो मैं आपसे अकेले में बात करना चाहूंगा। मुझे ऐसा लग रहा है कि आपका मुझ पर से विश्वास उठता जा रहा है। जवाब में नेहरू ने कहा कि मुझे लगता है कि मैं खुद पर से विश्वास खो रहा हूं, इसके तीन हफ्ते बाद 15 दिसंबर 1950 को सरदार पटेल का निधन हो गया और यह लौह पुरुष दुनिया को अलविदा कह गया और इतिहास के पन्नों पर हमेशा अमर रहेगा।[9]

निष्कर्ष :

सरदार वल्लभभाई पटेल को यूँ ही 'लौह पुरुष' नहीं कहा जाता। स्वतंत्र भारत के अस्तित्व में उनका योगदान न केवल असाधारण था, बल्कि उतना ही निर्णायक भी था। यदि महात्मा गांधी ने हमें स्वतंत्रता दिलाई, तो सरदार पटेल ने उस स्वतंत्रता को स्थिरता और एकता का आधार दिया। यदि आज भारत एक एकीकृत और सुव्यवस्थित राष्ट्र है, तो इसका सबसे बड़ा श्रेय सरदार पटेल को जाता है। उस समय भारत में लगभग 562 रियासतें थी, जिनका विशाल और अविभाजित स्वरूप था। ऐसे समय में अखंड भारत की कल्पना करना भी कठिन था। सरदार पटेल की असाधारण राजनीतिक इच्छाशक्ति, त्वरित प्रशासनिक शक्ति और इन स्वर्ण–विभाजित राज्यों को एक संगठित राष्ट्र में विलय करने के दृढ़ संकल्प ने ही उन्हें एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाया। उन्होंने हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर जैसे जटिल मुद्दों को भी अथक प्रयासों से सुलझाया और भारत को एक मजबूत राष्ट्र के रूप में स्थापित किया। सरदार पटेल न केवल एक नेता थे, बल्कि एक कुशल प्रशासक भी थे। उन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस) की नींव रखी जिससे राज्य को एक सुव्यवस्थित और सुचारु प्रशासनिक संगठन प्राप्त हुआ। उनका मानना था कि एक मजबूत और जवाबदेह नौकरशाही के बिना राष्ट्र का विकास संभव नहीं है। निजी हितों से दूर रहकर उन्होंने राज्य की सर्वोच्चता की चिंता को अखंड रखा। आज जब हम भारत की एकता, अखंडता और संप्रभुता की बात करते हैं, तो सरदार पटेल का नाम स्वतः ही मन में आता है।

संदर्भ सूची :

1. मंडल, अदिति, 2022, रीडिफाइनिंग सोशल रिलेशनशिप्स इन्फ्लुएंस ऑफ महात्मा गांधी ऑन सरदार वल्लभभाई पटेल, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ होम साइंस, ISSN 2395–7476

2. प्रभाकर, विष्णु, 1977, सरदार वल्लभभाई पटेल, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, भारत।
3. गांधी, राजमोहन, 1990, पटेल, ए लाइफ, अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिकेशन हाउस।
4. बंदोपाध्याय, शेखर, 2004, फ्रॉम प्लासी टू पार्टीशन : ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, ओरियंट ब्लैकस्वान, ISBN 978-81-250-2596-2..
5. सरकार, सुमित, 1983, मॉडर्न इंडिया : 1885 – 1947, मद्रासः मैकमिलन ISBN 978–0–333–90–425–1
6. मजूमदार, रमेश चंद्र, 1975, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, वॉल्यूम 2, फर्मा के.एल.एम. मुखोपाध्याय, ISBN 978–81–7102–099–7
7. शंकरदास, रानी धवन, 1988, वल्लभभाई पटेल, पावर एंड ऑर्गेनाइजेशन इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरियंट लोंगमैन, नई दिल्ली।
8. दुबे, डॉ. यादवेंद्र, 2022, एसेसिंग सरदार वल्लभभाई पटेल रोल इन इंडियाज यूनिफिकेशन, इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टी डिसीप्लिनरी रिसर्च, ISSN 2582–2160
9. कुमार, डॉ. चितरंजन, 2021, कन्ट्रिब्यूशन ऑफ सरदार पटेल इन द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड द रेलीवेंस ऑफ हीज आईडियाज, रिसर्च रिव्यू जर्नल ऑफ सोशल साइंस।

मो. न.– 7061939604

ईमेल– naziyakouser181996@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh
SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय #202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

‘तीर्थभारतम्’ में तीर्थाटन की सांस्कृतिक दृष्टि और भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब

Authored by

राजू मौर्या, शोधार्थी,

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. (डॉ.) वन्दना द्विवेदी, शोध निर्देशिका

नवयुग कन्या महाविद्यालय, राजेंद्र नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 08-13

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

ओम नागर के साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य

Authored by

कुलदीप प्रजापति, PhD

डॉ. यशोदा मेहरा, सह आचार्य,

राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 14-20

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

Research Institute GD BHIWANI (HRY.) 2020

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

जनपद फिरोजाबाद में कृषि विकास की आधुनिक प्रौद्योगिकिया : एक भौगोलिक अध्ययन

Authored by

डॉ. जुगेंद्र सिंह

प्रोफेसर,

जे० एस० विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 21-26

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

आदिवासियों के प्रति क्रूरताओं के खिलाफ आवाज : जसिन्ता केरकेट्टा की कविता संकलन 'प्रेम में पेड़ होना'

Authored by

श्वेता टी. पी.

शोधार्थी, हिंदी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय, केरल।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 27-31

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में नारी का भावनात्मक पक्ष

Authored by

Sathyanarayanappa
Assistant Professor, Department of Hindi
Nagarjuna College of Management Studies,
Chikkamarali Village, Nandi Hobli, Chikkaballapura.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 32-34

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Exploring the Contested Legacies : Article 370 from Foundational Debates to its Abrogation

Authored by

Padma Angmo
PhD Scholar, Department of Political Science
University of Delhi.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 35-49

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

जातकों के आधार पर बौद्ध धर्म के विकास में वैश्य वर्ग का योगदान

Authored by

डॉ. अनीता रानी

सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग
कालिंदी कॉलेज (एन.सी.डब्ल्यू.ई.बी.)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 50-55

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

वंदना यादव के कहानी संग्रह 'जिंदगी और मौत के बीच में' सैनिक जीवन के विविध आयाम

Authored by

सीमा शर्मा

शोधार्थी, पी–एच.डी. हिन्दी,

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समर हिल शिमला।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 56-62

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
Research Institute GD A unit of GRE&SWS (Regd.) BHIWANI (HRY.) 2020
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

THEMATICALLY STUDY BETWEEN NOVELS OF R.K NARAYAN'S NOVEL 'THE GUIDE' AND 'THE MALGUDI DAYS'

Authored by

Hemant Kamra, Ph.D Scholar
Deptt. of English, SKD University, Pillibanga Hanumangarh (Raj.)
Dr Sheeshpal Singh, Assistant Professor,
Deptt. of English, Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 63-67

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

वैश्वीकरण का साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (भारत के सन्दर्भ में)

Authored by

डॉ० जय शंकर पाण्डेय
विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग)
अवधूत भगवान राम पी.जी. कॉलेज, अनपरा, सोनभद्र।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 68-75

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

मल्हारराव होलकर और राजपूतों के मध्य संबंध : एक ऐतिहासिक अध्ययन

Authored by

महेंद्र, शोधार्थी

प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस श्री अटल बिहारी वाजपेयी शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 76-81

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Literary Style of Mulk Raj Anand specifically on Coolie…

Authored by

Harinder Pal Singh, Ph.D Scholar

Deptt. of English, SKD University, Pillibanga Hanumangarh (Raj.)

Dr Sheeshpal Singh, Assistant Professor

Deptt. of English, Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 82-87

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

Research Institute GD A unit of GRE&SWS (Regd.) Bhiwani (HRY.) 2020

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

भारतीय संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री की संस्थागत भूमिका : अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व का विश्लेषण

Authored by

डॉ. विरमा राम देवासी, निर्देशक

कांता भाटी, शोधार्थी

मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 88-90

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

The Political Economy of Slow Reform : Democracy, Legitimacy, and Market Liberalization in India

Authored by

Kuldeep Singh
UGC- Junior Research Fellow, Department of Political Science, University of Delhi.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 91-97

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

The Role of Jainism in Environmental Sustainability : A Philosophical and Practical Framework for Ecological Conservation

Authored by

DIVYA KOTHARI

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 98-104

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

एकात्म मानवदर्शन में चतुर्विध योग (कर्म, ज्ञान, भक्ति और राजयोग) की प्रासंगिकता का विवेचन : अंत्योदय के विशेष संदर्भ में

Authored by

डॉ संदीप ठाकरे, सहायक आचार्य, योग विभाग,
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक–484887 (मध्य प्रदेश)

डॉ. भारत भूषण सिंह, सहायक प्राध्यापक, योग विभाग,
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल उत्तराखंड।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 105-111

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

संत कबीर की साधना–पद्धति का त्रिआयामी स्वरूप : कर्म, ज्ञान और भक्ति के विशेष संदर्भ में

Authored by

प्रीति रानी
शोधार्थी, योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन
गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 112-118

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित राष्ट्रीय कवि दिनकर : एक अध्ययन

Authored by

डॉ. अमलपुरे सूर्यकांत विश्वनाथ

सहयोगी प्राध्यापक तथा हिंदी विभागाध्यक्ष,

डॉ. श्री. नानासाहेब धर्माधिकारी महाविद्यालय गोवे –कोलाड, ता–रोहा,

जिला – रायगड (महाराष्ट्र)

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 119-123

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

तमिल संगम : एक सांस्कृतिक अध्ययन

Authored by

सृष्टि झा

एम. ए. नेट (इतिहास)

इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी, दिल्ली।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 124-129

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

दलित विमर्श और समकालीन हिंदी गजल

Authored by

राजश्री सिंह, शोधार्थी,

डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 130-136

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

पर्यावरण चेतना एवं विनोद कुमार शुक्ल का कथा साहित्य

Authored by

नीरज कुमार चौधरी, शोधार्थी,

डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 137-142

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Artificial Intelligence & ITS Applications

Authored by

Dr. Ankit Godara
SBS College, Raisinghnagar,
Sri Ganganagar (Raj.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 143-147

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

सिन्धु घाटी सभ्यता एक परिचय

Authored by

भूमिका पारीक

लेखिका

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 148-152

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानी 'बंद होठों का चीत्कार' में स्त्री जीवन

Authored by

बी. श्रीहरि (पीएच.डी, शोधार्थी)

डॉ. बी. संतोषी कुमारी (शोध निर्देशक)

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास चेन्नई–600017

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 153-158

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

श्रीगंगानगर जिले में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन

Authored by

सरोज मोदी, रिसर्च फैलो, पीएच.डी. (शिक्षा),

डॉ. अनुराग मिश्रा, असिसटेंट प्रोफेसर,

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 159-170

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

COMPARATIVE ANALYSIS OF PHYSICAL CHARACTERISTICS AMONG BATSMEN, PACERS AND SPINNERS IN COMPETITIVE CRICKET

Authored by

Ekta Pramod Singh, Research Scholar,

Dr. Arun Mathur, Research Supervior,

Dean and Director of Sports,

Suresh Gyan Vihar University, Jaipur (Rajasthan)

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 171-176

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

The Impact of Mental Health Awareness and Digital Interventions on Psychological Well-being in the Modern Era : An Indian Perspective

Authored by

Dr. Vaseem Khan
Department of Philosophy,
Ravindra Nath Tagore PG College, Kapasan.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 177-182

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

कैलाश बनवासी की कहानियों में स्त्री–जीवन का संघर्ष

Authored by

सत्येन्द्र कुमार शेन्डे

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)

प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, सिवनी (म.प्र.)

Published in **SANGAM** **ISSN : 2321-8037**

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 183-188

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान

Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Mathematical Approaches for Optimizing Transportation Systems : An Analysis of Challenges and Operational Phenomena

Authored by

Rinkle Middha, Ph. D. Scholar,

Dr. Hemlata, Assistant Professor

Tantia University, Sri Ganganagar, Rajasthan.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,

Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 189-193

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

ग्रामीण क्षेत्रों में PHCs की कार्यप्रणाली और वहां उपलब्ध सुविधाओं का विश्लेषण

Authored by

विभा कुशवाहा, शोध छात्रा – समाजशास्त्र विभाग,
भवन्स मेहता महाविद्यालय, भरवारी कौशांबी,
संबद्ध–प्रो0 राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0 प्र0

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 194-199

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

भारत की अखंडता के महान निर्माता : सरदार पटेल

Authored by

नाजिया कौसर

पीएचडी शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय,
हजारीबाग, झारखंड, 825301

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, May-June 2026,
Vol. 14, Issue 5-6, Part-3, Page No. 200-208

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com